हिन्दी प्रचार ग्रन्थमाला, द्वितीय पुष्प ।

गृहस्थ जीवन.

संयोजक—

मुनि श्रीयुत तिलक विजयजी पंजाबी

प्रकाशक—

शाह चीमनलाल लक्ष्मीचंद
मैनेजर हिन्दी प्रचार ग्रन्थमाला
९५ रविवार पेंठ, पुना सिटी ।

वीर सं० २४५१] सन् १९२५ [वि० सं० १९८१

प्रिंटरः—एम्. एन्. कुळकर्णी, कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, मुंबई २.

प्राक्कथन।

—:०:—

यह भी एक नैसर्गिक सिद्धान्त है कि जीवन निर्माणके साथ ही मनुष्यमें रही हुई गुप्त शक्तियोंके विकासका प्रारम्भ होता है। यदि उस समय अनुकूल संयोग मिल जायँ तो उसकी गुप्त शक्तियोंका सुयोग्यताके साथ विकास होता चला जाता है और अन्तमें स्वभावसे ही उसका जीवन स्वयं सुखी होकर अन्य हजारों मनुष्योंके सुखका साधन बन जाता है। यदि जीवन निर्माणके समय (जन्मसे लेकर विद्यार्थी-जीवन पर्यन्त) प्रतिकूल संयोग हों तो मनुष्यकी सुशक्तियाँ विकसित होनेके बदले विकारित हो जाती हैं। उससे मनुष्यका जीवन अपने और दूसरोंके लिये सर्वथा बेकार हो जाता है। इस लिये उसका जीवन निर्माण करनेवाले उसके जन्म दाताओंका यह मुख्य कर्तव्य है कि अपनी सन्तानके जीवन निर्माण समय उसके इर्द गिर्द ऐसे अनुकूल संयोग रक्खें कि जिससे वह आदर्श-जीवन जीना सीख जाय। स्त्रीशिक्षणके अभावसे और बेजोड़ विवाहोंके कारण अपने आपको ऊँची समझनेवाली भारतीय प्रजा आज किस प्रकारके कष्ट उठा रही है इस बातका हमने इस ग्रन्थमें भली प्रकार दिग्दर्शन करा दिया है। विधवाओंकी स्थिति सुधारके विषयमें हमने बड़े बड़े विद्वानों एवं महान् पुरुषोंके विचार प्रकट किये हैं और उन विचारोंके साथ हमारी सम्मति क्या है यह तो स्पष्ट ही मालूम हो जाता है।

यों तो इस ग्रन्थकी एक एक पंक्ति गृहस्थ लोगोंके लिये मनन करने लायक है परन्तु उसमें भी अन्तिम दोनों प्रकरण हमारी दृष्टिसे कुछ अधिक महत्वके हैं। मनुष्य जीवनका परम उद्देश चारित्र—त्याग है। क्योंकि बिना चारित्र या त्यागके सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। अर्थात् चारित्रके द्वारा ही मानव जीवनकी पूर्णता प्राप्त होती है।

गार्हस्थ्ययोग्य सुखसाधनोंमें जीवन बितानेवाला मनुष्य अमुक प्रकारकी रीति द्वारा अपनी लालचों एवं अपने जीवन विकासमें विघ्नरूप बुरी आदतोंका परित्याग कर मात्र मानसिक पवित्र विचारों और सदैव उच्च ध्येय रखनेके कारण किस प्रकार उच्च चारित्रबल प्राप्त कर सकता है यह इन अन्तिम दोनों प्रकरणोंसे भली प्रकार मालूम हो सकता है ।

इस ग्रंथमें हमने अपने विचारोंके साथ अन्य बड़े बड़े विद्वानोंके विचार भी भाषा परिवर्तन द्वारा उद्धृत किये हैं । अतएव यह ग्रन्थ जितना स्त्रियोंके लिये उपयोगी है पुरुषोंके लिये भी उससे कुछ कम उपयोगी नहीं । हमें पूर्ण आशा है कि इस ग्रन्थको ध्यानपूर्वक पढ़ कर हमारे बहिन भाई पाठक महानुभाव अवश्य ही लाभ उठायेंगे और अपने कौटुम्बिक एवं सामाजिक जीवनकी उन्नतिके साथ ही भारतीय उत्क्रान्तिके संपादक बनेंगे ।

भारत जैन विद्यालय—
पूना सीटी,
अक्षय तृतीया १९८१

मुनि तिलक विजय ।



धन्यवाद ।

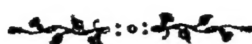
इस ग्रन्थकी छपाईमें मद्रास निवासी श्रीयुत लल्लुभाई वेल-चंद देसाईने जो आर्थिक सहायता की है तदर्थ यह संस्था उन्हें धन्यवाद देती है ।

मैनेजर—हिन्दी प्रचार ग्रन्थमाला.

श्री आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटीके अन्यान्य ग्रन्थोंकी सूची।



गृहस्थ जीवन.



जीवन निर्माण.

सन्मित्रं सधनं स्वयोषितिरति आज्ञापराः सेवकाः ।
सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी ॥
आतिथ्यं प्रभुपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे ।
साधोः संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥१॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ॥
एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ २ ॥

अनादि कालचक्रमें परिभ्रमण करते हुये जीवात्माओंको महा पुण्योदयसे इस अमूल्य मानव जन्मकी प्राप्ति होती है। मानव जन्म यह कोई साधारण चीज नहीं है। जिस प्रकार दुनियाकी तमाम वस्तुओं में चिन्तामणि रत्न या हीरा महा कीमती पदार्थ गिना जाता है वैसे ही समस्त संसारकी चौरासी लाख जीवयोनी (उत्पत्तिस्थान) में मानव जन्म महा कीमती वस्तु है। मानव जन्म विना जीवात्मा किसी भी योनीगत जन्ममें अपना आत्मविकास नहीं कर सकता। वास्तव में विचार किया जाय तो मानव जन्मका ध्येय ही आत्मविकास करना है।

आत्मीय विकासके मार्गमें आगे बढ़नेके लिये महा पुरुषोंने ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, (जैन दर्शनमें जिसे पडिमा धारी अथवा प्रतिमा धारण करने वाला श्रावक कहते हैं, गृहस्थावस्थामें रह कर साधु-सन्यस्तावस्थाकी तुलना की जाती है। जैन शास्त्रमें इन ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता

है मन वचन और कायाका संयम करनेवालों के लिये यह बडा उपयोगी विषय है) और संन्यस्ताश्रम, इन चार आश्रमोंका क्रम निर्माण किया है । इस क्रमबद्ध आत्मीय विकासके राजमार्गमें जीवात्मा सुलभता से उत्तरोत्तर गुणारोही हो सकता है ।

प्रथमके ब्रह्मचर्याश्रम में ऊपरके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेकी योग्यता संपादन करनी चाहिये । अर्थात् गृहस्थाश्रम में जो अनेक प्रकारकी महान् जवाबदारियां हैं उनका भार वहन करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये ही ब्रह्मचर्याश्रम है । पुरुषको जन्मसे लेकर कमसे कम बीस बाईस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर विकट संसार यात्राकी योग्यता प्राप्त करनेकी आवश्यकता है और स्त्रीको जन्मसे लेकर कमसे कम सोलह सत्रह वर्ष पर्यन्त इस महान् गृहस्थाश्रम का भार उठानेकी योग्यता प्राप्त करनेकी जरूरत है । जो मनुष्य स्त्री हो या पुरुष ब्रह्मचर्याश्रम में गृहस्थाश्रमके योग्य शिक्षण ग्रहण किये विना ही इसमें प्रवेश करता है उसका जीवन बालूकी नींव पर चिने हुये मकानके समान है । उसके लिये यह मधुर मृदुल संसार भी कटु कठोर बन जाता है ।

गृहस्थाश्रम को अन्य तीन आश्रमोंसे अत्यधिक महत्व दिया जा सकता है, क्योंकि अन्य तीनों आश्रमोंके भरण पोषणादिका आधार गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर है । मनुष्य पर जितनी जवाबदारियां गृहस्थाश्रम में रहती हैं उतनी अन्य किसी आश्रम में नहीं रहतीं । इस लिये सुखार्थी मनुष्यको हर तरह की तयारी करके ही इस उलझन भरे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये ।

जो मनुष्य अपनी जीवन यात्राके योग्य आवश्यकीय शिक्षणादि सामग्री संपादन करके ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है वही मनुष्य सुलभता से गृहस्थाश्रमी जीवन युद्धमें विजय प्राप्त कर ऊपरके वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यस्त आश्रमों में चढ कर अपना आत्मविकास कर सकता है ।

" शमोदमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ " गी०

संसारका भार उठानेकी इच्छावाले मनुष्यको अपने अन्दर रहे हुये दया, प्रेम, सत्य, सहानुभूति, प्रमाणिकता आदि सद् गुणोंको विकशित करनेके लिये प्रथम उसके योग्य शिक्षण लेनेकी परमावश्यकता है। वह शिक्षण पुस्तकोंका पाठ घुमानेवाले स्कूलके शिक्षकों के पास नहीं मिल सकता किन्तु मनुष्यके जीवनको मधुर बनाने वाला वह शिक्षण बाल्यावस्था में अपनी माताके पास से ही मिल सकता है।

मनुष्यके जीवनरूप मकानकी नीव बाल्यावस्था में ही पड़ती है इस लिये जिस प्रकारके संस्कारों में उसे विशेष रहना पड़ता है उसी प्रकारके संस्कारों से उसका जीवन निर्माण होता है। पूर्वकाल में जो यह प्रथा थी कि बाल्यकाल में ब्रह्मचर्याश्रमी बालक बालिकायें गुरुकुल संस्थाओं में रह कर विद्याभ्यास करते थे और आज भी कहीं कहीं पर बालक बालिकाओं को ऐसी संस्थाओं में रख कर पढ़ाया जाता है, उसका हेतु यही था और है कि गृहस्थाश्रम की तैयारीरूप विद्यार्थीअवस्था में घर पर विशेष समय रहनेके कारण उनके असंस्कारि कोमल हृदय पर घरके दूषित वातावरणसे बुरे संस्कार न पड़ जायँ। घर संबन्धी बुरे संस्कारों से बचानेके लिये और उनके जीवनमें उच्चतर संस्कार डालनेके लिये अर्थात् गृहसंस्कार के संयोगोंसे दूर रख कर उनका पवित्र और आदर्श जीवन निर्माण करनेके लिये ही बालक बालिकाओं को उस प्रकारकी संस्थाओं में रख कर शिक्षण दिया जाता था। जिस घरमें माता पिताके पवित्र और विशुद्ध संस्कार हैं, जिस घरमें बालक बालिकाओं के देखते बुरी चेष्टायें या खराब शब्द उच्चारण नहीं किये जाते, जिस घरमें बालक बालिकाओं के देखते माता पिताका पवित्र ही व्यवहार होता हो उस घरके बालक बालिकाओं को कदापि खराब संस्कार नहीं पड सकते। स्कूल या कालेजके शिक्षण पर नहीं किन्तु बहुधा अपने घरके सुसंस्कार या कुसंस्कार वाले संयोगोंके निरीक्षण द्वारा मिलनेवाले शिक्षण पर ही बालक बालिकाओं के जीवन मंदिरकी नीवकी रचना होती है। जिस प्रकारके कारीगर माता पिता होते हैं उसी प्रकारकी बच्चोंकी जीवन इमारत तैयार होती है। बाल्यजीवन ही आदर्श

जीवन बनानेकी प्रयोग शाला है, बालक ही देशके भावी स्तंभ हैं, बालकों के जीवन पर ही देश और समाज का जीवन निर्भर है, बालक ही माबाप के प्रतिनिधि हैं, बालक ही पवित्रता और सरलता सीखने के महान् साधन हैं, बालक ही माबाप की आशाओं को सफल करनेके सच्चे साधन हैं और बालक ही निष्कपटता एवं पवित्र निर्दोषता के नमूने हैं।

यदि मुझसे कोई यह प्रश्न पूछे कि भारत देशकी उन्नति किस पर निर्भर है ? तो मैं छाती ठोक कर यही उत्तर दूँगा कि भविष्य भारतकी उन्नति, वर्त्तमानके बालक और बालिकाओं पर ही निर्भर है। आजसे १५ वर्ष बाद भारतवर्ष की अवस्था कैसी होगी ? जैसी वर्तमान कालके बालक बालिकायें मिल कर बनायेंगे वैसी होगी। देशका उदय चाहने वालोंको इस बात पर लक्ष देनेकी बड़ी जरूरत है।

जिनके जीवन पर समस्त संसारके (गृहस्थाश्रमके) सुख दुखका आधार है उन पवित्र हृदयी बालकों के जीवनको इस प्रकारका सुन्दर घड़ने के लिये कि जिससे वे स्वयं सुख भोगते हुये दूसरोंको सुखी बना सकें किसी ग्रेज्युएट मास्टर या प्रोफेसरकी आवश्यकता नहीं किन्तु एक सुसंस्कारी सदाचार वाली प्रेमीला माताकी जरूरत है।

बच्चों को रात दिन गोदमें रखने वाली एवं आठों पहर उसकी हरतरहसे देख रेख व सार संभार रखने वाली मातासे जो संस्कार या शिक्षण मिलता है वह शिक्षण सैकड़ों मास्टरों या प्रोफेसरों से नहीं मिल सकता। बच्चोंका हृदय फोनुग्राफ की कोरी रिकार्डके समान होता है, उसमें जैसा चाहो उस प्रकारका गायन भर सकते हो। परन्तु गायन भर देनेके बाद यदि वह गायन तुम्हें नापसंद हो और तुम उसको मिटा कर दूसरा श्रेष्ठ गायन भरना चाहो तो यह कदापि न बनेगा। यह गायन आनन्दप्रद होगा या नहीं इत्यादि बुरे भलेका विचार तुम्हें उस रिकार्डमें गायन भरनेसे पहिले ही कर लेना चाहिये। भर दिये बाद तो तुम्हें रुचिकर हो या न हो किन्तु जिन्द-

जीभर वही गायन सुनने को मिलेगा। यदि रिकार्डमें गायन भरनेवाला संगीत वेत्ता चतुर हो तो वह उस रिकार्डमें इस प्रकार का मनोज्ञ और मधुर गायन भर सकता है कि वह रिकार्ड जनताको अति प्रिय हो पड़ती है और उससे गायन भरनेवाले संगीत वेत्ताकी ओर भी जनताका प्रेम हो जाता है।

बस इसी प्रकार बच्चोंके लिये समझना चाहिये। उनके कोमल पवित्र एवं असंस्कारि कोरे हृदयमें जिस तरहके संस्कार फिर चाहे वे कुसंस्कार हों या सुसंस्कार पड़ जाते हैं वे फिर ताजिन्दगी नहीं बदलते। अतः भावी कालमें उनका सुसंस्कारी जीवन लोकप्रिय हो, वे महान पुरुष बन कर स्वयं कल्याणके भागी हो कर जगत कल्याणके मार्गमें आरूढ़ हों और ग्रहस्थाश्रम में आदर्श जीवन बिता कर अपनी आत्माका विकास कर सकें इस लिये उनके कोमल हृदयरूप रिकार्डमें सुसंस्कार रूप मधुर गायन भरनेके लिये सुसंस्कारी सदाचार वाली चतुरा मातारूप संगीत वेत्ताकी आवश्यकता है।

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सबसे प्राथमिक शिक्षण तो बालकों के लिये उनकी माताके गर्भमें ही प्रारम्भ होता है, बाकी रहा हुआ शिक्षण जन्मसे लेकर आठ वर्षके अन्दर घर पर ही मिलता है। बाल्यावस्था में गोदमें खेलते हुये बच्चोंको जिस प्रकारका शिक्षण दिया जाता है वह उनके पवित्र हृदय पर इस प्रकारका सुदृढ जम जाता है कि मानो उनका स्वभाव या प्रकृति ही उस शिक्षणसे घड़ी गई है। बाल्य कालका शिक्षण बच्चोंके अंग प्रत्यंग में व्याप्त हो जाता है। उस पवित्र वयमें माताकी गोद ही बालक की बड़ेमें बड़ी पाठशाला है। इस पाठशाला का प्राथमिक शिक्षण प्रथम कथन किये मुताबिक गर्भावस्था में मिलता है और उससे बाकी रहा हुआ शिक्षण यहाँ पर माताकी गोदमें मिलता है। गर्भमें जो शिक्षण मिलता है वह माताके मानसिक विचारों द्वारा मिलता है और जो शिक्षण माताकी गोदमें मिलता है वह मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक वृत्तिओं व प्रवृत्तिओं द्वारा मिलता है। यदि गर्भस्थान की पाठशाला में उसे चोरी करनेका प्राथमिक शिक्षण दिया

गया होगा तो वह बालक अवश्य चोर ही बनेगा। जो उसे वहाँ पर सत्यताका शबक दिया गया होगा तो वह अवश्य ही सत्यवादी, प्रामाणिक बनेगा और यदि उसे शान्तिका पाठ सिखाया गया होगा, तो वह बालक जरूर शान्त स्वभाव वाला ही होगा यह ब्रह्मवाक्य समझना चाहिये।

गर्भस्थानरूप पाठशाला से आगेका शिक्षण बालकों को उनकी माताकी गोदरूप स्कूल या शिक्षण शालामें मिलता है। गर्भस्थान की शिक्षण शालामें यदि कुछ शिक्षण देनेमें भूल हो गई हो तो वह भूल माताकी गोदरूप विद्याशाला में सुधर सकती है। अर्थात् बालकमें गर्भावस्था में पड़े हुये कुसंस्कार कितने एक अंशमें माताकी गोदमें सुधर सकते हैं। बच्चेको स्तनपान कराते समय माता जिस प्रकारके विचार करे, जिस तरह के संकल्प करे वा जैसी वृत्तिका सेवन करे उन विचारों संकल्पों एवं वृत्तिकी सुदृढ असर गोदमें दूध पीते हुये उस निखालस हृदयवाले बच्चेके मन पर अवश्य पड़ेगी। माता अपने मानसिक शुद्ध विचारों द्वारा ही अपने बच्चेको शुद्ध आचार विचारवान बना सकती हैं। माताके हृदयमें जैसे विचार हों, माताकी आंखोंमें जो भाव भरा हो बालक पर दृष्टि पड़ते ही उन विचार व भावोंकी असर उस बालक के कोमल हृदय पर बिजलीकी त्वराके समान होती है। इस प्रकार माताके आचार विचारकी असर बालक पर क्षण क्षणमें पड़ती है। जिस वक्त माता क्रोध करती है उस वक्त क्रोध भरी दृष्टि बालक पर पड़ते ही या उस बालक की दृष्टिके साथ माताकी वह क्रोधभरी दृष्टि मिलते ही उस क्रोधका प्रतिबिंब-फोटो बालक के नाजुक हृदय पर जा पड़ता है। फिर उस स्वभावको या उस खराब शिक्षणको स्कूलके मास्टरों या कालेजके प्रोफेसरों से मिटाना चाहो तो वह कदापि नहीं मिट सकता। माता जिस समय प्रसन्न मुखसे पुत्रको देखती है उस समय उस प्रसन्नता की बालक पर यहाँ तक असर पड़ती है कि वह बालक एकदम प्रफुल्लित हो उठता है। बालक क्षण क्षणमें माताका मुख देखता रहता है। माताके हृदयगत विचारों के अनुसार उसके मुख पर जिस प्रकारके भाव प्रगट या गुप्त झलकते होंगे उसी प्रकारके

भावोंका फोटो बालक के अन्तःकरण में पड़ता रहता है। इस प्रकार माताके हरएक आचार विचारका प्रतिबिंब बालक के हृदय पर सदा काल पड़ता ही रहता है। विशेषतः स्तनपान कराते समय बालक के अन्तःकरण में माताके विचारों की गहरी छाप पड़ती है। इस लिये बालकको स्तन-पान कराते समय माताको अच्छे श्रेष्ठ विचार रखनेकी जरू-रत है। माता जैसा मनमें सोच विचार करती है वैसा ही शिक्षण वह बालक अपनी प्यारी माताकी गोदमें पड़ा पड़ा स्तनपान के साथ ही ग्रहण कर लेता है। अर्थात् माताकी गोदमें स्तनपान करता हुआ बालक मात्र अपने शरीरका ही पोषण करता है इतना ही नहीं किन्तु वह सर्व प्रकारका मानसिक शिक्षण भी साथ ही ग्रहण करता है। माता अपने पुत्रको स्तनपान कराती हुई नीति या अनीति, सदाचार या दुराचार, सत्य या असत्य, दया-प्रेम या क्रूरता, सरलता या दम्भता इत्यादि सद्गुणों या दुर्गुणोंका भी पान कराती है। महान् बुद्धिका शिक्षण भी माता अपने पुत्रको गोदमें ही दे सकती है। माता अपने पुत्रको जिस विद्या, कला कौशल्य किंवा धंधे में निपुण बनाना चाहती हो यदि उस विष-यका माता स्वतः उस समय अध्ययन करती हो या उस विषय-का चिन्तन करती हो, उस विषयके अध्ययन वा चिन्तन में ही उसका चित्त लगा हुआ हो और उस समय यदि माता अपने पुत्रको स्तनपान कराती हो तो अवश्यमेव उस अध्ययन या चिन्तन का एक एक परमाणु माताके स्तन-दूधके द्वारा उस बालक की रग-रगमें व्याप्त हो जाता है। अतः माताको जिस कलाकौशल्य में वा जिस शास्त्रमें अपने बालक को निपुण बनाना हो उस शास्त्र या कला, व्यापार या हुन्नर तरफ अपनी बुद्धिका व्यापार, मनोवृत्ति एवं इन्द्रिय व्यापार रखना चाहिये। इसमें उसकी उस मनोवृत्ति आदि-का संस्कार उसके शरीरमें रही हुई सातों ही धातुओं में संचरित होकर उसके स्तनों में रहे हुये दूधके बिन्दुओं तक पहुँचता है। अर्थात् उसके दूधके प्रत्येक बिन्दुमें उसके स्वभाव की एवं चित्तकी वृत्ति प्रवेश करती है और उस दूधको पीनेवाले बालक की रग रगमें

उस वृत्ति या संस्कारकी असर होती है। इस लिये बालक को स्तन-पान कराते समय कुटुम्ब कलहके, पड़ोस सम्बन्धी झगड़े टंटेके, सासु नणंद सम्बन्धी वैमनस्यके एवं पति सम्बन्धी अनबनाव के हानि कारक अनिष्ट विचारों का परित्याग करके किसी पवित्र शास्त्र सम्बन्धी, किसी श्रेष्ठ हुन्नर उद्योग सम्बन्धी या किसी उपयोगी विद्या सम्बन्धी किंवा किसी धर्मशास्त्र सम्बन्धी प्रशस्त विचार रखनेकी आवश्यकता है। अथवा स्तनपान कराते समय पवित्र महात्माओं एवं महापुरुषों के गुण चिन्तन करनेकी जरूरत है। नीतिमान, भक्तिमान, दयावान, सत्यवादी एवं सरल स्वभावी धर्मिष्ठ पुरुषोंका या उनके महान् गुणोंका चिन्तन करते हुये मेरा पुत्र भी वैसा ही महान् बने इस प्रकारकी दृढ भावना रखने की अत्यावश्यकता है।

स्तनपान कराते समय पूर्वोक्त भावना या दृढ संकल्प रखनेसे अवश्य ही तथा प्रकारकी संतान पैदा होती है इस बात पर दृढ विश्वास रखना चाहिये।

यह तो सिद्ध ही हो चुका कि माताके बुरे या भले मनोभाव का प्रभाव अवश्य ही बालकके कोमल हृदय पर पड़ता है, उसकी बुरी या भली मानसिक वृत्ति स्तनपान कराते समय दूधके साथ ही बालक के दिमाग पर अपना बुरा या भला प्रभाव अवश्य डालती है। इस लिये अब माताको चाहिये कि जब तक वह बालक स्तनपान करता है तब तक याने एकसे सवा वर्ष पर्यन्त तो अवश्य ही उत्तम विचार, उत्तम आचार तथा उत्तम प्रकारके ही कार्यों तरफ अपनी मनोवृत्ति रक्खे और अपने अन्दर यदि कोई खराब आदत पड़ी हुई हो तो उसका सत्वर परित्याग कर सद्‌गुण वाली आदत रक्खे ता कि महान पुरुष होने वाला उसका प्रिय बालक दुर्गुणों से बच कर सद्‌गुणों का पात्र बने। बालक का जीवन घड़ते समय यदि किसी प्रकारकी त्रुटि रह गई तो फिर वह जिन्दगी भर नहीं सुधर सकती और उस दोषका भार उस बालक का जीवन घड़ने वाले उसके माता पिता पर ही रहता है।

माताकी गोद छोड़े बाद बालक खेलता हुआ एवं आनन्द करता हुआ सारे घरमें फिरता है तथा घरके तमाम मनुष्यों के परिचय में

आता है और उन सबकी गोद्का परिचय अनुभव करता है। इस कोमल वयमें उसे घरके संस्कारों के वातावरण द्वारा बुरा या भला शिक्षण निरन्तर मिला करता है। यद्यपि इस अवस्था में उसके मा बाप अपने पास बैठा कर बालकको शिक्षण नहीं देते तथापि वह निर्मल और पवित्र बुद्धिवाला बालक मात्र घरके मनुष्यों के आचार विचार द्वारा ही प्रतिक्षण शिक्षण ग्रहण करता रहता है। उस घरमें जिस प्रकारके आचार तथा विचारों का आचरण होता है उसी प्रकार के संस्कार पैदा करने वाले परमाणु उस घरके वायुमंडल में सदैव भरे रहते हैं। इसी कारण उस घरमें आचरित आचारों, उच्चारित शब्दों, होते हुये कृत्यों एवं विचारों की असर बालक के असंस्कारि कोरे हृदय पर मेस्मेरिजम या बिजली की झड़प के समान होती है।

बच्चेकी वय जब तक आठ दश वर्षकी होती है तब तक वह अपने सहवास में रहने वाले घरके मनुष्यों के विचारों, उच्चारों, आचारों तथा कृत्योंका अनुकरण स्वभाव से ही अपने जीवनमें उतारता रहता है और वह बचपन के संस्कार प्रतिदिन इस प्रकारके सुदृढ बनते जाते हैं कि उन संस्कारों को अब किसी भी प्रकारका शिक्षण नहीं मिटा सकता। समझने के लिये-जिस प्रकार कि बालक सिखाये विना ही जिस घरमें जन्म लेता है उस घरमें बोली जाती हुई भाषा बोलने लगता है। किसी एक अंग्रेज के घरमें जन्म लेनेवाला बालक विना ही सिखाये पहिले से ही याने जन्मसे ही प्रथम इंग्लिस भाषा बोलने लगता है। गुजरात देशमें किसी पंडित कुलमें जन्म लेनेवाला बालक विना ही सिखाये बचपनसे शुद्ध गुजराती बोलने लगता है। बंगालमें किसी बंगाली के घरमें जन्म लेनेवाला बच्चा बचपन में सिखाये विना ही बंगला भाषा बोलने लग जाता है। पूनामें किसी ब्राह्मण के घर जन्मने वाला बालक जन्मसे ही शुद्ध मराठी भाषा बोलता है। दिल्ली या आगरे में किसी गृहस्थके घर जन्म लेनेवाला बालक विना ही सिखाये जन्मसे सुमधुर एवं शुद्ध हिन्दी बोलने लगता है। इस बगैर सिखलाये शिक्षण को ही गृहशिक्षण या गृहसंस्कार कहते हैं। उन कुटुम्बों में जिनमें कि बालक का जन्म होता है जिस प्रकारकी भाषा बोली जाती है, जिस प्रकारका आचार विचार सेवन

किया जाता है उस प्रकारका शिक्षण उस घरका बालक श्रवण या निरीक्षण द्वारा स्वतः ही ग्रहण कर लेता है। जिस घरमें विवेक बुद्धि द्वारा सुमधुर वाणी बोलनेका रीति रिवाज होता है उस घरका बालक जन्मसे ही विवेक बुद्धि पुरस्सर बोलना सीखता है। जिस घरमें सरलता भरा नीतिमय आचार पाला जाता हो, जिस घरमें रहनेवाले मनुष्यों में परस्पर प्रेमभाव हो तथा जिस घरमें पति पत्नीमें पारस्परिक वास्तविक प्रेम हो और जिस घरमें तुच्छ सी बातों पर परस्पर झगड़ा टंटा न होता हो एवं कुटुम्ब के सब मनुष्य जिनके बीचमें बालक का पोषण होता है आनन्दी स्वभाव वाले हों उस घरका बालक जन्मसे ही सदाचारी, नीतिमान, सरल हृदयी, खुश मिजाज तथा प्रेमी स्वभाव वाला होता है। जिस घरमें उद्धत स्वभाव वाले मनुष्य होते हैं, जिस घरके मनुष्यों का स्वभाव मधुर वाणी बोलने के बदले उल्टा कटु कठोर एवं निष्ठुर वचन बोलने वाला होता है उस कुटुम्ब या घरका बालक उद्धत स्वभावी अविवेकी एवं निष्ठुर वाणी बोलने वाला होता है, जिस घरके मनुष्यों में हमेशह पैसा कमाने की ही बातें हुआ करती हैं उस घरका बालक भी लोभी तथा पैसा कमाने की वृत्तिवाला होता है। अर्थात् जिस घरमें व्यापार सम्बन्धी ही चर्चा होती रहती है उस घरमें पलने वाला बालक वैश्य-वृत्ति धारक होता है। जिस घरमें हमेशह नौकरी सम्बन्धी ही चर्चा हुआ करती है उस घरमें पलने वाला बालक एम. ए. तकका शिक्षण प्राप्त करने पर भी नौकरी की ही भावना रखने वाला होता है। जिस बालक के माता पिताको गायन प्रिय हो और जिस घरमें सदैव संगीत की तालीम दी जाती हो उस घरमें पलने वाले बालक के दीमाग में अवश्य ही संगीत शक्ति होती है और वह गायन कलामें निपुण होता है। इसी प्रकार झोंपड़ों में पैदा होनेवाले हलकी जातिके—नीच कृत्य करने वाली जातिके बालक अपने माबाप के नीच संस्कारों एवं जिस झोंपड़े में वे परिपुष्ट होते हैं उसके योग्य संस्कारके अनुसार आचार वाले होते हैं। वे कभी भी श्रेष्ठ वाणी नहीं बोल सकते। यह सब कुछ गृहशिक्षण का ही परिणाम है।

अब यह बात जाननेकी रही कि उस बेसमझ नादान बालकके अन्तःकरण में या दीमाग में किस प्रकार घरके मनुष्यों के सुने हुये शब्दों या देखे हुये कृत्योंकी असर होती है। आप यह तो अच्छी तरहसे समझते होंगे कि जब कोई मनुष्य किसी पहाडके पास या किसी कुवेके पास किंवा नदीके पास जोरसे आवाज करता है तो उसकी आवाज के समान तादृश ही आवाज उसे अपने ही उच्चारित प्रतिशब्दों में सुनाई देती है, उसे प्रतिध्वनि कहते हैं। इसी प्रकार गृहवायु मंडल में भी मनुष्यकी वाणीकी प्रतिध्वनि पड़ती है। मनुष्य जिस स्थानमें रहता हो उस स्थानके वायुमंडल में उसके इर्द गिर्द उसके हरएक विचार एवं उच्चारका प्रतिबिम्ब पड़ता है और वहाँ पर आस पासमें रहनेवाले मनुष्यों तथा विशेषतः कोमल हृदयवाले बालकों में उस प्रतिबिम्बका प्रत्याघात होता है। यह क्रिया गुप्त तया सदैव होती रहती है और बलवान मनुष्योंके विचारों तथा शब्दोंकी निर्बल एवं नाजुक मनुष्यों पर विशेष असर होती रहती है। इस बातका प्रत्यक्ष दृष्टांत यही है कि छोटे बेसमझ बच्चेको जब उसकी मा या बाप किंवा अन्य कोई मनुष्य कुछ शब्द कहता है तो तब उसी प्रकारका प्रतिशब्द उस बालक की जबानसे निकलता है। अर्थात् यदि उस कोमल हृदयी पवित्र बच्चेको कोई मनुष्य या उसके मा बाप बदमास कहें तो वह तुरन्त ही उस कहने वाले मनुष्य या माबापको बदमाश कहेगा। वह खराब शब्द सुननेसे ही उसे तो उसके जीवनमें उस शब्दका शिक्षण मिल चुका। किसी समय ऐसा भी बनाव बनता है कि कदाचित् वह बालक उस तुम्हारे लाडमें उच्चारण किये हुये खराब शब्द को तुम्हारे सामने जोरसे न भी दुहरा सके परन्तु यह तो निश्चित ही समझना चाहिये कि वह सुना हुआ शब्द उस बालक के हृदयरूप कोरे पट पर सदाके लिये आलेखित हो चुका। नीच कुलोंमें अच्छे जीवात्मायें भी वहाँ के नीच वातावरण—खराब संस्कारों के कारण अधमाचार एवं खराब स्वभाव वाले ही हो जाते हैं। अच्छे प्राणिओं को भी खराब बनाने में मुख्य कारण उनको जन्म देनेवाले माता पिता एवं उनकी बाल्या-

वस्थामें अनुभव किया हुआ, सुना हुआ तथा निरीक्षण किया हुआ घरके मनुष्यों का विचार, उच्चार, तथा आचार ही है। बहुतसे सभ्य सुसंस्कारी कुटुम्बों में पैदा होनेवाले बालकों के मुखसे बड़ी उमर तक भी कभी असभ्य बिभत्स–खराब शब्द सुनने में नहीं आते। इसका कारण सिर्फ उन बालकों के माता पिताकी सावधानता, नैस-र्गिक सभ्यता तथा जिस घरमें उनका पालन पोषण हुआ है उस घरके मनुष्यों का नेक चाल चलन ही है। जिस बालक ने जन्मसे लेकर आज पर्यन्त अपने कानों असभ्य–खराब शब्द सुना ही नहीं वह बालक किस प्रकार वैसा शब्द बोल सकता है ? जिस कोरे घड़ेमें कस्तूरीके सिवाय आज तक लसण पड़ा ही नहीं उस घड़ेमें से किस तरह लसण की गन्ध आ सकती है ? जिन बीभत्स शब्दोंकी सुशि-क्षित सभ्य कुटुम्बमें गन्ध तक नहीं होती उन्हीं खराब शब्दों की हलके जघन्य कुटुम्बों में बालक के असंस्कारी माता पिता तथा घरके अन्य मनुष्यों के मुखसे रात दिन वृष्टि ही हुआ करती है। ऐसे गन्दे संस्कारों में पैदा होकर जन्मसे ही असभ्य तथा बीभत्स वाणीका श्रवण करने वाला बालक किस प्रकार सभ्य, मधुरालापी तथा सुसंस्कारी हो सकता है ?

कोमल मगज वाले बालकों पर वचनकी असर वचनमें ही होती है इतना ही नहीं किन्तु उन खराब वचनोंकी एक दूसरे प्रकारसे भी बड़ी खराब तथा हानिकारक असर होती है। यदि बच्चों पर उनके माता पिता या उनके बुजुर्गों की ओरसे रात दिन इस प्रकार के ही शब्दोंकी ब्योछार हुआ करे कि तू तो बिलकुल मूर्ख ही है, तू तो बेवकूफ है, तू तो नालायक ही रहेगा, तू सदा बदमाश ही रहेगा, तो इस प्रकारके उसके विषयमें उच्चारण होते हुये खराब शब्दोंकी उस बालक पर ऐसी बुरी और महा हानिकारक असर होती है कि सचमुच ही वह बालक नित्य के खराब शब्द प्रहारों से मूर्ख, बेवकूफ और नालायक ही निकलता है, वह बालक स्वतः वैसा नहीं बना किन्तु उसके माता पिताने जान बूझकर ही उसे वैसा बेवकूफ या नालायक घड़ डाला है। यदि माता पिता बालक को अच्छा बनानेकी भावना के साथ

साथ उसे उत्साह वर्धक शब्द सुनाया करें कि बेटा तू बड़ा हुशियार है, तू बड़ा बहादुर होगा, तू बड़ा ही चतुर है, तो वह बालक अवश्य ही उन उत्साह वर्धक अच्छे शब्दोंकी असरसे अच्छा ही निकलेगा। उसके पासमें वारंवार निरन्तर उच्चारित होते हुये अच्छे या बुरे शब्दोंकी असरसे वह नाजुक अन्तःकरण वाला बालक सचमुच ही शब्द संस्कारों से अच्छा या बुरा बन जाता है। इसी प्रकार लड़की के लिये भी समझ लेना चाहिए। यदि घरमें माता या अन्य स्त्रियाँ चाची ताई वगैरह उस कोमल हृदया बालिका को हरवक्त खराब शब्दोंसे तिरस्कृता किया करें कि तू तो डायन जैसी है, रांड ! तेरा तो जन्म ही अच्छे मुहूर्त में नहीं हुआ इत्यादि खराब विशेषणों से वारंवार उसकी कदर्थना की जाती हो तो उन नीच शब्द संस्कारोंसे वह बालिका अवश्य ही वैसी दुर्भगा होगी कि जिसे सासु ससुरेके घर पर भी सुख न मिल सके। बालक बालिकाओंके संस्कार दूषित होनेमें मात्र उनके घरके मनुष्यों के रात दिन उच्चारित होते हुये खराब शब्द ही कारण भूत होते हैं। मानसिक और वाचिक शिक्षण की जो असर बालक पर पड़ती है वैसे ही कायिक शिक्षण का भी परिणाम मिलता है। हाथोंकी चेष्टा, आँखें निकालना, या अन्य शारीरिक चेष्टायें करना बालक देख कर ही सीखता है। हमने देखा है कि कितनी एक मातायें सारे दिन कुछ न कुछ काम करते समय अपना मुँह चलाया ही करती हैं, अर्थात् कच्चे चावल कच्ची दाल वगैरह जो कुछ आया सो मुँहमें डाला। बालक भी यह देख कर उसी प्रकार सीख जाता है। माता लड़की से कहे कि जा वह फलानी चीज उठा ला तो वह चीज लानेके साथ ही उस चीज की मुठ्ठी भरकर मुँहमें डालेगी,—क्यों कि यह उसने अपनी मासे ही सीखा है। सबसे पहिले बालक के जीवनकी नींव उसकी माताके आचार विचार और संस्कारों से चिनी जाती है। यदि माता सत्संस्कारी एवं सुशिक्षिता हो तो बालक को घरके खराब संस्कारों से भी सुरक्षित रख सकती है। इस लिये बालक को महान् पुरुष बनाने में सबसे प्रथम तो मातृपदके सद्गुणों से विभूषित योग्य माता की ही आवश्यकता है।

यह बात तो आप भली प्रकार समझते होंगे कि—योग्य माता सौ शिक्षकों से भी अधिक शिक्षण दे सकती है। माता ही कुटुम्बमें अपनी सर्व प्रजाके हृदय एवं चक्षुओं को आकर्षण करने वाली है। माताके द्वारा ही सन्तान के जीवनकी नींव पड़ती है। माता ही अपनी सन्तानका सुन्दर जीवन घड़ सकती है। मुख्यतः माता ही अपनी सन्तानके बुरे या भले जीवनकी जवाबदार है। क्यों कि बच्चा निरीक्षण द्वारा माताके मानसिक भावों-शब्दों तथा आचरणों से उसी प्रकार का शिक्षण ग्रहण करता रहता है। इस लिये योग्य माताकी अत्यावश्यकता है।

यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि उपदेश की अपेक्षा कर बतलानेकी असर मनुष्यों पर बहुत ही सत्वर होती है। अर्थात् मनुष्यों के हृदय पर उतनी उपदेश की असर नहीं पड़ती जितनी कृतिकी पड़ती है। वाचिक उपदेशकी अपेक्षा कर बतलाने को ही अधिक महत्व मिलता है और इस प्रकारके उपदेश को ही विना वाणीका सिद्ध उपदेश कहते हैं। बालकों के लिये यह नियम विशेषतः चरितार्थ होता है। बच्चोंका लक्ष सदैव अपने घरमें रहने वाले मनुष्यों तथा विशेष कर अपनी माताकी कृति पर ही रहता है, क्यों कि छोटे बच्चों में अभी वाणीका उपदेश ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं होती। वह शक्ति तो उनमें पाँच सात वर्षके बाद आती है। कृति द्वारा शिक्षण ग्रहण करनेकी शक्ति बच्चोंमें जन्मसिद्ध होती है। माताके या घरमें रहने वाले अन्य मनुष्यों के आचरण को प्रत्यक्ष देख कर तद्नुसार आचरण करनेका शिक्षण ग्रहण करनेका तो बालकों में स्वाभाविक ही सहज सद्गुण होता ह। इस लिये घरमें माताका जिस प्रकारका आचरण देखने, सुनने में आता है उस प्रकारका शिक्षण बालकों के हृदय पर असर करता जाता है। यदि घरमें बोले जाते हुये उपदेश वचन और कृतिमें परस्पर विरोध हो, अर्थात् कथन करनेसे आचरण विपरीत हो तो उससे बालकों को कुछ लाभ नहीं होता। इतना ही नहीं किन्तु हाथीके दान्तोंके समान उस द्विधा कथनी करनीसे उल्टी महान् हानि होती है। इस प्रकार का अनुकरण बालकों को नीचमें नीच ठगाईका दुर्व्यसन सिखाता है। द्विवचनी आते ही

मनुष्य में दूसरों को फसाने की कपटाई का दुर्गुण आता है। बालक घर में वर्तने वाले मनुष्यों की वाणी तथा कृतिकी एकता या विभिन्नताके अनुभव से अपने विचार निर्माण करता है। बाल्यावस्था में घरके आचार विचारोंको देखने सुननेसे, उनका धीरे धीरे बालक के पवित्र अन्तःकरण में अनुकरण होने लगता है। यद्यपि यह अनुकरण बहुत ही सूक्ष्मता से शुरू होता है तथापि इस सूक्ष्मता से शुरू हुये अनुकरण के द्वारा धीरे धीरे बालकों के हृदयमें उस प्रकारकी वृत्तियाँ ऐसी सुदृढ और मजबूत हो जाती हैं कि परिपक्व अवस्था में स्कूलके मास्टरों या कालेजके सैंकड़ो प्रोफेसरों के शिक्षण से भी उनमें परिवर्तन नहीं होता। बाल्यकाल में बालक की दृष्टि विशेषतः निरन्तर उसकी माता पर ही पड़नेका कारण यही है कि पिताकी अपेक्षा माताके ही पास बालक जास्ती रहता है।

घर यह स्त्रीकी राजधानी है, उस गृह राजधानी में उसकी आज्ञा निरंकुश तया प्रवर्तती है। उसकी छोटी प्रजा पर उसका हुक्म चलता है। उसकी निर्दोष प्रजा छोटे बड़े हरएक प्रसंगों में उसीका मुँह ताकती है। उस पवित्र हृदयवाली प्रजाकी बड़ीसे बड़ी हाई-कोर्ट माता ही है। माता ही बालकों की प्राथमिक शिक्षण शाला की शिक्षिका है, माता ही बालकों के चारित्र मंदिरको घड़नेवाला महान कारीगर है, माता ही बालकों के सर्व सुखकी आशा लता है और माता ही बालकों का सर्व सर्वस्व है। इस लिये बालक प्रतिक्षण अपनी प्रिय माताके आचार विचार पर लक्ष रखता है और एकदम उसी तरहका अनुकरण करने लग जाता है। जिस प्रकार एक छोटेसे छोटे वृक्षमें चक्कुसे छोटासा—बिलकुल सूक्ष्म घाव किया जाय और वह वृक्षके बढ़ने पर बढ़ता जाता है, अर्थात् बालवृक्षमें चक्कु आदि शस्त्रसे सूक्ष्म में सूक्ष्म किया हुआ चिन्ह वृक्ष के साथ ही बढ़ता हुआ बड़ा हो जाता है। उसी तरह बालवृक्ष के समान बाल्य-वयमें कोमल हृदयी बालकों के अन्तःकरण में माताके आचार विचारका अनुकरण करने से पड़े हुए सूक्ष्ममें सूक्ष्म भी सुसंस्कार या कुसंस्कार उनकी वयके साथ ही बढते चले जाते हैं। इस प्रकारके बाल्यावस्था वाले और विना सिखाये अनुकरण किये हुये प्रारंभिक

शिक्षण पर ही बालकों के जीवन मंदिरकी नीव चिनी जाती है। यहाँ से ही उनका चारित्र निर्माण होना शुरू होता है। यदि सच पूछो तो माता की वृत्तियां ही बालक रूपमें जन्म लेती हैं। बालक यह एक माताके आचार विचार का प्रतिबिंब है। माता के हरएक विचार, हरएक आचार, हरएक उच्चार का ही प्रतिरूप बालक है। माता की सर्व प्रकार की वृत्तिओं की छाया उस बालकमें मालूम देती है। बालक के प्रति मातृप्रेम भी कोई दिव्य योजना ही है। माताका प्रेम ही बालक के हृदयको अपनी ओर खींचा करता है, वह माता की ममता भरी दृष्टिके लिये उत्सुख होकर निरन्तर ही उसके मुंहकी ओर निहारता रहता है। किसी दुःखकी विटंबना से मुक्त होने को नहीं, किसी महान विपत्तिकी विषम वेदनासे मुक्त होने के लिये नहीं किन्तु वह निर्दोष हृदयवाला बालक माताकी ममता, प्रेम, स्नेहके मृदु भावसे अपने आपको आनंदित करने के लिये, अपने सुखको अधिकाधिक वृद्धिगत करने के लिये, उसे विशेषतः उद्दीप्त करने के लिये ही माता के सन्मुख भागा आता है। निदान हरएक प्रसंग में बालक अपनी प्रिय माता पर ही दृष्टि डालता है।

वास्तवमें स्त्रियोंके गृहराज्य पर ही देशकी समुन्नति निर्भर है। यह कहना कोई अत्युक्ति भरा या अयोग्य न गिना जायगा कि यदि गृहराज्य सुव्यवस्थित चलने लग जायँ तो अनायास ही देश समुन्नत हो जाय। देशकी समुन्नति का मुख्य अंश तो स्त्रीजाति द्वारा किये हुये सुसंस्कार पर ही अवलंबित है। यदि स्त्री जाति को अपने योग्य विभाग में पूर्ण अधिकार दिया जाय, यदि स्त्री जाति सम्बन्धी पुरुषोंके दिलमें से हलके विचार सर्वथा दूर हो जायँ, यदि पुरुष उन्हें अपनी कुल देवियाँ समझने लग जायँ तो अवश्यमेव उनकी कुक्षिसे पैदा होनेवाली वीर सन्तान अपने देशको सुखी समुन्नत बना सके। देशके हरएक घर में माता की गोदमें खेलते हुए छोटे बालक ही तो भविष्यत् की प्रौढ प्रजाका बीज हैं। बीज में जितना अच्छा संस्कार किया जायगा उतना ही उसका फलरूप भावी प्रजा सुसंस्कारी और सुदृढ होगी। मनुष्य की वृत्तियां घड़नेमें स्त्रीकी समानता करनेवाला अन्य कोई भी शिक्षक न मिलेगा।

देशकी उन्नतिका आधार सुसंस्कारी तथा सुशिक्षित देश प्रेमी मनुष्यों के चारित्र की उन्नति पर है और मनुष्य को सुसंस्कारी, सुशिक्षित, देश प्रेमी बना कर उसके चारित्र को उन्नत बनाना यह सब कुछ स्त्रियों के-माताओं के ही हाथ में है।

अपने अनुपम वीर्य पराक्रम से समस्त यूरोप खंडको धुजानेवाले वीर शिरोमणि नेपोलियन बोनापार्ट को महान पुरुष बनाने में कारण भूत उसकी माता ही थी। जब नेपोलियन गर्भमें था तब उसकी माता एक साधारण सैनिक अपने प्रिय पति के साथ घोड़े पर युद्ध क्षेत्रमें फिरा करती थी। रात्रिके समय लड़ाई की सर्व हकीकत उसका पति उसके समक्ष कह सुनाता था। माता उस समय युद्ध सम्बन्धी ही पुस्तकें पढ़ा करती, उसके दिलमें पतिके साथ ही युद्ध क्षेत्रमें उतरने की भावनायें पैदा होती थीं। ऐसी परिस्थिति में ही नेपोलियन माता के गर्भ में परिपक्व हुआ था। लड़का पैदा हुये बाद भी माता उस बालक पुत्रके समक्ष अपने घर में रहने वाली स्त्रियों के साथ उस युद्धकी ही बातें करा करती। बालक बड़ा होने पर माता के मुखसे युद्धकी बातें जिनका कि उसे गर्भ में से ही संस्कार पड़ा था बड़े प्रेमसे सुनता और पढ़ लिख कर समझदार होने पर भी वह उस विषय के पुस्तक रुचि पूर्वक पढ़ता। उसे युद्ध सम्बन्धी बातों में बड़ा ही आनंद आता। इसका परिणाम यह आया कि वह एक साधारण सैनिक पद से चढ़ते चढ़ते अपने अद्वितीय बाहुबल से और तद्विषयक बुद्धि कौशल्य से अखिल यूरोप को धुजाने वाला, यूरोपके सर्व वीरों में प्रथम पद पाने वाला और फ्रांस का सम्राट पद प्राप्त करने वाला हुआ। नेपोलियन की इस प्रकार की उन्नति का कारण उसके पिताका दिया हुआ शिक्षण नहीं किन्तु उस की जन्म दात्री माता ही थी।

*　　*　　*　　*

माता अपने पवित्र प्रेम द्वारा निरन्तर शिक्षण देती है। पुरुष जनसमाज का बुद्धि स्थान है परन्तु स्त्री उसका प्रेमस्थान—हृदय है। पुरुष जनसमाज का निर्णेता है किन्तु स्त्री उसे रसार्द्र कर

प्रेरित करने वाली है। पुरुष यह जनसमाज का बल है पर स्त्री उसका लावण्य, आभूषण तथा सुखप्रद नूर है। स्त्रियों की बुद्धि भी उनके प्रेम द्वारा ही बाहर पड़ती है। यद्यपि पुरुष बुद्धि के अधिष्ठिता हैं तथापि उनकी रसार्द्र भावना को स्त्री ही विकसित करती है। रसार्द्र भावनाओं से ही उच्च चारित्र निर्माण होता है।

स्त्री सन्मान पूर्वक पुरुषका स्मरण करती है, उसे अपना आराध्य देव समझती है, पुरुष की हार्दिक प्रेम भावना द्वारा स्त्री पर लीनता होती है, वह उसे अपनी कुल देवी के समान समझता है, बस इस प्रकार दोनों का उच्च चरित्र बन कर सच्चरित्र सन्तान पैदा होती है।

हमारे देशके बहुत से अधम पुरुष अपने आप तो रंडियों के तलवे चाटते फिरते हैं और अपनी स्त्रीको सच्चरित्रा सीता के समान सती बनने का उपदेश करते हैं। परन्तु इस प्रकार के उपदेश की कुछ भी असर नहीं पड़ती। उन विचारे पामरों को अपने कृत्यों पर जरा भी खयाल नहीं आता। यदि वे अपनी प्राण प्रियाको सीता सती के समान बनाना चाहते हैं तो प्रथम उन्हें स्वयं रामचंद्रजी के समान सच्चरित्र बनना चाहिये। मनुष्य जो कार्य दूसरे से कराना चाहता है उस कार्यको कराने का उपदेश करने से पहिले उसे स्वयं ही वह कार्य करना चाहिये। ऐसा करने से जिस से उस कार्य को कराना चाहते हो उसे फिर उपदेश करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

हमारे पवित्र भारत देश की पवित्र गृहदेविओं में दुनिया भरकी गृहदेविओं से अत्यधिक पात्रता है। उन में इस प्रकार का प्रबल प्रेम और संयम होता है कि वे अधम से अधम मार्ग में गये हुये अपने पतिराज को अपने उस प्रबल प्रेम तथा प्रभाव शाली संयमन द्वारा सन्मार्ग में ले आती हैं। पतिके मर्यादा उलंघन करने पर भी वे स्वयं मर्यादा में रह कर अपनी उदारता भरी पवित्र पात्रता के अनुसार उसे अपना आराध्य देव ही समझती हैं। यह पवित्र भावभरी मर्यादा मात्र इस धर्मप्रिय भारतवर्ष की ही गृहदेवियों में पाई जाती है कि जो मार्ग भ्रष्ट हुये भी अपने पतिको अपना पूज्य देव समझती

हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं है। वहाँ तो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ज्यादा महत्व की दृष्टि से देखा जाता है। क्यों कि वहाँ पर स्त्रियों को मात्र पुरुषों के दिल बहलाने का खिलौना नहीं समझा जाता। उस देश में प्रेम की कदर है। वहाँ प्रेमका महत्व समझा जाता है। स्त्री जाति पुरुषों के आत्मविकास में कितनी उपयोगी है, वह पुरुष-मंडल पर कितना उपकार करती है यह सब कुछ वहाँ की संस्कारी प्रजा भली भाँति समझती है।

यदि गरीबसे गरीब पुरुष की झोंपड़ी में भी प्रेम हृदया सन्नारी अधिष्ठात्री हो तो वहाँ पर भी आनन्द सुख समृद्धि सच्चारित्रादि सर्व गुण सहज ही में प्राप्त हो सकते हैं।

* * * *

संसार में आबाल वृद्ध सर्व मनुष्यों के लिये घर यह एक उत्त-ममें उत्तम प्रकार की शिक्षण शाला है। प्रथम सब वहाँ पर ही प्रसन्नता, धैर्यता, सहन शीलता, सहाय शीलता, संयमन, दया, प्रेम, तथा स्वकर्तव्य के स्वरूप समझ कर अन्तर में ही अनुभव करते हैं। पहिले श्रेष्ठ मातारूप शिक्षक की इसी पाठशाला में विनय विवेक आदि सद्‌गुणों का पाठ पढ़ा जाता है। अर्थात् श्रेष्ठ मातावाले घर ही में प्रथम सद्‌गुणों का शिक्षण मिलता है। यह तो हम प्रथम ही कह चुके हैं कि जिस प्रकार सुसंस्कारी योग्य मातावाले घर में पालन पोषण किये हुये बालक सदाचारी तथा सद्गुणी होते हैं उसी प्रकार कुसंस्कारी अयोग्य मातावाले घर में पालन पोषण किये हुये बालक चारित्र हीन तथा दुर्गुणी होते हैं।

बालकों में माता के संस्कारों की असर कहाँ तक पड़ती है इस बात के लिये बड़े बड़े विद्वानों ने शोध-लगाकर अनुभव किया है कि पिता चाहे जैसा निखट्टू ही क्यों न हो परन्तु सुसंस्कारी योग्य माता की सन्तान में अवश्य ही उसके सद्‌गुण उतरते हैं। उस योग्य माता के बालक उसमें रहे हुये सद्‌गुणों के अनुसार ही सदाचारी सुशील होंगे। यदि माता योग्य न हो, वह लड़ाकी स्वभाव की हो, सदाचार रहित हो तो पिता चाहे जैसा सदाचारी

शान्त स्वभावी, चारित्र पात्र सद्गुणी क्यों न हो तथापि सन्तान में माता के दुर्गुणों की गन्ध तो अवश्य ही आयगी।

यह बात सत्य है कि आज तक किसी स्त्रीने सिद्ध हेम जैसे व्याकरण की रचना नहीं की, यह भी सत्य है कि आज तक किसी स्त्रीने काव्य कोश तथा न्याय के कठिन ग्रन्थों की रचना नहीं की, यह भी सत्य ही है कि आज तक किसी स्त्रीने भूगोल खगोल या रसायण शास्त्र सम्बन्धी कुछ नूतन शोध नहीं की और यह भी किसी अंशमें सत्य ही मानना पड़ता है कि किसी स्त्रीने रणसंग्राम में जाकर रावण जैसे योद्धाओं के साथ युद्ध नहीं किया तथापि यह तो निश्चित ही सिद्ध है कि स्त्रियों ने इससे भी उत्तम और अधिक महत्तम कार्य किया है और वह उत्तम तथा महत्तम कार्य यही है कि पूर्वोक्त महान् कार्य करनेवाले महान् पुरुषों को उस प्रकार के कार्य करने का प्राथमिक शिक्षण का पाठ अपनी वात्सल्य-पूर्ण गोद्रूपी पाठशाला में उन्हों ने ही पढ़ाया था। दुनिया में माता के प्रेमामृत द्वारा ही पुरुष सच्चरित्रवान् बनता है। पुरुष को उत्तम में उत्तम और महान् में महान् कार्य करने का बल अमृत से भी मधुर माता के संस्कारी दूध से ही प्राप्त होता है।

हिन्दु शास्त्र में कथन किये मुजब पतिदेव का वचन पालन करने के लिये वात्सल्य प्रेमका उत्कट उपहार समर्पण करती हुई कौशल्या की प्रेमार्द्र कर्तव्य परायणता ही रामचंद्रजी के मृदु किन्तु पराक्रम युक्त वीरत्व का बीज था। अमेरीका में स्वतंत्रता स्थापन करने वाले ज्योर्ज वोशींग्टन आदि पाश्चात्य महान पुरुषों का जीवन चरित पढ़ने से मालूम होता है कि उनकी मातायें बड़ी सुसंस्कारी और सद्गुणवती थीं। उन लोगों की महत्ता यह उनकी योग्य माताओं की सद्वासनाओं का ही फल था। समर्थ धर्म प्रवर्तकों में भी उनकी सुयोग्य माताओं की सद्भावना वृत्तिकी छाया देख पड़ी है। क्रिश्चीयन धर्म प्रवर्तक महात्मा क्राइस्ट के पिताका कोई नाम तक नहीं जानता, परन्तु मात्र उनकी माता मरीयम या मेरी, ही उस धर्मके अनुयायी मनुष्यों की पूजा प्राप्त करती है। सुना जाता है कि अकबर बादशाह में भी उनकी माता के गुण पाये जाते थे। इतिहास प्रसिद्ध महाराष्ट्र के मुकट

शिवाजीने भी मुसलमानों को निर्मूल करने का बलवर्धक दूध अपनी माताका ही पीया था। इसी प्रकार इस से विपरीत माता के दुर्गुणों के कारण दुर्गुणी पैदा हुये मनुष्यों के भी बहुत से दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। इस तरह घरकी, कुटुम्ब की, जातिकी, समाज की, गाँवकी, देशकी तथा सद्धर्म कर्मकी समुन्नति का मूल सुसंस्कारी योग्य माता ही है।

सर्व प्रकार के गृह संस्कार का आधार माता ही सिद्ध होती है और यह तो अनुभव सिद्ध ही है कि श्रेष्ठ माता से घरमें श्रेष्ठ परिणाम और अयोग्य—खराब स्वभाव शीलवाली माता से खराब परिणाम आता है। जब इस प्रकार माता की सुबुद्धि तथा सुशीलता पर ही मनुष्य समाज के सुखका अवलम्बन है तो मनुष्यों को चाहिये कि वे सुसंस्कारी, सदाचारी प्रजा उत्पन्न करने के लिये सुसंस्कारी शिक्षण द्वारा स्त्रियों के अन्तःकरण को सुसंस्कारी बनावें। उन्हें इस प्रकार का शिक्षण मिलना चाहिये कि जिस से उनमें मानसिक उदारता प्राप्त हो। उनके अन्तःकरण में कुटुम्ब, जाति, समाज तथा देशके प्रति प्रेम जागृत हो। उनके हृदय से पुरुषों की ही ठसाई हुई तुच्छ भावनायें सर्वथा निकल जायें और उनका स्थान उच्च से उच्च भावनाओं को मिले, उनमें उच्च मातृपद की योग्यता प्राप्त हो, उनके स्वभाव में से सर्वथा कटुता निकल कर वह आनंदी और प्रेममय बन जाय, उनके स्वभाव में सुख तथा दुःखके प्रसंगों में सहन शीलता का सद्गुण प्रगट हो जाय, उन्हें मितव्ययता से गृह व्यवहार चलाना आ जाय। दुःखके विषम प्रसंगों में भी अपने आराध्य पति देवको आनंदित करने का उनका स्वभाव बन जाय। घरमें कलह करना यह लक्ष्मीनाश कारक पाप कृत्य है वे ऐसा समझने लग जायें, अपने बालबच्चों के समक्ष—उनके देखते हुये खराब व्यवहार करना, खराब शब्द बोलना यह उनके जीवन को खराब बनाता है वे ऐसा समझने लग जायँ और उनके दिल में यह बात भली प्रकार ठस जाय कि माता के श्रेष्ठ आचार विचार से ही श्रेष्ठ सन्तान पैदा होती है। बस इस प्रकार का शिक्षण गृहदेवियोंके

जीवन को रसिक बना कर कौटुम्बिक जीवन में सदाके लिये सुखशान्ति स्थापन कर सकता है। जितना महत्व पुरुषों के शिक्षण को है उतना ही महत्व स्त्रियों के शिक्षण को मिलना चाहिये। क्यों कि स्त्रियों के शिक्षण पर ही पुरुषों की उन्नति निर्भर है। एक बालिका को पढ़ा कर सुसंस्कारी बनाने में एक कुटुम्ब को शिक्षण दिये जितना लाभ होता है। अपनी बालिकाओं को शिक्षण देने के सिवाय अपने कुटुम्बों को सुखी बनाने का अन्य कोई सरल मार्ग ही नहीं है। अपनी बालिकायें ही दो दिन बाद गृहदेवी बनने वाली हैं। वे ही भावी प्रजाकी माता बनेंगी इस लिये उन्हें उच्च मातृपद प्राप्त हो सके इस प्रकार का सुसंस्कारि शिक्षण देना चाहिये। माता के संस्कार ही सन्तान रूपमें जन्म धारण करते हैं। अतः लड़कों से भी अधिक लक्ष लड़कियों के शिक्षण पर रखने की आवश्यकता है।

आज कलके माता पिता इस महत्व पूर्ण कन्या शिक्षण पर जरा भी ध्यान नहीं देते। यदि सच पूछो तो वे लड़कों को भी उनके जीवन विकाश की दृष्टिसे शिक्षण नहीं देते किन्तु मात्र व्यापारी मार्ग में चार पैसे कमा खाने तक का ही शिक्षण देते हैं। उस प्रकार के उतने शिक्षण से वह अपने जीवन को मधुर नहीं बना सकता। वह पैसा कमा कर श्रीमन्त बनने पर भी वास्तविक संसार सुखसे वंचित ही रहता है। सिवाय पैसा कमाने के उसका शिक्षण उसके जीवन में सर्वथा निरुपयोगी रहता है। हाँ बालिकाओं को जितना भी शिक्षण दिया जाय वह उनके जीवन व्यवहार में उपयोगी ही होता है।

यह बात हम प्रथम ही कह चुके हैं, बच्चों के महत्वपूर्ण प्राथमिक शिक्षण की बागडोर जिस पर कि भावी प्रजाके जीवन सम्बन्धि सुख दुखका आधार है, स्त्रियों के ही हाथ में है। उन के पालन पोषण करने का आनन्द दायक कार्य भी स्त्रियों के ही हाथ में है। बच्चों को पालने का काम यद्यपि बड़ा आनन्द प्रद है तथापि उसे पुरुष नहीं कर सकता। पुरुष चाहे जैसा बलवान हो, पुरुष चाहे जितना कलावान हो, पुरुष चाहे जैसे बड़े से बड़े कार्य करने वाला

हो तथापि वह छोटे बच्चों के पालन पोषण सम्बन्धी उलझन भरे कार्य को करने के लिये सर्वथा असमर्थ है। यदि दुनिया की शुरूआत से ही दुनिया का इतिहास देखा जाय तो यही मालूम होगा कि बच्चों के पालन पोषण का उत्तम कार्य तथा उनमें भले या बुरे संस्कार डालने का काम आज तक स्त्रियोंने ही किया है, स्त्रियाँ ही करती हैं, स्त्रियां ही करेंगी और स्त्रियों से ही हो सकता है। बालकों को पालनेका काम कोई साधारण नहीं है किन्तु बड़ा महत्व का कार्य है। इस महान् कार्य को अन्य महान कार्य करने वाले और अपने आप को महाबली मानने वाले पुरुष नहीं कर सकते, किन्तु अबला कहलानेवाली स्त्रियाँ ही इस कार्य को सानन्द सुन्दर कर सकती हैं। पुरुषों की दृष्टिमें जिसका कुछ महत्व ही नहीं और जो बिलकुल साधारणसा मालूम देता है वह बच्चों को पालने का कार्य कितना भारी उलझन भरा है यदि यह जानना हो तो जिस बालक की माता उसे बचपन में ही छोड़ कर चल बसी हो उस बालक के पिताके पास जा कर पूछ लीजिये। यदि समस्त संसार की स्त्रियों को बच्चों के पालन पोषण सम्बन्धी कर्तव्य से मात्र एक दिनके लिये ही मुक्त कर दिया जाय और वह काम पुरुषों को सौंप दिया जाय तो मात्र चौवीस घंटों में ही हजारों बालकों के प्राण नष्ट हो जायँ, हजारों ही पिता उस आनन्द दायक कामसे भी दुःखित होकर अपने प्राणों को स्वयं त्याग दें, हजारों पिता अपने प्रिय बालकों का मोह तज कर मारे दुःखके उन्हें छोड़ कर जंगलों में भाग जायँ। एक दिन में ही इस प्रकार दुनिया भर के पुरुषों का नाकों दम आ जाय। निर्दोष छोटे बालकों को पालने का महान कार्य जितना पुरुषों के लिये दुःख और आपत्ति भरा है उतना ही वह स्त्रियों के लिये आनन्द का देनेवाला है। बच्चों के पोषण का पवित्र और पुण्य शाली महान कार्य प्रेमके साथ विशेष सम्बन्ध रखता है और स्त्रियाँ स्वयं प्रेमकी मूर्ति होती हैं अतः कोमल बच्चों के पालन पोषण करने का महान् कार्य उनकी कोमल तथा प्रेम भरी प्रकृति के अनुसार ही प्रकृति देवी—कुदरत ने उन्हीं के स्वाधीन रक्खा है। पुरुष चाहे जैसे पराक्रम के काम कर सकता हो, पुरुष अपने पुरुषार्थ द्वारा चाहे

जैसे महान में महान कार्य कर दुनिया को आश्चर्य चकित करता हो तथापि पुरुष की लगाम स्त्री के ही हाथ में रहती है।

अपने बालकों को महान पुरुष बनाने के लिये स्त्रियों को उनका पालन पोषण करते समय अपने आचार विचार द्वारा मिलने वाले शिक्षण पर बराबर ध्यान रखना चाहिये। बालकों को सदाचारी बनने के शिक्षण में जितनी त्रुटि रहेगी उतनी ही उस योग्य माताकी योग्यता में त्रुटि समझना चाहिये। यदि बालक वहमी रहे तो माता के दीमाग की कमजोरी समझना चाहिये। बालक डरपोक निकले तो माताके हृदय की भीरुता समझना चाहिये। यदि बालक रोगी निकले तो माताकी ही भूलका परिणाम समझना चाहिये। यदि बालक निर्बल मनवाला होवे तो उसमें माता की ही मानसिक कमजोरी को कारण समझना चाहिये, यदि बालक मूर्ख रहे तो वह माता की ही मूर्खता का परिणाम समझना चाहिये, यदि बालक अपराध करना सीखे तो वह माता का ही दोष समझना चाहिये। यदि बालक कायर निकले, प्रमादी–दरिद्री निकले, अधर्मी निकले, अनीतिवान हो, कर्तव्य ज्ञान रहित हो, स्वदेश प्रेम शून्य हो, और यदि वह अपने आचार विचार से रहित हो तो उसमें माताकी ही त्रुटियाँ समझनी चाहिये। क्यों कि बालक एक छोटे पौदे के समान है, उसे जिधर को नमाया जाय नम सकता है। बालक पवित्र और कोरे घड़ेके समान स्वच्छ अन्तःकरण वाले होते हैं, अतः उनका हृदय फोटोग्राफ लेने की काचकी प्लेट के मानिन्द होता है, उस पर जिस प्रकार के संस्कार रूप फोटो लेना हो वैसा ही लिया जा सकता है। बालक कुँभार के चाक पर पड़ी हुई मट्टी के समान होते हैं, उनका जैसा घाट घड़ना हो घड़ा जा सकता है। बालक तये हुए सीसे के समान हैं उन्हें जैसे सांचे में ढालना हो ढल सकते हैं। बालकों का अन्तः-करण कोरे कागज के समान है उस पर जैसा मजमून लिखना चाहो लिखा जा सकता है तथा जो छापना हो सो छप सकता है, एवं बालक एक ऐसे वृक्ष के पौदे के समान हैं कि उन्हें इच्छानुसार सींच कर सुन्दर मधुर मनोज्ञ फल प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यह सब कुछ अपनी कुलदेवियों द्वारा ही हो सकता है। गृह बगीचे क

माली माता ही है, इस लिये उस बगीचे में उगने वाले सुवृक्ष के पौदेका भली प्रकार सिंचन कर उससे सुस्वादु—सुमधुर फल प्राप्त करना यह माता रूप माली के ही हाथ में है। यदि बागका माली ऊगते हुये वृक्षकी बेदरकारी रक्खे, उसका सिंचन करने में बराबर लक्ष न दे तो वह वृक्ष अकाल में ही कुमला जाता है।

बालक कोमलता सीखने के महान साधन हैं, माता पिता की नाजुक सहानुभूतियों को विकसित कर उन्हें सुदृढ़ बनाने का साधन बालक ही हैं, निष्कपट प्रेम सीखने का साधन बालक ही हैं, माता पिताकी सोती हुई उच्च वृत्तिओं को जागृत करने का साधन बालक ही हैं, माधुर्य और आनन्द का निर्दोष पाठ सिखाने का साधन बालक ही हैं, बालक ही मानसिक निर्बलता से पैदा होने वाली विकारित वृत्तिओं से बचाने का महान साधन हैं, बालक ही निर्दोषता एवं सरलता का पाठ सिखाते हैं और बालक ही पति पत्नी के पारस्परिक प्रेमको सदाके लिये जोड़ रखने वाली मजबूत संकल के समान हैं। बहुत से कुटुम्बों में तो बालक के लिये ही पति पत्नी में पारस्परिक प्रेम टिका रहता है, क्यों कि बालक यह एक स्त्री पुरुष के प्रेमको बढ़ाने वाला महान साधन है और यह साधन बाह्य नहीं किन्तु पति पत्नी दोनों की आत्मैक्यता का परिणाम रूप आन्तरिक गहरेपन का कारण है। अतः उन्हें अपना प्रतिनिधि समझ कर उनका पालन पोषण करते समय उन में उच्चतर संस्कार डालने का प्रयत्न करना चाहिये।

माता पिताकी भूल ही बालकों की नालायकी का कारण है। जिन बालकों को खिलाते समय, पिलाते समय, सुलाते समय प्रतिक्षण आनन्द ही मिलता है यदि उन्हीं बालकों को जरा बड़ी उमर में देख कर खेद हो—दुःख पैदा हो तो दिलमें यह भावना पैदा होती है कि वह बाल्यावस्था का आनन्द मात्र बाहर से ही सुन्दर दीखने वाले केसुपुष्प के समान था, अन्त में उसका कुछ भी फल न मिल कर उसमें से कडुवा ही परिणाम निकला। ऐसा बनना बड़े खेदकी बात है, क्यों कि वह बाल्यावस्था का आनन्द, वह निर्दोष बच्चों सम्बन्धी प्रेम किसी भी प्रकार के विकार से दूषि-

त न था, उस में किसी प्रकार के अपने स्वार्थ की गन्ध न थी, तथापि यदि उस आनन्द का ही परिणाम आज निरानन्द में उपस्थित हुआ तो समझना चाहिये कि उस बाल्यवय सम्बन्धी आनन्द के समय अपने कर्तव्य में कुछ भी त्रुटि जरूर रह गई है। वह त्रुटि यही है कि उस बाल्यवय सम्बन्धी बालक के निर्दोष आनन्द का अनुभव करते हुये उस में अच्छे संस्कार डालने नहीं आये। उस बाल्यवय सम्बन्धी आनन्द के समय ही उस निर्दोष अन्तःकरण वाले बालक में यदि अच्छे संस्कार डाले जायँ तो अवश्य ही मीठे फल चाखने का समय आवे, वह बाल्यवय का पवित्र आनन्द निरानन्द का रूप धारण कर अपने सामने न आवे। परन्तु खेद की बात है कि हमारे देशके कुटुम्बों को बच्चोंका पालन पोषण करना ही नहीं आता।

बहुत से उच्च खानदान वाले कुटुम्बों में भविष्य काल में अपने प्रतिनिधि बनने वाले अपने पवित्र हृदयी बालकों का पालन पोषण हलकी जाति के नौकरों से कराया जाता है, बहुतसे उच्च कुटुम्बों की दशा हमने आंखों देखी है कि वे अपने देव कुमार जैसे बच्चों को नीच जातिवाले कमीन नौकर को खेलने के लिये दे देते हैं। वे उन पाक बच्चों को अपनी जाति स्वभाव तथा अपने नीच संस्कारों के अनुसार ही नीच शब्द तथा आचरण सिखलाते हैं, उन्हें खराब चेष्टायें करना सिखलाते हैं। उससे उन बच्चोंके कोमल तथा कोरे अन्तःकरण में उसी प्रकार के बुरे संस्कारों की असर पड़ती चली जाती है। बहुत से कुटुम्बों के मूर्ख माता पिता तो स्वयं अपने आप ही अपने बालकों को बुरे संस्कार डालते हैं। वे बच्चों को गोद में लेकर खिलाते समय उन्हें दिल्लगी में खराब शिक्षण देते हैं। वे बच्चों से जान बूझ कर खराब शब्द बुलवाते हैं, खराब चेष्टायें कराते हैं और उनके मुखसे वैसे शब्द सुन कर तथा वैसी चेष्टायें देख कर बड़े खुशी होते हैं। वे मूर्ख माता पिता उस समय स्वयं बालक बन जाते हैं और उस निर्दोष बालक को अपना दिल बहलाने का एक खिलौना समझते हैं। ऐसे मा बाप अपनी सन्तान की अमूल्य जिन्दगी को स्वयं अपने

आप बरबाद कर डालते हैं। क्यों कि बच्चा माता पिता की दिल्लगी नहीं समझता, वह तो शुद्ध अन्तःकरण से माता पिता के उच्चारित शब्द तथा आचरित आचार का अनुकरण करना जानता है और वह अनुकरण ही उसके जीवन में उसका प्राथमिक शिक्षण है। यदि भारत की मातायें यह समझने लग जायँ कि माता की गोदमें मिलने वाला गृह शिक्षण ही बालकों के जीवन को उच्च बनाने का महामंत्र है, उसी शिक्षण से बालकों में बुरे या भले संस्कार पड़ते हैं, उसी शिक्षण से वे माता पिताकी सेवा करने लायक या नालायक बनते हैं, उसी शिक्षण पर उनके जीवन भरका सुख या दुःख अवलंबित है तो उनसे ऐसी महान भूल न हो सके। वे बराबर अपने कर्तव्य का पालन करें। परन्तु खेद तो इसी बातका है कि हमारे देशके माता पिता अपने बच्चों के प्रति अपने पवित्र कर्तव्य ज्ञान से सर्वथा वंचित हैं। इसी कारण अन्य सुख की सामग्री प्राप्त होने पर भी आज मनुष्यों का गृह जीवन दुःखमय देख पड़ता है। कुटुम्बों को सुखी बनाने का महान साधन, गृहजीवन सम्बन्धी दुःखों से मुक्त होनेका राज मार्ग और प्रजा को कर्तव्य परायण बनाने का अद्वितीय उपाय यही है कि बालिकाओं को—स्त्रियों को उनके कर्तव्य का भान कराने वाला शिक्षण दिया जाना चाहिये। इस के ही बिना इन्सान में इन्सानियत आने में त्रुटि रहती है।



स्त्री और पुरुष।



जिस घरमें होता नहीं नारीका सत्कार,
नरकतुल्य वह भवन है निष्फल सब व्यवहार ॥

यह बात तो हम प्रथम ही कह चुके हैं कि अनादि अनन्त काल-चक्रात्मक इस संसार में अन्य सर्व प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य जातिको ही विशेषाधिकार प्राप्त हुये हैं। मनुष्य जाति में पुरुष हो या स्त्री उन दोनोंको ही कुदरत की ओर से समानाधिकार मिले हैं।

"आहार निद्रा भय मैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्"

यों तो पशु प्राणी भी मनुष्य के समान ही खान, पान, भय, निद्रा, मैथुन, गमनागमन, वगैरह क्रियायें करते हैं और मनुष्य के समान ही दुःख सुख का भी अनुभव करते हैं। आहार विहार में मनुष्य और पशुपक्षियों के बीच कुछ भी भेद नहीं। मनुष्य में सर्व प्राणियों की अपेक्षा महान में महान एक यह गुण है कि वह अपने तथा दूस-रोंके हिताहित को समझने की शक्ति धारण करता है। इसी कारण मनुष्य तमाम प्राणियों में श्रेष्ठ गिना जाता है। मनुष्य को पूर्वोक्त अपने तथा दूसरों के हिताहित को समझने की शक्ति आत्मविकास करने के लिये मिली है। मनुष्य जीवन के सिवाय अन्य किसी भी जीवन में पूर्वोक्त शक्ति प्राप्त नहीं होती और उस शक्तिके विना आत्म-विकास नहीं हो सकता। इस लिये यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा को अपने आत्मविकास के लिये ही मनुष्य जीवन प्राप्त होता है।

यह तो अनुभव सिद्ध ही है कि संसार में हरएक कार्य को सिद्ध करने में दूसरे मनुष्य की सहायता लेनी पड़ती है। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं कि जो दूसरे मनुष्य की सहाय विना मिल सकती हो। गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सुगमता से अपने जीवन जहाज को विकास-मार्ग में ले जानेके लिये मनुष्य को उत्तर साधक के समान किसी एक दूसरे मनुष्य की जरूरत पड़ती है। उसे ऐसे उत्तर साधक

की आवश्यकता है जो अपने गुण रूप स्वभावादि में उसके समान वयवाला होकर उसके जीवन सम्बन्धी हरएक सुखदुःख के प्रसंगों में उसे सहायक हो और उसके सुखदुःख को अपना सुखदुःख मान कर उससे सुखी और दुःखी हो। पूर्वोक्त उद्देश की पूर्तिके लिये ही संसार में लग्नके द्वारा एक दूसरे का जीवन एक दूसरे के साथ जोड़ा जाता है। एक दूसरे के सुखदुःख में भाग लेने के लिये ही कुदरत के साम्राज्य में स्त्री पुरुष का जोड़ा निर्मित है।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि एक दूसरे के जीवन विकास के लिये ही उत्तर साधक तरी के कुदरत ने यह लग्न की योजना की है तो फिर वह स्त्री पुरुष के लिये ही क्यों की गई ? एक दूसरे के जीवन विकास के लिये परस्पर उत्तर साधक के तौर पर स्त्रीको स्त्री और पुरुष को पुरुष भी सहायक बन सकता है। इस बातका उत्तर यही है कि जीवन विकास की पारस्परिक सहायता में वह उत्तर साधक जितनी प्रबल सहानुभूति रखने वाला होना चाहिये या एक दूसरे के हरएक अनुकूल वा प्रतिकूल जीवन प्रसंगों में अपने मन वचन तथा शारीरिक वृत्ति प्रवृत्तियों द्वारा एक दूसरे को सुख और शान्ति पहुँचाने में जितनी प्रबल भावना वाला होना चाहिये उतनी सहायक वृत्ति या प्रवृत्ति धारण करने की योग्यता वाली भावना के अभाव से स्त्रीको स्त्री और पुरुष को पुरुष उसके जीवन विकास में उत्तर साधक के तौर पर प्रबल सहायक नहीं बन सकता। क्यों कि कुदरत ने स्त्री का ही हृदय या अन्तःकरण ऐसे परमाणुओं से निर्माण किया है कि वह अपने जीवन सहचर के उत्तर साधक पनमें अपने प्राणों की भी यदि आहुति देनी पड़े तो उस समय किसी भी प्रकार का विचार किये विना ही विलंब रहित अपने कर्तव्य को पालने में जरा भी पीछे न हिचके। उसे हर प्रसंगों में हर प्रकार से शान्ति पहुँचाने में तत्पर रहे। इसी प्रकार कुदरत ने पुरुष का हृदय भी ऐसे परमाणुओं से बनाया है कि वह अपनी जीवन सहचारिणी को हर एक प्रसंगों में हर तरह से सुख पहुँचाने में स्वाभाविक तया ही तत्पर रहा करे। अर्थात् स्त्रीके

हृदय में पुरुष के हृदय को आकर्षित करने और पुरुष के हृदय में स्त्रीके हृदय को आकर्षित करने का स्वाभाविक ही प्रबल प्रेमगुण होने के कारण और इससे वे एक दूसरे के जीवन में परस्पर हरएक प्रकार के सुख पहुँचाने में अद्वितीय सहायक होने की सहज भावना वाले होने से कुदरतने उन्हीं को परस्पर एक दूसरे के जीवन विकास का उत्तर साधक पसंद किया है और इसी कारण उन्हीं में प्रेमग्रंथि—लग्न-विवाह की योजना निर्माण की है।

जब एक दूसरे के अन्तःकरण में एक दूसरे के प्रति हार्दिक प्रेम भाव जागृत हो तब ही वे एक दूसरे के जीवन विकास-में उत्तर साधक या पारस्परिक सुखदुःख के सच्चे हिस्सेदार बन सकते हैं। एक दूसरे के प्रति—परस्पर पति पत्नीके प्रति उनमें प्रेमभावना का जागृत होना कितने एक अंशमें ही नहीं बल्कि मुख्य वृत्तिसे बहुतसी बाह्य बातोंकी भी अपेक्षा रखता है और वह यही कि वे दोनों स्वरूप से, स्वभाव से, विद्यासे, उमर से आरोग्यता से तथा गुणसे समान हों। इन पूर्वोक्त बातों में यदि एक बातकी भी न्यूनता होगी तो उतने ही अंशमें वह जोड़ा सुख से भी वंचित रहेगा। जिस स्त्री पुरुष के जीवन की गांठ पूर्वोक्त गुणों की ओर दुर्लक्ष कर, उनके जीवन सम्बन्धी सुख दुःख की उपेक्षा कर किसी तुच्छ लालच से एक दूसरे के जीवन के साथ बाँधी जाती है वे बिचारे जीवन भर सच्चे सांसारिक सुखसे सर्वथा वंचित रहते हैं। अर्थात् वर कन्याके गुण, रूप, स्वभाव, वय आदि में विसमता होने से उनका जीवन सुखी नहीं बन सकता। गृहस्थाश्रम की कल्प लता की वृद्धि तथा सफलता मात्र पतिपत्नी के समान सद्‌गुणों पर ही अवलंबित है।

गृहस्थाश्रम का श्रेष्ठ फलरूप श्रेष्ठ सन्तान की उत्पत्ति भी पति पत्नी के समान सद्‌गुणों पर आधार रखती है। यदि पति पत्नी की पूर्वोक्त सद्‌गुणों से बराबर समान ही जोड़ मिली होगी तो उनकी सन्तान भी अवश्यमेव नामांकित होगी। यदि उन दोनों में से एक में भी कोई दूषण या ऐब होगा तो उनकी सन्तान में भी उस दूषण या ऐब का होना अवश्य संभवित है। यदि पति पत्नी

में कोई असाधारण महान सद्गुण होगा तो उनकी सन्तान में उस असाधारण महान् सद्गुण का होना भी आवश्यक है। यदि पति या पत्नी में किसी प्रकार का रोग होता है तो बहुधा उनकी सन्तान में भी वह रोग पाया जाता है। यह बात तो आज सैकड़ों कुटुम्बों में प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि कई पीढ़ियों से पीढ़ी दर पीढ़ी बाप दादाओं के रोग परंपरा से उनकी सन्तान में चले आ रहे हैं।

संसार में विवाह का हेतु ही यह मालूम होता है कि पति पत्नी के भाव से एक दूसरे का हर तरह से सहायक बन कर सदाचारी एवं सुखी गृहस्थ जीवन बितावे और अपने भोग विलासों में परिमिताचरण से धर्म कर्म निष्ठ हो अपने जीवन में आत्म विकास की सिद्धि करे। आज तो विवाह का पवित्र हेतु ही उड़ गया है। बे जोड़ विवाहों की ही भरमार देख पड़ती है। बस इसी लिये गृहस्थ जीवन दुखी है। बे जोड़ पति पत्नी में प्रेमका अभाव होने से सदा काल घरमें कुसंप रहता है। जहाँ पर स्वयं पति पत्नी में ही कुसंप हो वहाँ से सांसारिक सुख हजारों कोस दूर भाग जाता है और वैसी कुसंप वाली घूड़फूड़ की परिस्थिति में जन्म लेने वाली सन्तान भी अच्छी नहीं हो सकती। वर वधू के स्वभाव का मिलाप होगा या नहीं यह जानने के लिये ही विवाह से पहिले वर कन्याकी गोत्र राशिका मिलान कराया जाता है और उस गोत्र, ग्रह, राशि, तथा वर कन्याके स्वभाव का निरीक्षण करने का मुख्यतः हेतु यही है कि उन दोनोंका गृहस्थ जीवन सुखी एवं उच्च कोटिका सदाचारी बने। अतः इस पवित्र हेतुके अनुसार वर कन्या के गुण, स्वभाव, वय आदिका बराबर निरीक्षण किये बाद ही उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराने की आवश्यकता है।

किसी समय भारत में विवाह प्रणाली की क्रिया बड़ी महत्त्व की एवं पवित्र फर्ज समझी जाती थी। उस समय गृहस्थाश्रम के योग्य शास्त्रोक्त क्रियाविधि पुरस्सर कन्या दान किया जाता था। उस पवित्र लग्न में पति अपनी विवाहिता पत्नीको अपना सर्वस्व समझता था और पत्नी अपने पतिको अपना आराध्य देव समझती थी। क्यों कि वह विवाह की क्रिया हेतु विधि पुरस्पर होती थी। वर

कन्या विवाह का हेतु समझते थे तथा उनका ग्रंथि बन्धन कराने में निमित्त कारण उनके माता पिता वर कन्याके वय, रूप, गुण, स्वभाव वगैरह का बराबर निरीक्षण करके योग्य मेल मिलाते थे। जब से इस धर्मप्रिय भारत भूमि में लग्नका हेतु नष्ट हुआ है तब से ही भारतीय गृहजीवन पशु जीवन तुल्य बन गया है। भारत वासिओं के गृहजीवन सम्बन्धी दुःख और विषमता का कारण ही लग्नका पवित्र हेतु भूल जाना है। आज कल तो बहुधा विषय वासना की तृप्ति के ही लिये लग्न किया जाता है। मनुष्यों में विकार भावना का इतना प्रबल जोर बढ़ गया है कि वे अपने पवित्र कर्तव्य से पतित होकर नीच कृत्य करते हुये जरा भी आगा पीछा नहीं देखते। विकार वासना के वश होकर वे पचास साठ वर्षकी उमर तक भी जब कि वे बाबाजी कहलाते हैं तथा मृत्यु देवी के शरणागत होने के लिये जब यमराज की हद (सर्हद) तक में भी पहुँच जाते हैं उस समय में भी वे अपनी क्षणिक विकार वासना की तृप्ति के लिये एक बिचारी निर्दोष बालिका का जीवन सदा के लिये जोखम में डालते हुये जरा भी नहीं हिचकिचाते। ऐसी नीच वृत्तिवाले मनुष्यों ने तो स्त्रीको मात्र पुरुषों के दिल बहलाने का साधन समझा हुआ है। बालकों का खिलौना तो दो चार पैसे में ही आ जाता है, यदि आज कल के नवीन निकले हुये विलायती फेन्सी खिलौने खरीदें तो भी दो चार आने या एक दो रुपये में ही मिल सकते हैं परन्तु विकार वासनाओं के वश हुये नीच वृत्तिवाले और अपने क्षणिक स्वार्थ के लिये दूसरे के जीवन को अपना सिकार बनाने वाले हमारे श्रीमन्त बूढे बाबाओं के खिलौनों की कीमत तो आज दश दश हजार एवं पंद्रह पंद्रह हजार तक पहुँच गई है। धिक्कार है उन गडरियों को जो अपने स्वार्थ के लिये बिचारी निरपराध गरीब बकरियों को बूढे ऊँटों के गले में बाँधते हैं।

जिस देशमें इस प्रकार के विवाह या लग्न होते हों उस देशकी प्रजा प्रतिदिन अधिकाधिक अवनति के गढेमें पड़ती हो या संसार-जीवन में अनेक प्रकार की कदर्थनाओं से पीडित होती हो तो उस में आश्चर्य ही कौनसा है? गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष में, बाप

और बेटे में, सासु और बहू में, नणंद और भाभी में जो आज अनेक प्रकार के असंतोष कारक झगड़े टंटे देख पड़ते हैं इस गृहकलह का मुख्य कारण बेजोड़ विवाह ही हैं। स्त्री और पुरुषों में जो आज छोटी उमर में ही अनेक प्रकार के रोग लागु पड़ते हैं इसका भी मुख्य कारण अयोग्य विवाह ही हैं तथा सूरवीर के बदले भारत की संतान जो आज प्रतिदिन असक्त दुर्बल बनती जा रही है, अर्थात् भारतीय प्रजाका जो आज मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक बल घटता जा रहा है इसका भी मुख्य कारण भारत की अयोग्य विवाह प्रनाली ही है। अयोग्य विवाह प्रनाली का प्रधान कारण तो हमारी समझ में यही आता है कि हमारे देशके माता पिताओं ने अज्ञानता के कारण यह समझा हुआ है कि चाहे जिस अवस्था में अपने बालक बालिकाओं का विवाह कर देना ही हमारा मुख्य कर्तव्य है। इस प्रकार के विवाह से लड़का लड़की दुखी या सुखी होंगे इस विषय में सोच विचार करने का तो वे अपना कर्तव्य ही नहीं समझते, मात्र इतना ही समझते, हैं कि लड़का चाहे मूर्ख हो या रोगी, दुराचारी हो या अत्याचारी, किं बहुना चाहे वह मूर्खता के कारण अपना पेट भरने जितना भी न कमा सकता हो परन्तु उसका विवाह करा देनेसे माता पिता अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाते हैं! वैसी अवस्था में उस विचारे निखट्टु लड़के के ऊपर विषम संसार का द्विगुणा भार पड़ने से वह भले ही जीवन पर्यन्त दुःख भोगता रहे परन्तु मूर्ख, रोगी, असक्त लड़के का भी विवाह न हो तो माता पिता का कर्तव्य नहीं पल सकता! मानो उनकी आबरु ही नहीं रहती। इस प्रकार की मूर्खता भरी मिथ्या मान्यताओं ने ही तो आज भारत को विनाश कारक अवनतिके मार्ग पर चढाया है।

हमारे देश में माता पिता अपने मूर्ख, रोगी, अपाहिज तथा नालायक बालकों का भी विवाह करा देना इसे अपना परम कर्तव्य समझते हैं परन्तु यूरोपादि पाश्चात्य देशों में अपनी सन्तान के प्रति माता पिताका मुख्य कर्तव्य इस से जुदा ही समझा आता है। वहाँ के माता पिता अपनी अयोग्य तथा नालायक सन्तान

को भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करा देना, गृहस्थाश्रम के योग्य विवाह के हेतु समझाये विना ही या अपनी सन्तान में उस प्रकार की समझ शक्ति का अभाव होने पर भी उसका विवाह कराना ही अपना कर्तव्य नहीं समझते किन्तु अपनी सन्तान सांसारिक जीवन दौड़ में भली प्रकार विजय प्राप्त कर सके, वह स्वयं अपने जीवन सम्बन्धी सुख दुःख का विचार कर अपने हितका मार्ग शोध सके और स्वतः अपने बल पर ही अपना जीवन भार उठा सके इस प्रकार का शिक्षण देना ही अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं। विवाह के बारे में वहाँ की प्रजा स्वयं अपने आप ही जवाबदार है। वहाँ की संस्कृति ही ऐसी है कि वहाँ के सुशिक्षित समझदार एवं योग्य वयके लड़की लड़के अपनी जिन्दगी भर के दुःख सुखके साथी को स्वयं अपने आप ही ढूँढ निकालते हैं। अर्थात् वहाँ के माता पिताओं को अपनी सन्तान के विवाह सम्बन्धी जरा भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जिस वक्त वहाँ की सन्तान में विवाह की याने वर वधू बनने की योग्यता प्राप्त हो जाती है उस वक्त वे स्वयं ही अपनी वय गुण रूप स्वभावादि योग्यता के अनुसार वर या कन्या को ढूँढ कर धर्मस्थान में जाकर परस्पर प्रेमिक विवाह कर लेते हैं। इस बात में उनके माता पिता उन्हें जरा भी हरकत नहीं करते, बल्कि उल्टे खुश होते हैं। यदि वहाँ की सन्तान विद्याभ्यास में ही अधिक आनन्द मानने के कारण या अन्य किसी कारण अपने मनकी मरजी न होनेसे चालीस या पचास वर्ष पर्यन्त भी विवाह करना न चाहे तो माता पिता की मजाल नहीं कि उनकी इच्छा के विरुद्ध वे लड़की लड़कों को विवाह के लिये विवश करें। यदि सच पूछा जाय तो पाश्चात्य देशों की प्रजा ही इस बात के वास्तविक रहस्य को समझ सकी है कि सन्तान के प्रति माता पिता का मुख्य कर्तव्य क्या होना चाहिये।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बाद वहाँ की प्रजाका जीवन भारत वासि-गृहस्थों के समान अनेक प्रकार की कदर्थनाओं से कदर्थित नहीं होता, उसका प्रधान कारण यही है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य जितनी योग्यता होनी चाहिये उतनी वे ब्रम्हचर्याश्रम की अवस्था

में ज्ञानादि शिक्षण द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। जोखम भरे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये ब्रम्हचर्यावस्था में प्राप्त की हुई तैयारी ही जीवन भर सुखकारी होती है। ब्रम्हचर्याश्रम में किसी भी प्रकार की तैयारी किये विना ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना यह जान बूझ कर अपने जीवन की कद्‌र्थना करना है। गृहस्थाश्रम उन्हीं मनुष्यों के लिये मीठा और मधुर है जिन्होंने ब्रम्हचर्याश्रम में गृहस्थाश्रम के योग्य सर्व प्रकार का शिक्षण प्राप्त किया हो, जो अनेक प्रकार के विषम—दुःखप्रद प्रसंगों में भी सुख एवं शान्ति प्राप्त करने का मार्ग शोध निकालने का सामर्थ्य रखते हों तथा जो दूसरों के मुँह की ओर न ताक कर एवं अपने बाप दादाओं की कमाई हुई पूंजी का भी आश्रय न लेकर संसार में स्वावलम्बी जीवन विताने का सामर्थ्य रखते हों। संसार की विषम समस्याओं को किस प्रकार सरलता पूर्वक हल करना चाहिये, उस में किस प्रकार जीवन जीना चाहिये इत्यादि सर्व बातों का जिस मनुष्यने प्रथम से ही पूर्ण शिक्षण प्राप्त नहीं किया उस मनुष्य के लिये गृहजीवन समुद्र के समान खारा, पाषाण के समान कठिन एवं जहर के समान कटु विषमय है।

हिंदुस्तान के उच्च खानदानों में से जब से स्वयंवर मंडप की प्रथा नष्ट हुई है तब से अपनी सन्तान को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना माता पिताओं के हस्तगत हो गया है। यदि माता पिता न हों तो उस लड़के लड़की के नजदीक के सगे सम्बन्धिओं के हाथ में विवाह कराने की बागडोर रहती है। उन विवाह करने वाले वर कन्या की रुचि पूर्वक नहीं किन्तु वे अपनी ही मरजी मुजब वर कन्या का मेल जोड़ते हैं। विवाह का वास्तविक हेतु मालूम न होने के कारण वर कन्या का सुख किस में है इस बात का विचार करने से वे सर्वथा वंचित ही रहते हैं। आज कलकी विवाह प्रथा तो इस प्रकार की नीच और निन्द्य है कि जिसे देख कर हृदय घबराता है। आज कल के माता पिता बहुधा अपनी सन्तान का विवाह धनके साथ करते हैं। वर कन्याका मेल मिलाते समय वर कन्या के वय, गुण, रूप, स्वभाव वगैरह का निरीक्षण करने के

बदले वे मात्र धनका ही निरीक्षण करते हैं। अज्ञान माता पिताओं के मन में यह ठस गया है कि वर चाहे जैसा हो परन्तु धनवान होना चाहिये। वे समझते हैं कि कन्याका सुख वरके वय गुण रूप स्वभाव एवं सदाचार में नहीं किन्तु जास्ती आभूषणों में ही समाया है। कितनेक स्वार्थी माता पिता तो कन्या के सुख दुःखकी तरफ दुर्लक्ष कर तुच्छ लालच के वश हो कन्या के विवाह द्वारा खूब पेट भर कर अपनी स्वार्थ साधना करते हैं। इस प्रकार के माता पिता अपनी कन्या को कन्या नहीं समझते किन्तु उसे वे व्यापार सम्बन्धी कीमती विक्रीय वस्तु समझते हैं और उसके विवाह को महान नफा कारक व्यापार समझते हैं। उस नगद व्यापार में वे बगैर मुशक्कत के दश दश हजार तथा पंद्रह पंद्रह हजार का नफा कमाते हैं। इस प्रकार विवाह के पवित्र हेतुको भुला कर लालचु माता पिता अपनी मिथ्या स्वार्थ साधना कर सदा के लिये अपनी सन्तान का गृहजीवन किरकिरा एवं भारभूत बनाते हैं।

बेलगांव के जिले में एक श्रीमन्त वणिक रहता था। उस के पंद्रह सोहल वर्ष की वयका मात्र एक लड़का था। दैव योग वह लड़का बचपन से ही रोगीष्ट था। किसी कारण उसे दमेका रोग लागु पड़ गया था। घरवालों की बेपरवाही के कारण वह दमेका रोग उस लड़के के शरीर में यहाँ तक घर कर बैठा था कि अब वह असाध्य क्षयरोग का पूर्वरूप बन चुका था। घरकी श्रीमन्ताई के कारण ऐसी अवस्था में भी उस लड़के की सगाई पर सगाइयाँ आ रही थीं। जो मनुष्य अपनी कन्या की सगाई करने आते थे वे यमराज के सन्मुख हुये उस रोगीष्ट वरको नहीं देखते थे, वे सिर्फ उसके घरमें भरी हुई धन दौलत तथा घोड़ा गाड़ी को ही देखते थे। लड़के का पिता कन्यावालों को समझाता था कि भाई! हमारे लड़के की कई वर्ष से तबियत अच्छी नहीं रहती अतः एक आध वर्ष में उसका शरीर निःसल्य—निरोग हो जाय तो फिर सगाई करेंगे। बहुत से मनुष्यों को तो इस प्रकार समझा बुझा कर लड़के के बापने पीछे भेजा, परन्तु उस घर पर कई लड़कियों के पिताकी दृष्टि पड़ती थी इस लिये दूसरे तीसरे दिन कोई न कोई लड़की देने को आया

ही खड़ा रहता था। एक लड़की के बापने लड़के वाले के किसी एक सम्बन्धी से सिफारिस लगाई। उसने लड़के के पिता को यों समझा कर कि ऐसी रूप गुणवान कन्या फिर न मिलेगी, लड़का तो शंकर राव वैद्यकी दवा से दश दिन में अच्छा हो जायगा किसी प्रकार सीधा किया। अब देर ही क्या थी, धनीराम सेठ के लड़के मरीजमल की सगाई होगई। कन्या लीलावती सचमुच ही गुलाब के पुष्प समान सुन्दर रूपवती और साधारण पढ़ी लिखी थी। अपनी सगाई की बात सुन कर अच्छा घर मिलने के कारण गरीब दास की कन्या बिचारी लीला को भी बड़ा आनन्द हुआ। शुभ मुहूर्त में आनन्द महोत्सव पूर्वक लीलाका मरीजमल के साथ व्याह होगया। धनवान धनीराम के लड़के के साथ अपनी लीला कन्याका विवाह कर के गरीबमल अपने मन ही मन कृत कृत्य हो गया।

विवाह हुये अभी पूरे तीन महिने भी न होने पाये थे मरीजमल की बीमारीने भयंकर रूप धारण कर लिया। उसका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जाता है। दमे के मारे उसका नाकों दम आ गया है, रात भर में दश मिनिट तक भी चैन नहीं पड़ती। शंकरराव वैद्य की दवा कुछ भी काम नहीं करती। अब तो प्रतिदिन घर में दो दफा डाक्टर साहब पधारते हैं। परन्तु दवा तो डाक्टर साहब की भी कुछ असर नहीं करती, मात्र आश्वासन देकर ही घर के मनुष्यों को कुछ संतोषित कर डाक्टर साहब फी के रुपये जेबमें डाल कर चले जाते हैं। एक दिन जब कि मरीजमल की व्याधिने भयानक रूप धारण कर लिया और घर वालों के होश हवास उड़ने लगे तब डाक्टर बोला—रोग असाध्य रूप पकड़ गया है, इस पर कोई दवा न चलेगी। बस अब तो कहना ही क्या था, धनीराम पर मानो वज्राघात हो गया। घर के सब स्त्री पुरुषों के छक्के छूट गये। इस कुलका आधार मात्र मरीजमल पर ही निर्भर था। रात के लग भग ग्यारह बजे के सुमार अभागे मरीजमल पर आफतका पहाड़ टूट पड़ा। देखते ही देखते उसके प्राण पखेरु उड़ गये। अब सारे कुटुम्ब में शोक की घनघोर घटा छागई, चारों ओर घर में शोकाक्रन्दन होने लगा। रात भर रोना धोना मचा रहा,

सुबह आठ बजे तक तो संसार में बिचारे मरीजमल के देहका भी नामोनिशान न रहा। इस समय बिचारी मुग्ध स्वभावा लीला अपने पिताके घर पर थी। उस निर्दोष बालिका ने अभी तक तो अपने जीवनाधार पतिदेव के साथ किसी दिन दिल खोल कर बातें तक भी न की थीं। अंकुर फूटते ही बिजली पातके समान दुर्दैवने निरपराध बिचारी लीला का सर्वस्व लूट लिया। दूसरे दिन खबर लगते ही गरीबमल शोकाक्रन्दन करता हुआ लीला को साथ लेकर समदी के घर पर आया। आज थोड़ी देरके लिये घर में जरा रोना पीटना बन्द हुआ था परन्तु अब लीला को देख सबके धैर्यका पुल टूट गया, घर में सब ही चिल्ला कर रोने लगे। लीला को देख सबका हृदय फटने लगा। लीला का पिता यह दशा देख बिलख बिलख कर रोने लगा। गरीबमल को रोते देख दग्ध हृदय धनीराम बोला—पुत्र तो मेरा मरा है, भाई! सर्वस्व तो मेरा लुट गया है तुम किस लिये रोते हो? लोग बोले—इन्हें क्या कुछ कम दुःख हुआ है? इनकी लड़की का पति मर गया। धनीराम बोला—बिलकुल झूठ बात है, इनकी लड़की का पति नहीं मरा है, मेरा पुत्र ही दुनिया से बिदा हो गया है। इनकी लड़की का पति तो घर में ही है। इन्होंने अपनी लड़की मेरे पुत्र से नहीं व्याही थी, किन्तु मेरे घर में भरे हुये धन से ही इन्होंने लीला का व्याह किया है सो तो नष्ट नहीं हुआ है। धन से घर भरा है, मेरा प्राण प्यारा पुत्र ही इस घर से सदा के लिये बिदा हो गया! इतना कह कर धनीराम ने शोकके आवेश में अपना मस्तक फोड़ डाला।

इस तरह के हेतु शून्य अयोग्य विवाहों द्वारा किस प्रकार का भयंकर और हृदय द्रावक परिणाम उपस्थित होता है सो तो विचारशील मनुष्यों से छिपा हुआ नहीं है। ऐसे मन माने हानि कारक विवाहों से बाल विधवाओं की भरती होती है इतना ही नहीं किन्तु समाज का अनेक प्रकार से ह्रास होता जा रहा है। बाल विधवाओं की शोचनीय परिस्थिति के लिये तो हम अन्यत्र एक प्रकरण ही जुदा लिखेंगे। उन बिचारी मूक दुखियारियों के लिये आज पृथ्वी पर न्याय ही कहाँ है? उनकी पुकार तो परम दयालु प्रभु ही

सुनेगा। हाँ इतना तो हम यहाँ पर अवश्य कहेंगे कि माता पिताओं-की लालच भरी स्वार्थ साधनाओं से अयोग्य विवाहों द्वारा बाल-वैधव्य को प्राप्त करने वाली बाल विधवाओं की दुःख भरी आह समाज भरको पापका हिस्सेदार बना कर उनके मातापिता को तो अवश्य ही दुर्गति में ले आयगी।

प्रेम लग्नके बारेमें बहुत से समाज सुधारकों का मत है कि युवक लड़के तथा लड़किओं को दुनिया दारीका कुछ अनुभव नहीं होता एवं सारासार विचार करने की परिपक्व बुद्धि नहीं होती इस लिये वे अपने वास्ते स्वयं अपनी जिन्दगी का हिस्सेदार ढूंढ निकालने में भूल कर बैठे, अतःवैसे अपूर्ण प्रेम लग्नोंकी अपेक्षा माता पिता ही अपनी सन्तान के लिये जो योग्य वर या कन्याका मेल मिला कर लग्न करते हैं सो ही ठीक है। यह सिद्धान्त सर्वथा असत्य और पक्षपात भरा है। क्यों कि आज प्रत्यक्ष देखते हैं कि पाँच सात वर्ष के लड़की लड़के भी अपने जीवन सम्बन्धी सुख दुःखको समझते हैं तो फिर जिसने बीस बाईस वर्षकी उमर तक विद्याभ्यास किया हो, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के योग्य सर्व प्रकार के शिक्षण द्वारा तैयारी की हो इस प्रकार की सुसंस्कारी सन्तान जिन्दगी पर्यंत अपने जीवन सम्बन्धी सुख दुखके भागीदार को स्वयं ढूंढने में भूल करेगी ऐसा कहना ही भूलभरा है। जिस में अपने लड़की लड़के की अभिरुचि हो उस प्रकार के प्रेमलग्न-विवाहोंकी अपेक्षा जो आज स्वार्थी माता पिताओं के हाथसे गुड्डा गुड़ि-याओं के लग्न के समान अयोग्य विवाह होते हैं जिनमें कि वरका कन्या की तरफ प्रेम ही नहीं होता और कन्याका वरकी ओर प्रेम नहीं होता ऐसे उद्देश रहित विवाहों से कितना भयंकर परिणाम आता है यह विचारने की आवश्यकता है।

ऊंटके गलेमें बकरी बाँधने के समान पचास पचास वर्षके बूढे बाबाओं के साथ द्रव्यकी लालच में पड़ कर अपनी बिलखती हुई कन्याका गठ जोड़ा करा देना, इस तरह के अयोग्य विवाह भी आज पवित्र भारत में योग्य विवाह कहलाते हैं यह कितनी सोचनीय बात है !! एक किसी रोगीष्ठ वरके साथ धन लोभमें आकर

अपनी कन्याका सम्बन्ध जोड़ देना इसे भी आज उचित विवाह कहते हैं ? जिस समय बालक बालिकायें विवाह—ब्याहका कुछ भी तात्पर्य न समझ सकते हों, संसार-भावना की गन्ध तक भी अभी जिनको न आई हो, अभी दूध के भी जिनके न टूटे हों उस अवस्था में ही अपने अनजान मुग्ध बालक बालिकाओं का गठ जोड़ा करा देना इसे भी आज स्वार्थी युगमें योग्य विवाह कहते हैं !! ।

जिस देशकी विवाह प्रणाली हेतु शून्य होकर इस प्रकार विकारको प्राप्त हो गई हो, जिस देशमें बेजोड़ विवाहों की ही भरमार हो रही हो, जिस देश में अपनी क्षुल्लक वासना वृत्तिकी तृप्तिके लिये ही विवाह होते हों, जिस देशके विवाहों में पति पत्नी के पारस्परिक प्रेमकी गन्ध तक भी न हो उस देशकी प्रजा सदाचारी स्वदेश प्रेमी, स्वावलम्बी, आदर्शजीवी एवं समुन्नत कदापि नहीं हो सकती । जहाँ पर माता पिताओं के दिल में अपनी सन्तान के भावी जीवन सम्बन्धी सुख दुःखका सवाल ही पैदा न होता हो, जहाँ के माता पिता मात्र अपने ही निजी स्वार्थ की ओर दृष्टि रख कर अपनी सन्तान के विवाह करते हों, जहाँ इस प्रकार के विवाहों से जिन में कि माता पिताओं का ही निजी स्वार्थ ठांस ठांस कर भरा हो और वर कन्या के सुखदुख का जिनमें जरा भी खयाल न किया जाता हो और वर कन्या चाहे मरो पर हमारा पेट भरो ऐसी मनोभावना से जहाँ पर विवाह क्रियायें होती हों वहाँ की मनमानी विवाह प्रणाली में किस तरह विवाह का पवित्र उद्देश पल सकता है ? कदापि नहीं । देश की प्रजा आज अनेक प्रकार के दुःख भोगती हुई रसातल को जा रही है । भारत की जनता का गृहजीवन दुखी होने के अनेक कारणों में से उस के विवाह की विषमता भी एक असाधारण कारण है । एक पारसी समाज को वर्ज कर प्रायः आज भारत के सब ही उच्च समाजों में विवाह की विषमता के कारण लग भग १०० में ८० कुटुम्ब संसार सुखकी सर्व सामग्री होते हुये भी तथा ऊपर से सुखी देख पड़ते हुये भी महा दुःखमय गृहजीवन बिताते हैं । विना योग्यता प्राप्त किये सुखकी अभिलाषा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले तथा लालचु माता पिताओं

द्वारा उलझन भरे गृहजीवन का भार उठाने वाले बहुत से स्त्री पुरुषों के लिये तो उर्दु की यह कहावत चरितार्थ होती है कि—

न खुदा ही मिला न विशाले शनम्
न इधर के रहे न उधर के रहे।

जो विवाह नहीं किन्तु मात्र विवाह का नाम धारण करने वाली क्रियाओं द्वारा संसार में कूद पड़े हैं उन हजारों स्त्री पुरुषों के दिल में ये विचार पैदा होते हैं कि इस सांसारिक जीवन की अपेक्षा कुमार अवस्था में—ब्रम्हचर्यावस्था में रह कर ही यदि पवित्र जीवन विताते तो उधर का तो कुछ आनन्दानुभव करते। इस प्रकार के दुःखमय गृहजीवन से तो पहली ही दशा अच्छी थी। गृहजीवन की विषमता के कारण आज सैकड़ों कुटुम्बों में हजारों ही स्त्री पुरुषों के हृदयों में पूर्वोक्त विचार पैदा होते हैं। जिस गृहजीवन में सुख के बदले रात दिन चिन्ता, क्लेश, ग्लानी, उद्वेग तथा अनेक तरह के शान्ति विनाशक संकल्प विकल्प रहते हों, जिस जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाओं के कारण गृहस्थाश्रम मात्र भारभूत मालूम पड़ता हो उस सुख रहित जीवन में महान् सन्तान किस तरह पैदा हो सकती है? कदापि नहीं हो सकती।

पूर्वोक्त गृहजीवन सम्बन्धी सर्व प्रकार के दुःखोंका कारण विवाह के हेतुकी शून्यता है और विवाह हेतुकी शून्यता का कारण अपनी सन्तान के विवाह की बागडोर अपने हाथ में रखने वाले स्वार्थी एवं लालचु माता पिताओं की लालच वृत्ति ही है। यह लालच वृत्ति ही संसार के जीवन को दुःख मय बनाती है। वर कन्याका मेल करते समय, उनकी जोड़ी ढूँढते समय उन के माता पिता मात्र धन संपत्ति ही प्रथम देखते हैं। शास्त्र में वर कन्याका जोड़ा ढूँढने के लिये इस प्रकार स्पष्ट लिखा है कि—

आदौ कुलं परीक्षेत ततो विद्यां ततो वयः।
शीलं धनं ततो रूपं देशं पश्चाद्विवाहयेत् ॥

अर्थात् प्रथम कुलकी परीक्षा करना, फिर वर कन्या सम्बन्धी विद्या की परीक्षा करना, फिर उनकी योग्य उमर की परीक्षा करना, फिर उनके शील-सदाचार की एवं स्वभाव की परीक्षा करना, फिर धन संपत्ति देखना, इसके बाद उनके योग्य परस्पर उनका रूप देखना और इसके बाद जिस देश में कन्या देनी हो उस देश को देखना चाहिये। परन्तु आज तो धन से पहले जो खास महत्व पूर्ण चार बातें देखने की कही हैं और जो उनके जीवन को सुखी बनाने वाली हैं उनकी तरफ तो सर्वथा लक्ष ही नहीं दिया जाता। आज तो विवाहों में वर कन्या के सुखदुःख की ओर सर्वथा दुर्लक्ष कर मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि तथा मान बड़ाई और मन मानी मिथ्या मर्तबाई ही सिद्ध की जाती है। श्रेष्ठ कुल, गृहस्थाश्रम के योग्य श्रेष्ठ विद्या-शिक्षण, परस्पर योग्य श्रेष्ठ उमर और श्रेष्ठ सदाचार शील स्वभाव ये चारों ही बातें गृहजीवन को सुखी बनानेवाली हैं, परन्तु आज इन महत्वपूर्ण बातों को कौन पूछता है ? आजकल तो सभी बातों में कलदार रूपचंद की ही पूछ होती है।

आज हरएक हिन्दु कुटुम्ब के विवाहों की ऐसी ही दुर्दशा होती देख पड़ती है। वर, कन्या से चाहे दो चार वर्ष छोटा हो किंवा चार पाँच गुणा वृद्धावस्था वाला हो, किंवा मिथ्या गर्वसे अपनी धर्म पत्नी को एक दासी के समान समझ कर उसके साथ अधमता से बर्ताव करने वाला हो, चाहे जैसे रोगवाला हो परन्तु उसके पास कलदार रुपचंद हों और उससे अपना छोटासा भी स्वार्थ सिद्ध होता हो तो बेसंकोच खुशी के साथ हम उसे अपनी प्राण-प्यारी कन्या देते हुये जरा भी पीछे न हटेंगे, इतना ही नहीं किन्तु ढूँढ कर भी वैसे स्थान में कन्या देनेका प्रयत्न करेंगे। भारत के कई देशों में कितने एक समाजों में तो कन्या बेचने का रिवाज ही भयंकर जोर पकड़ गया है। जिन समाजों में यह हानि कारक रिवाज घुस गया है उन समाजों की इस समय बहुत ही बुरी स्थिति हो रही है। उन समाजों में कन्या के धन लोभी माता पिता कन्या के योग्य घरका तो कभी स्वप्न में भी विचार नहीं करते, वे अपने समाज में धनिकों पर ही नजर रखते हैं। उन्हें जहाँ से अधिक

धनकी प्राप्ति होती हो चाहे वह वर लंगडा, लूला, रोगी, नामर्द एवं वृद्ध ही हो वहाँ पर ही अपनी कन्या को गाय के समान बेच डालते हैं। ऐसे भयंकर हानि कारक रिवाज वाले समाजों में बाल विधवाओं की खूब भरती होती है, अतएव ऐसे समाजों में व्यभिचार तथा अत्याचार भी अत्यधिक होता है। गुप्त रीति से प्रतिवर्ष सैकड़ों भ्रूणहत्यायें—गर्भपात होते हैं, इतना ही नहीं किन्तु उन समाजों में विवाह के योग्य वय, रूप, गुण, सुस्वभाव संपन्न साधारण स्थितिके युवक कुमारे रह जाते हैं और पुत्र पौत्र वाले धनिक बूढे बाबा जो चार या पाँच दफा विवाहित हो चुके हैं मात्र विषय वासना के क्षणिक आवेग में आकर रुपया झुका कर विवाह के योग्य समाज की कन्याओं को खरीद लेते हैं। जिस समाज में माता पिताओं का अपनी निर्दोष पवित्र कन्याओं के प्रति जिन पर कि भारत की भावी प्रजा की उन्नति या अवनति का आधार रहा हुआ है स्वार्थ पूर्ण नीचता भरा बर्ताव होता हो भला वह समाज किस प्रकार सुखी या समुन्नत हो सकता है?।

जिस समाज में पवित्र पूजनीय निर्दोष कन्यायें गाय भैंस पशुओं के समान बेची जाती हों, जिस समाज में प्रतिदिन बालविधवाओं की वृद्धि होती जा रही हो, जिस समाज में प्रतिवर्ष सैकड़ों गर्भ पात होते हों, अनर्थ कारक वृद्ध विवाह के कारण जिस समाज में विवाह के योग्य युवक विवाह के लिये तरसते हों और यह सब कुछ अति हानिकारक क्रियायें देखते हुये भी समाज के नेता चुप्पी लगाये बैठे हों, अर्थात् उस विनाश कारक रीति रिवाज को सुधारने के लिये कुछ भी प्रयत्न न करते हों उस समाज का ह्रास होना-अल्प ही समय में भावी संसार में उसका नाम शेष रहना यह उसके लिये उसका जन्मसिद्ध हक समझना चाहिये।

इससे विपरीत भारत के बंगाल आदि प्रदेशों में कई समाजों में दहेज के अति लोभ से वर विक्रय की बुरी प्रथा पड़ गई है। इस कुत्सित रिवाज के कारण भी वर कन्या का यथायोग्य चुनावपूर्वक विवाह नहीं होता। विवाह की योग्यता पर ही सुखी या दुःखी गृहजीवन का आधार है। योग्य विवाहों से ही संसार के

गृहजीवन में मधुरता आ सकती है और अयोग्य विवाहों से गृहजीवन में कड़वास आती है। मधुरता पूर्ण गृहजीवन में पैदा होने वाली सन्तान अवश्य ही मधुर फल देने वाली होगी और अयोग्य विवाह के कारण कड़वास भरे गृहजीवन में पैदा होने वाली सन्तान कटु फल देने वाली होगी। क्यों कि यह तो हम प्रथम ही कह चुके हैं कि किसी भी प्रकार की त्रुटि रह जाने के कारण यदि विवाह में वर वधू की बराबर जोड़ी न मिली हो तो पति पत्नी में पारस्परिक यथार्थ प्रेम नहीं रहता और पति पत्नी के पारस्परिक प्रेम बिना की सन्तान कदापि सदाचारी, प्रेमी एवं सद्गुणी नहीं हो सकती।

इस लिये प्यारे भारतवासी माता पिताओं! यदि आप सुदृढ, सुन्दर, सदाचारी एवं सद्गुणी सन्तान पैदा करना चाहते हो, यदि आप अपनी भावी सन्तान का गृहजीवन सुखी बनाना चाहते हो, यदि आप अपनी सद्गुणी सन्तान द्वारा अपने सद्धर्म कर्म का उद्धार कराना चाहते हो, यदि आप अपनी सन्तान के द्वारा अपने समाज की भावी समुन्नति इच्छते हो और यदि अपने घरों में कर्म वीर पैदा करके शदियों से गुलामी के बन्धनों में जकड़े हुये अपने प्यारे देशको बन्धन मुक्त कर सुखी बनाना चाहते हो तो आज से ही अपनी सन्तान के विवाहों में सिद्ध होने वाली अपनी स्वार्थीय भावना को तिलांजलि दे दो, अपनी स्वार्थ भरी लालचों को लात मार कर अपने कुलका उद्धार करने वाली, अपने धर्मका उद्धार करनेवाली एवं अपने समाज तथा देशका कल्याण करनेवाली अपनी प्रिय सन्तान को सुसंस्कारी बना कर वय, गुण, रूप, स्वभाव आदि का बराबर मिलान कर के ही सुयोग्य विवाह करो कि जिससे दाम्पत्य प्रेम द्वारा सद्गुण संपन्न कर्मवीर एवं धर्मवीर सन्तान पैदा हो। पारस्परिक सच्चे दाम्पत्य प्रेम द्वारा उनका गृहजीवन सुखी बनाने तथा सद्धर्म कर्मचुस्त गुणी सन्तान पैदा करने के लिये ही तो पूर्व पुरुषों ने वर कन्याका विवाह करने से प्रथम पहिले कथन किये मुजब कुल, विद्या, वय, स्वभाव, धन, रूप, तथा देशकी परीक्षा करने का फरमान किया है। कुल परीक्षा का तात्पर्य यही है कि बहुधा कुल परंपरा से ही कन्या या वरमें गुण दोष पाये जाते हैं,

इसी कारण उस कुलकी परीक्षा करने की आवश्यकता होती है। विद्या की परीक्षा में यह देखने की जरूरत है कि लड़के ने सांसारिक व्यवहार का शिक्षण तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बाद अपने आधे अंगके समान अपनी अर्धाङ्गना—धर्म पत्नी के प्रति उसका क्या कर्तव्य है इत्यादि का शिक्षण उसने प्राप्त किया है या नहीं। वय निरीक्षण में यह देखना चाहिये कि वर कन्या की वय के योग्य है या नहीं एवं कन्या वरकी वयके योग्य-लायक है या नहीं। स्वभावकी परीक्षा भी बराबर करना चाहिये, दोनों का आनन्दी स्वभाव होना चाहिये। यदि वर कन्या में से एक का भी स्वभाव क्रोधी या चिड़चिड़ा, सुस्त या ईर्षालु हुआ तो उनके विवाह सम्बन्धी सुख के अभाव से उपरान्त उनकी सन्तान भी कदापि अच्छी न होगी। धनकी परीक्षा में यही देखना होता है कि वरके पास निर्वाह करने को धन है या नहीं। स्वरूप की परीक्षा में इस बातका निरीक्षण किया जाता है कि कन्या वरको पसंद ही न पड़े ऐसी कुरूपा तो नहीं है ? काणी, लंगड़ी, लूली, अपंग तो नहीं है ? उसे किसी प्रकार का प्रगट या गुप्त रोग तो नहीं है ? बहुतसी दफा विवाह के समय तक वर तथा कन्या को किसी भी प्रकार का रोग प्रगट नहीं होता किन्तु विवाह के बाद थोड़े ही दिनों में वरको बवासीर, दमा तथा श्वास आदि का आजार लग जाता है। इन रोगों की उत्पत्ति का यदि वर्तमान कारण कुछ भी न मिले तो समझ लेना चाहिये कि वह रोग उसके बाप दादा की परंपरा से ही उस में प्रगट हुआ है। बहुतसी लड़कियों को विवाह के बाद थोड़े ही दिन पीछे मिरगी, (फेफरा) तथा पेट में पीड़ा आदि के रोग प्रगट होते हैं। बहुत से भोले अज्ञान कुटुम्बों में तो मिरगी के रोग से भूत, प्रेत, एवं चुड़ेल की शंकायें घर कर जाती हैं। इस प्रकार के बहुत से रोगोंका कारण तो कन्या की माता या उसकी नानी ही होती है। मनुष्यों में बहुत से रोग उनकी कुलपरंपरा से ही चले आते हैं, इस लिये रोगी कुलकी निरोगी भी देख पड़ती कन्या के साथ पाणी ग्रहण करना निषेध किया है। इसी प्रकार वर के विषय में भी समझ लेना चाहिये। वर

कन्या का रूप निरीक्षण करने में इन सब बातों का निरीक्षण करने की आवश्यकता है। क्यों कि अति सुन्दर रूपवती परन्तु रोगी कन्या विवाह तथा सन्तान के योग्य नहीं होती। तथा शारीरिक सुन्दरता ही कुछ काम की नहीं है, उसकी आत्मीय योग्यता भी देखने की जरूर है। शारीरिक सुन्दरता की अपेक्षा आत्मीय सुन्दरता, पवित्रता विशेषतः लाभ कारक है, क्यों कि शारीरिक सुन्दरता का क्षणभंगुर स्वभाव होने के कारण वह सदा काल नहीं रहती, किन्तु आत्मीय सुन्दरता, आनंदी स्वभाव की विमलता सदैव कायम रहती है इतना ही नहीं परन्तु दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाती हुई पति पत्नी उभय के आत्मीय विकाश में वृद्धि करती है। इसके उपरान्त जिस देश में कन्या दी जाती है उस देश संम्बन्धी रीति रिवाज आदि देखने की जरूर पड़ती है।

इस पूर्वोक्त सर्व प्रकार की देखा भालीका सिर्फ यही हेतु है कि वर कन्या गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके किसी प्रकार भी दुखी न हों और परस्पर प्रेम पूर्वक आदर्श गृहजीवन बिताते हुये अपने जीवन में आत्म विकास की वृद्धि करें और यदि सन्तान पैदा करें तो कुल, धर्म, जाति, समाज एवं देशका उद्धार करनेवाली पैदा करें।

बहुत से मनुष्य नररत्नों की खान स्त्री जाति को बिलकुल हलकी दृष्टि से देखते हैं। कितने एक विषयान्ध पुरुष इस नररत्न खानि को पुरुषों के भोगविलास का साधन समझते हैं, कितनेक अभिमान के पुतले स्त्री को पुरुषों की दासी समझते हैं। परन्तु यह समझ सर्वथा भूल भरी है। क्यों कि स्त्री को शास्त्र में पुरुष की अर्धाङ्गना कहा है। संसार में स्त्री विना पुरुष आधा कहलाता है। यदि मनुष्य का वह आधा अंग दुर्बल हो जाय, या असक्त होकर बेकार हो जाय तो वह मनुष्य संसारी जीवन में अनेक प्रकार की विघ्न बाधायें सहने पर भी सुखानुभव नहीं कर सकता। गृहजीवन में सुख प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य को अपना ही आत्मांश समझ कर अपने आधे अंग को पुष्ट बनाना चाहिये। इस आधे अंग की पुष्टि तथा सुन्दरता से ही मनुष्य के सुखकी पुष्टि तथा उस की

शोभा है। संसार में इस आधे अंग विहीन मनुष्यों के जीवन की कुछ कीमत ही नहीं होती। यह पुरुषों का निरा स्वार्थ ही है कि जो अपने जीवन में आनेवाले सुख दुःख के हरएक प्रसंग में समान भाग लेनेवाली अपनी प्रणयनी अर्धाङ्गना को वे हलकी दृष्टि से देखते हैं। शास्त्रकारों ने स्त्री जातिको वीरजननी, नररत्न–खानि आदि कहा है। बहुत से स्वार्थी मनुष्य स्त्रीको कठिन हृदया, निर्दय स्वभावा, तुच्छ स्वभाववाली, विषय वासना की खान, पाप की राशि आदि नीच शब्दोंका वाच्य समझते हैं। परन्तु यह उन पुरुषों की स्वार्थभरी मिथ्या मान्यता है। पुरुष भले स्त्रीको निर्दय हृदय वाली कहो परन्तु यह बात मात्र कथन में ही देखी जाती है, क्यों कि स्त्रियों में पुरुषों के समान निर्दयता का जीता जागता दृष्टान्त कोई नहीं मिलता। किन्तु हाँ अपने आपको सदय मानने वाले पुरुषों की तरफ से स्त्रियों पर अत्याचार बलात्कारादि निर्दयता के सैकड़ों बनाव प्रति वर्ष देख पड़ते हैं। अदालतों में ऐसे बहुत से मुकदमे आते हैं कि अमुक पुरुष ने अमुक स्त्री पर अत्याचार किया या बलात्कार किया। परन्तु अमुक स्त्रीने अमुक पुरुष पर अत्याचार या बलात्कार किया ऐसा आज तक कभी नहीं सुना। इससे यही सिद्ध होता है कि स्त्रियों को पुरुषों से अधिक पापराशि या निर्दय हृदयवाली कहना उतना ही सत्य है जितना कि कसाई की अपेक्षा गाय को अधिक पापराशि या निर्दय हृदया कहना है। स्त्री जाति में यों तो अनेक महान सद्‌गुण पाये जाते हैं किन्तु उन सर्व गुणों में भी जो उस में स्वभाव सिद्ध एक प्रेम गुण है यह सचमुच ही दिव्य गुण है। मनुष्य स्त्रीको अपने सहवास में लेकर उसके दिव्य गुण प्रेमका दुरुपयोग करे, उसे स्वयं प्रेरित कर अनीति के मार्ग में उतारे और इन सब अकृत्यों का कारण स्वयं होने पर भी अपना बचाव करने के लिये स्त्रीको ही दूषित ठहरावे यह कितनी भारी नीचता है? मनुष्य अपनी मानसिक नीच वृत्ति के कारण विषयान्ध होकर अनेक लालचों द्वारा स्त्रीके दिव्य गुण प्रेम को दूषित करता है तथापि वह अपनी मानसिक कमजोरी की ओर नहीं देखता। यदि मनुष्य चाहे तो पतित

में पतित स्त्रीको भी उसमें स्वभाव सिद्ध रहे हुये दिव्य गुण प्रेमके द्वारा सन्मार्ग में ला सकता है, किन्तु वह स्वयं अपनी मानसिक नीच वृत्तिओं पर संयम प्राप्त करने वाला होना चाहिये।

प्रथम कथन किये मुजब स्त्री जाति पुरुष जातिका आधा अंग है, इस आधे अंग में अनेकानेक सद्गुण समाये हैं अतः इसे सदैव सन्मान की दृष्टि से देखना चाहिये। धर्मशास्त्रों में लिखा है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

अर्थात् जिस जाति में, जिस समाज में और जिस देश में स्त्रियों की पूजा होती है उस जाति समाज तथा देश में देवता क्रीड़ा करते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज यूरोप अमेरीका आदि देशों में स्त्री जातिका सन्मान है, स्त्रियों को देवियाँ समझा जाता है अतएव वे देश आज सांसारिक भावना में अन्य सब देशों की अपेक्षा सुखी समुन्नत और आगे बढ़े हुये हैं। सचमुच ही वहाँ देव क्रीड़ा करते हैं। उन देशों के गृहमंदिरों में देवता के समान कार्य करने वाले शिशुरत्न क्रीड़ा करते हैं। जिस देश या जिस जाति समाज एवं कुल में गृहदेविओं को सन्मान की दृष्टि से देखा जाता है और उनके आत्मीय विकास के लिये उन्हें आवश्यक शिक्षण दिया जाता है अवश्य ही वह देश, जाति, समाज या कुल संसार में ही स्वर्गीय सुखानुभव कर सकता है। जिस देश या जाति कुलमें गृहदेविओं का सन्मान नहीं होता, जहाँ पर उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है, जहाँ पर उन्हें मात्र पुरुषों के भोगविलास का साधन या गृहदासी समझा जाता है, जहाँ पर उनके आत्मीय विकास के कारण भूत आवश्यकीय शिक्षण से उन्हें वंचित रक्खा जाता है उस देश में, उस जाति या कुलमें सुखांकुर का उद्गम होना असंभवित है इतना ही नहीं किन्तु वहाँ पर नररत्नों का जन्म भी नहीं हो सकता। क्या कहीं पर खारी भूमि में श्रेष्ठ धान्य होता सुना है? क्या कहीं पर समुद्र के खारे पानीसे सिंचन किये हुये वृक्षों पर मधुर या सुस्वादु फल लगते देखे हैं?

शास्त्रकारों और कुदरत की ओरसे स्वाभाविक ही स्त्रियों को प्रधान पद मिला है किन्तु पुरुषों ने ही अपने स्वार्थ साधने की दृष्टिसे उन्हें हलकी तथा अपने से नीची समझ लिया है और इस प्रकार के उपदेश द्वारा पुरुषों ने स्त्रियों के हृदय तक यह छाप डाल दी है कि वे सचमुच ही हलकी, बेकार और नाचीज हैं। उनका जन्म पुरुषोंका दासत्व स्वीकारने के सिवाय अन्य किसी कामका नहीं। प्राचीन कालसे ही स्त्रीजाति को पुरुषजाति से विशेषतः प्रधान पद मिला है, इसका प्रबल प्रमाण यही है कि जब कभी पुरुष का पूर्ण नाम लिया जाता है तब स्त्रीपुरुष कहते हैं परन्तु पुरुष स्त्री कोई नहीं बोलता सुना। कृष्ण भगवान का पूर्ण नाम लेना हो तब राधा कृष्ण कहते हैं परन्तु कृष्ण राधा कोई नहीं कहता। जब रामचंद्रजी के पूर्ण नामका स्मरण करते हैं तब सीता राम ही बोलते हैं किन्तु राम सीता बोलते हुये कभी कोई नहीं सुना। इन सब बातों से पुरुष के आधे अंग स्त्रीका महत्व सिद्ध होता है। बड़े बड़े महर्षियों ने स्त्रीजाति को सन्मान दिया है और उसका सन्मान करने से ही संसार सुखी हो सकता है तथा कर्मवीर एवं धर्मवीर नररत्नों की उत्पत्ति हो सकती है। जिन कुटुम्बों में गृह देवियों को सन्मान के बदले तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है, जिन कुटुम्बों में गृह देवियों की लात, घूंसा, थप्पड़ तथा लकड़ियों की मार पीट से पूजा की जाती है उन कुटुम्बों में देवता तो क्या मगर मनुष्य भी क्रीड़ा नहीं करते। अर्थात् पूर्वोक्त परिस्थिति वाले कुटुम्बों में देव समान सन्तान के बदले मानव स्वभाव धारी भी सन्तान पैदा नहीं होती। जिन कुटुम्बों में पति पत्नी सम्बन्धी पारस्परिक प्रेम के अभाव से रात दिन झगड़े टंटों द्वारा कलह ही रहता हो उन कुटुम्बों में पैदा होने वाली सन्तान देव मनुष्य दोनों के गुणों से रहित राक्षस के समान होती है। इस लिये श्रेष्ठ सन्तान पैदा करने के लिये भी भावी प्रजा की जन्म दात्री गृह देवियों को सन्मान की दृष्टि से देखना चाहिये।

स्त्री सुधार के विरोधी कितने एक अज्ञानी एवं कुटिल मनुष्य, जिन्हें इस बातकी अभी तक गन्ध तक भी नहीं आई कि स्त्री जातीके

सुधार पर ही संसार भरका सुधार निर्भर है, ऐसा बोलते हैं कि स्त्रियों को सन्मान देना क्या उनकी पूजा करना चाहिये ? क्या उनकी खुशामत करना चाहिये ? या उन पर नैवेद्य चढ़ाना चाहिये ? या प्रातःकाल उठ कर पतिको उन के पैरों में पड़ना चाहिये ?। इस प्रकार सन्मान देना चाहिये ?

इस प्रश्नका उत्तर यही है कि फल फूल चढ़ाने या पैरों में पड़ने से ही पूजा या सन्मान नहीं होता। हिन्दु शास्त्रों में तो बड़े बड़े महर्षियों ने स्त्रीकी पूजा करना फरमाया है, परन्तु पूजाका तात्पर्य समझना चाहिये। मनुष्य देवपूजा करते हैं तो क्या वे देवकी खुशामत करते हैं ? और यदि ऐसे तुच्छ भाव से ही देव पूजा करते हैं तो वह पूजा नहीं किन्तु अपने आप की कदर्थना करनेवाली एक जघन्य में जघन्य क्रिया है। बाह्य क्रिया में ही पूजाका अर्थ नहीं समाया है, पूजा में तो खुशामद की भावना की गन्ध तक भी नहीं। अन्तःकरण की सच्ची चाहना का ही नाम पूजा है, हार्दिक प्रेम भावना का ही नाम पूजा है, सन्मान की भावना को ही पूजा कहते हैं। जिस पूजा में अन्तःकरण की सच्ची चाह नहीं, जिस पूजा में हार्दिक प्रेमकी गन्ध तक नहीं, जिस पूजा में सन्मान की भावनाका लेश तक नहीं वैसी बाह्य क्रिया मात्र पूजाकी तीन पाई भी कीमत नहीं। इस लिये गृहदेवियोंका सन्मान करना, उन्हें आदर सत्कार की दृष्टि से देखना, उन के प्रति तिरस्कार और अपमान को पाप समझना, उन्हें योग्य शिक्षण देकर सच्चे गृहिणी पदके योग्य बनाना, अपने सुख दुःख के समान ही उनका सुख दुःख समझना बस इसी का नाम स्त्री पूजा है।



स्त्री संस्कार



स्त्री शिक्षण का न हो जब तक मित्र प्रचार,
करो हजारो यत्न पर हरगिज हो न सुधार ॥

बहुतसी स्त्रियोंमें अनेक प्रकार के पूजनीय सद्‌गुण होने पर भी एक ही दुर्गुण एक ही दोष ऐसा भयंकर होता है कि उन के सर्व गुणों को दूषित कर जिन्दगी पर्यन्त उन के जीवन की कदर्थना करता है इतना ही नहीं बल्कि किसी समय वह उन में छिप कर रहा हुआ भयंकर दोष उन के तथा कुटुम्ब भर के सर्व नाशका कारण बन जाता है। स्त्रियोंका अन्तःकरण पानीकी तरंगों के समान ही अति वेगवान होता है । इस से उन की विचारशक्ति अत्यन्त कमजोर होती है और इसी कारण उन में मानसिक बल भी बिलकुल साधारण-स्वल्प ही होता है। मानसिक कमजोरी के कारण विचारशक्ति की दुर्बलता से अन्तःकरण के तीव्र आवेग से और धैर्य की क्षीणता से स्त्रियोंकी भयंकर हानि होती है इतना ही नहीं किन्तु कभी कभी तो इससे सारे कुटुम्ब को महान कष्ट भोगना पड़ता है कितनीएक मूर्ख स्त्रियाँ अपने खराब स्वभाव के कलंकित समुद्र में गोता लगाने तथा जरासी बातके लिये भयंकर पैशाचिक रूप धारण करने में जरा भी आगा पीछा नहीं देखती। वे जरा जरा सी बातों पर क्रोध में आकर अपने मानसिक मिथ्या आवेग से अपने खान दान, अपने पोजिशन, अपने अधिकार एवं अपने आपको सर्वथा भूल जाती हैं। क्रोध के आवेग में विचारशक्ति नष्ट हो जाने के कारण उस समय वे न करने के कृत्य कर डालती हैं, न बोलने के भयंकर हानिकारक, मार्मिक तथा कटु शब्दों की वृष्टि बरसाने लग जाती हैं । यदि सच पूछो तो इस प्रकार का स्वरूप धारण करनेवाली, सारे कुटुम्ब की शान्तिको भंग करनेवाली स्त्री सद्‌गुण संपन्ना होने पर भी वह भयंकर राक्षसी से भी बूरी है। शास्त्र में इस प्रकारकी दुष्टा स्त्रियोंको काली नागन की उपमा दी है। जिस स्त्रीका

अपने हृदय पर कब्जा नहीं है, जो अपने मानसिक आवेग के वश हो कर न करने के काम कर डालती है, न बोलने के वचन बोलती है, जरा जरासी बातों में सारे कुटुम्ब का नाकों दम करती है ऐसी स्त्री ऊपर से देखने में सुन्दर होने पर भी मणिवाले भयंकर सर्प के समान है। वह स्त्री अपनी मानसिक कमजोरी के कारण विचार शक्ति शून्य होने से अपने आराध्य प्राणप्रिय पति देवका भी अनिष्ट करने में जरा भी पीछे न हटेगी। अर्थात् इस प्रकार की स्त्रियाँ सर्व प्रकार के नीच कृत्य करने को तैयार हो जाती हैं।

स्त्रीकी कीमत उसके गोरे रंग या सुंदर चेहरे परसे नहीं किन्तु उसके गुण स्वभाव से होती है। जिस घरमें सुन्दर स्वभाववाली सुसंस्कारी स्त्री है वह घर स्वर्गके समान शान्ति और सुखका अनुभव करता है और जिस घरमें खराब सभाववाली कलहप्रिय मूर्खा स्त्री है उस घरको पशु तथा नरकके समान दुःखानुभव करना पड़ता है। सुशीला संस्कारी स्वभाववाली स्त्री स्वर्गकी सुन्दरी से भी बढ़ कर सुखी और सुखकारी है तथा अपने खराब स्वभावके कारण सारे कुटुम्ब को त्रास देनेवाली कुसंस्कारी स्त्री नरक कीटके समान दुखी और दुखदाई है। जो स्त्री एक दफा खराब मार्ग में उतर पड़ी हो और जिसका नीच स्वभाव—जिसकी पाशविक वृत्तियाँ उसके अन्तःकरण पर अपना प्रबल अधिकार जमा चुकी हो उस मानसिक आवेग के प्रवाह में बहती हुई स्त्री का जीवन सुरक्षित रहना महा कठिन है। उन्मार्गरता स्त्री मार मारने से या बाँध रखने से किंवा अन्य किसी प्रकार का उसे त्रास देने से कदापि नहीं सुधर सकती। एक दफा भूल कर के फिर अपनी भूल पर तीव्र पश्चात्ताप करने वाली और सच्चे अन्तःकरण पूर्वक अपनी भूल को गुन्हा समझनेवाली स्त्रीको सुधारने का उपाय महर्षि गौतमके समान उस के ऊपर दया की दृष्टि रख कर उस के अपराध को क्षमा करना है। घरसम्बन्धी जरा जरासी बातों के लिये स्त्री को वारंवार धमका कर, उसे अपने घर की दासी समझ कर उस की नित्य कदर्थना करके उसकी अप्रीति संपादन न करना चाहिये। क्यों कि घरकी स्त्रियों की अप्रीति के कारण भयंकर परिणाम उप-

स्थित होते देर नहीं लगती। खराब मार्ग में अनुरक्त होनेवाली कुलटा स्त्री पर चाहे जैसी आपत्ति आवे, उसका चाहे जितना तिरस्कार होता हो, उस की चाहे उतनी लोकनिन्दा होती हो, उसे चाहे जितनी धिक्कारें पड़ती हों तथापि वह कुवासना के वशीभूत हो सब कुछ सहन करती है। उस की दया से उसे सन्मार्ग में लाने के प्रयत्न करने वाले महापुरुषों को भी वह अपनी मायावी जाल में फसाने के प्रयत्न-प्रपंच से नहीं चूकती। ऐसी कपट मूर्ति स्त्री में स्त्री सम्बन्धी दया, प्रेम, कोमलता, नम्रता विनय आदि सद्गुणों की गन्ध तक नहीं होती। नीच स्वभाव वाली स्त्रियों का अपने अधम कृत्यके फलरूप में भावी काल में अपने ऊपर टूट पड़नेवाले भयंकर आपत्ति के पहाड़ों की ओर लक्ष ही नहीं जाता। उसे स्वजन सम्बन्धिओं एवं समाज की लज्जा का खयाल नहीं आता, उसे अपकीर्ति का भय नहीं अटका सकता, उसे मृत्यु तक का भी भय नहीं होता। जिस प्रकार घर में छिप कर दूध पीने वाली बिल्ली पीछेसे पड़ने वाली डंडेकी मारका खयाल न कर के दूध ही दूध देखती है उसी प्रकार अनीति के मार्ग में गमन करने वाली स्त्री अपनी कर्तव्यभ्रष्टता से मिलने वाले भावी भयंकर कष्टका खयाल न करके उस क्षणिक स्वार्थी लालच को ही देखती है।

स्त्रियों को इस प्रकार के अधमाचरण में उतारने वाला, उन्हें पाप के कीचड़ में घसीटने वाला, उनमें रहे हुये अनेक प्रशस्त गुणों को नष्ट कर उनके जीवन को नीच बनाने वाला, उन्हें दया की मूर्ति से निष्ठुरता की पुतली या राक्षसी बनाने वाला, उनके दयार्द्र कोमल हृदय को पाषाण सम कठोर बनाने वाला मात्र उनका मानसिक आवेगही है। इस लिये हरएक स्त्री को उस प्रकार के प्रसंग उपस्थित होने पर अपने हृदय के उफान को दबाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि उफनता हुआ हृदय का वेग दबाया न जाय तो उस से विवेक विचार शक्ति उफन कर बाहर निकल जाती है, फिर निरंकुश हाथी के समान मन स्वच्छन्द होकर मनुष्य से पापाचरण कराता है। यदि मनुष्य अपनी मनोवृत्ति को खस्सी कर डाले तो उसे बाह्य संयोग कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। स्त्री या पुरुष

को पापाचरण के गढे में डालने वाली उनकी मनोवृत्ति ही है। यों तो सर्व प्रकार के संयोग तथा रूपादि का निरीक्षण मनुष्य के नेत्र करते हैं। निरीक्षण करने से मनुष्य के अन्तःकरण में उन वस्तुओं-के स्वभाव का ज्ञान पैदा होता है। यदि मात्र उतने समय ही मनुष्य अपनी मनोवृत्ति पर कब्जा रख सके तो उस स्त्री या पुरुष का अन्तःकरण विकारित नहीं हो सकता। यदि उस वस्तु के स्वभाव का ज्ञान होते समय मानसिक वृत्ति पर संयम न हो तो उस वस्तु स्वभाव के ज्ञान की असर एक ऐसी नाड़ी पर पड़ती है जो शरीर में रही हुई सर्व नाड़ियों से सम्बन्ध रखती है। बस उस नाड़ी पर असर पड़ते ही शरीरगत तमाम नाड़ियों में सनसनाट मच जाता है। शरीर में रहा हुआ तमाम रक्त उष्ण हो जाता है। शरीर के सर्व अवयवों में स्थिर रहा हुआ वीर्य उष्ण होकर नाड़ियों में बहने लग जाता है। उस समय मनुष्य की मनोवृत्ति का वेग इतना प्रबल हो जाता है कि वर्षा ऋतु में नदीपूर के समान वह रुकना दुष्कर बन जाता है, इस लिये विकार पैदा करने वाले प्रसंग उपस्थित होते ही अपनी मनोवृत्ति पर संयम का कब्जा डाल देना चाहिये, ताकि अपने प्रबल प्रवाह में बहा ले जानेवाला विकार रूप नदीपूर अपनी हद-मर्यादा को उलंघन ही न कर सके।

कितने एक कमजोर हृदयी मनुष्यों का मंतव्य है कि मानसिक वेग को रोकना मनुष्य की शक्ति से बाहर का काम है, क्यों कि मानसिक वेग का आधार उस के स्वभाव पर निर्भर है। हमें तो यह मान्यता सर्वथा भूल भरी मालूम देती है, क्यों कि मनुष्य अच्छे प्रसंगों में रह कर अभ्यास के द्वारा अपनी मनोवृत्ति को तथा अपने स्वभाव को जैसा बनाना चाहे वह बना सकता है। मात्र उसे अपनी मनोवृत्ति को सुदृढ बनाने के लिये प्रथम अच्छे सत्संग में रह कर मानसिक परिश्रम करने की आवश्यकता है। योग्य शिक्षण प्राप्त करने तथा उस प्रकार के प्रसंगों से अपने आप को सुरक्षित रखने से स्त्रियाँ खराब दोषों से बच सकती हैं।

मात्र मानसिक कमजोरी के कारण ही स्त्रियाँ दूसरों में रहे हुये सद्‌गुणों को भी दुर्गुण तया देखती हैं। वे कल जिस के गुणोंका वर्णन करने में अत्यन्त उत्साह धारण करती थीं आज जरासी बात पर अनबनाव हो जाने से उस के उन्ही सद्‌गुणों को दूषण तया देखने लग जाती हैं और ईर्षा द्वेषसे उस की निन्दा करते हुये बोलती हैं कि वह स्त्री तो बड़ी ही खराब है, उस में एक भी सद्‌गुण नहीं, उसका चालचालन तो प्रथम से ही खराब है। उस मनुष्य का तो कभी विश्वास ही न करना चाहिये, वह तो बड़ा ही खराब दुष्ट मनुष्य है। इस प्रकार मानसिक दुर्बलता के कारण ही दूसरे मनुष्य में साक्षात् सद्‌गुण देखते हुये भी उस में दोषा-रोपण करने लग जाती हैं। इस लिये स्त्रियों को सच्ची स्त्री बनने के लिये इस मानसिक कमजोरी के महान दुर्गुण का परित्याग करना चाहिये।

स्त्रियों में समवृत्ति न होने के कारण सहनशीलता के अभाव से बहुत से कुटुम्बों में हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पिता पुत्र में नहीं बनती, सगे भाइयों में झगड़े टंटे होते हैं। सासु बहू में लड़ाइयाँ होती हैं, माता और पुत्र में अनबनाव होता है, नणंद भाबी में युद्ध मचता है। कार व्यापार एक होने पर भी घर के स्त्रियों सम्बन्धी झगड़े टंटों के कारण सगे भाई तथा पिता पुत्र को जुदा रहना पड़ता है। जिन्दगी भर जो हृदय एकाकार रह सकते थे उन में स्त्रियों के कारण शत्रुभाव पैदा हो जाता है। आज जितने कुटुम्ब जुदे होते हैं उनका यदि सूक्ष्म रीति से निरीक्षण किया जाय तो हजार कुटुम्बों में आठ सौ कुटुम्ब ऐसे मालूम होवेंगे कि जिन्हें स्त्रियों के ही पारस्परिक झगड़े टंटों के कारण अपने स्वजनों से जुदा होना पड़ा है। स्त्रियों के स्वभाव में गंभीरता न होने से, विचार शून्यता होने से तथा अपने मानसिक आवेग को रोकने में असमर्थ होने से वे प्रियजन के जरा से लाभ से या उस के जरा से गुण से अमर्यादित खुशी प्रगट करने लग जाती हैं। इसी प्रकार घर में जिस के साथ उनकी बनती न हो उस के जरा से लाभ से या उस के गुणों को देख कर मानसिक आवेग के पूरमें बहने लग

जाती हैं। सहनशीलता के अभाव से उसकी ईर्षा करने लग जाती हैं, उस के सद्‌गुणों को भी दुर्गुणों तया देखने लगती हैं और एक दूसरे के समक्ष उस के सद्‌गुणों में दूषण आरोपित कर उस की निन्दा चुगली करने लगती हैं। बहुतसी स्त्रियों के पति विचारशील होते हैं, वे कुटुम्ब की ऐक्यता में ही घरका श्रेय समझते हैं इस लिये स्त्रीकी बातों पर विशेष ध्यान न देकर घर में सलाह संप से रहने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु उन की गृहदेवी जुदाई की स्वतंत्रता का आनन्द लूटने की भावना तथा अपनी असहनशीलता के कारण रात्रि के समय पतिदेव के कानों में घर के जरा जरासी बातों वाले अनबनाव को महान स्वरूप में चुरकती हैं। इस प्रकार प्रति दिन कान में पड़ने वाले उस गुरु मंत्र की एक दिन न एक दिन असर हुये विना नहीं रहती। अन्त में उन्हें पत्नी की सीख में आ कर अपने प्रिय स्वजन सम्बन्धिओं से जुदा हो अपनी हाँडी जुदी पकानी पड़ती है और हरे भरे कुटुम्ब के साथ रह कर मिलने वाले आनन्द से वंचित होना पड़ता है। इस तरह स्त्रियों की अहसनशीलता के कारण, उन के मानसिक आवेग से श्रेष्ठ में श्रेष्ठ कुटुम्बों के शान्तिसुखप्रवाह को अनेकशः जरा जरा से स्रोतों के रूप में विभाजित होना पड़ता है।

आज हिंदुस्तान के हजारों ही कुटुम्ब सुख की सर्व सामग्री होने पर मात्र स्त्रियों के ही गृहकलह से पशु तथा नारक के समान जीवन बिता रहे हैं। पिता पुत्रके, भाई भाई के, बहिन भाई के और माता पुत्र के प्रेममय सम्बन्ध को भी खराब स्वभाव वाली स्त्रियाँ ही तुडवाती हैं। गंभीरता का अभाव होने से उनके पेट में घर की जरासी बात भी नहीं पचती, वे जुदा होने की इच्छा से घर के मनुष्यों के दोष ही पति के कान में चुरका करती हैं। वे सदैव अपने शान्त और विचारशील पति को भी अपनी हांमें हां मिलाने वाला बनाने का प्रयत्न किया करती हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपने पति के सामने सदा काल अपना दुःख ही प्रगट किया करती हैं। वे बोलती हैं कि मैंने तो तुम्हारे इस घर में आकर आज तक कभी सुख ही नहीं देखा, मुझे रोजकी रोज सासु और जेठानी के मार्मिक बोल

सुनने पड़ते हैं, मुझे इस घर में कितना दुःख है सो मैं ही जानती हूँ, इस दुःख से तो अपने दोनों जने जुदे रहें तो ठीक हो। मैं रोज आप के सामने अपने दुःख रोती हूँ पर आप भी मेरी नहीं सुनते। भला आपके सिवा इस घर में मेरा है ही कौन?। घर में कमाने वाले तो आप ही हैं तथापि आप की इस घर में कुछ कद्र नहीं होती। मैं तो जब से इस घर में ब्याही आई हूँ तब से ही दासी के समान समझी जाती हूँ, अब तो मेरा नाकों दम आ गया है, अब जुदा हुये विना इस घर में मुझ से एक दिन भी न रहा जायगा। यदि आप से जुदा न हुआ जाय तो मुझे सदा के लिये मेरे पिहर भेज दो, मैं अपने बाप के घर पर ही अपनी जिन्दगी बिता दूंगी।

जुदा होने की इच्छा से चंचल स्वभाव वाली तथा गंभीर और सहनशीलता के स्त्रीगुणों से रहित अपने विचारशून्य मानसिक वेग में बहने वाली स्त्रियाँ इस प्रकार अपने पति के रोज की रोज कान भरती हैं। जब तलक उनकी जुदा होने की वह प्रबल इच्छा पूर्ण नहीं होती तब तलक वे कुछ न कुछ बात उपस्थित कर अपनी खासियत को पूरी करने के लिये प्रतिदिन अपने पति के कान फूँकती ही रहती हैं। जिस प्रकार ठंडा ठरा हुआ घी अधिक समय तक अग्नि के संसर्ग में रहने से पिगल जाता है उसी प्रकार विचारशील और स्थिर चित्त भी प्रतिदिन की कानाफूसी के कारण अस्थिर और क्षोभित हो उठता है। फिर उसे भी धीरे धीरे घरवाले अन्य मनुष्यों का ही दोष मालूम होने लगता है, इससे उसका शान्ति प्रिय मन जुदा होने के लिये प्रेरित होता है और अन्त में उसे अपने प्रियजनों—सगे सम्बन्धिओं का सम्बन्ध तोड़ कर सिर्फ अपनी लाड़ी देवी को ले सब कुटुम्बिओं से जुदा होना ही पड़ता है। हरेभरे कुटुम्ब में रह कर सब स्वजन सम्बन्धिओं के साथ बैठ कर जीमने के आनन्द से वंचित हो अब उन मियाबीबी को ही अपनी जुदी हाँडी पकानी पड़ती है। यह सब कुछ कमजोर हृदय वाली असहनशील स्वभावा स्त्रीके कृत्य का विषम परिणाम है। इस लिये स्त्रियों को अपनी मानसिक निर्बलता तथा किसी भी प्रकार की हानि कारक लालच की तृष्णा का परित्याग करना चाहिये

स्त्रियों की मानसिक कमजोरी के कारण सहनशीलता की क्षीणता से और विचार शून्यता से गृहस्थाश्रम का जीवन मार्ग कंटकाकीर्ण हो जाता है। इस लिये सुज्ञ सन्नारिओ! शान्ति के समय एकान्त में बैठ कर अपने हृदयका निरीक्षण करो और यदि तुम्हारे अन्तःकरण में पूर्वोक्त दोषोंमें से कोई भी दोष मालूम दे तो जितना जल्दी बन सके उतना जल्दी उस महान दुर्गुण को त्यागने का भरसक प्रयत्न करो। यदि तुम तुम्हारी और तुम्हारे कुटुम्बिओं की सुखी जिन्दगी इच्छती हो तो तुम्हारी मनोवृत्ति को सुसंस्कारी बनाओ, मनोवृत्ति के आवेग पर संयम प्राप्त करो, बड़े से बड़ी लालच उपस्थित होने पर भी, संकटों के उपस्थित होने पर भी न्याय मार्गका परित्याग मत करो। हरएक कार्य को स्थिर चित्त से करो। अपने अन्तःकरण को सुसंस्कारों तथा सद्ज्ञान द्वारा निर्मल रख कर उसे धर्मभावना से सुवासित रक्खो। विना ही विचार किये किसी भी कार्य को करने की उतावल मत करो और समुद्रके समान गंभीरता तथा पृथवी के समान सहनशीलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करो। यदि घर में किसी बात पर परस्पर बोलचाल हो भी जाय तो उस बात को आपस में ही समेट लो। छोटी बातों को बड़ों के कानों तक पहुँचा कर उन के चित्त की शान्तिका भंग मत करो। घर में कदाचित् किसी कारण कभी झगड़ा टंटा हो जाने पर घरके मनुष्यों के अपने पड़ौसिओं के सामने दोष प्रगट मत करो। घर में लड़ाई होने पर अपने आराध्य पति देव की निन्दा चुगली दूसरों के सामने मत करो। यदि तुम्हें तुम्हारे गृहकार्य से समय मिले तो किसी सती या किसी महापुरुष के जीवन चरित्र सम्बन्धी किताबें पढ़ने में उस मिले हुये समय का सदुपयोग करो और पड़ौसनों के साथ विना प्रयोजन बातें करने की आदत का परित्याग करो।

क्षमा और धैर्य के अभाव से ही प्रायः कुटुम्बों में कलह के बीजारोपण हुआ करते हैं। जो स्त्री दूसरे के अपराधों को क्षमा करती है, जो दूसरे के वचन चीपटाक किये विना ही सहनशीलता से सह लेती है और घर में धैर्य धारण कर कुटुम्ब सम्बन्धी दुःख सुख के प्रसंगों को आनन्द पूर्वक सहन कर लेती है तथा जो

संकटों के पड़ने पर भी अनीति के मार्ग की ओर दृष्टिपात तक नहीं करती और अपने पूज्य पति के सुख में सुख तथा दुख में दुख मानती है वह स्त्री घर में साक्षात् गृह-लक्ष्मी के समान है। ऐसी स्त्रीका नाम लेना भी पुण्यकारी है। वैसी शान्त स्वभावा स्त्री कुटुम्ब मे सब को प्रिय लगती है, पड़ौस में भी सब स्त्रियाँ उसी की प्रशंसा करती हैं।

कटु वचन बोलने वाली और हमेशाह कुटुम्ब में कलह करके कुटुम्ब के सब मनुष्यों को त्रास पहुँचने वाली स्त्री अपने पति को महान विपत्तिरूप हो पड़ती है। उसमें दूसरे अनेक सद्गुण होने पर भी मात्र उस की कलहप्रियता के कारण वे कौवे के गलेमें पड़ी हुई मोतियों की माला के समान व्यर्थ हो जाते हैं। जरा जरासी बातों पर घर में बड़बड़ाट करनेवाली और दूसरों के साथ लड़ाई झगड़ों की जीत में ही अपने चातुर्य की परिसीमा समझने वाली स्त्रीका स्वभाव इतना खराब हो जाता है कि वह अपनी जबान से अपने आप को कलंकित करने वाले नीच में नीच शब्द उच्चारण करते हुये जरा भी आगा पीछा नहीं देखती। अश्लील—नीच शब्द बोलने और दूसरों से वैसे शब्द सुनने तो उसके लिये मंगल पाठ के समान हो जाते हैं। वह दूसरों के साथ लड़ाई करने में कदापि हार नहीं खाती, क्यों कि दूसरों के हृदय को वेधन करने वाले उसके पास मार्मिक तथा नीच शब्दरूप बड़े ही पैने तीर तैयार रहते हैं। यदि वह कभी सेर को सवासेर मिल जाने की कहावत के अनुसार किसी स्त्रीसे हार भी जाय तो वह अपने भीतर भरे हुये क्रोध को रात दिन रो रो कर शान्त करती है, किंवा उस क्रोध का दुरुपयोग अपने हाथ नीचे रहनेवाले मनुष्यों पर या अपने बाल बच्चों पर करती है। इस तरह करने पर भी वास्तविक रीति से उस का क्रोध सर्वथा शान्त नहीं होता। उस हार से वह अपनी बड़ी भारी हानि हुई समझती है। किसी समय तो ऐसे नीच स्वभाव को धारण करने वाली स्त्री आत्मघात करने तकको तैयार हो जाती है। बहुतसी स्त्रियाँ क्रोध के वेगमें विवेक रहित हो कर अपने मस्तक को फोड़ डालती हैं। उस के हृदय में धधकती हुई

क्रोधाग्नि के समय यदि उसका निर्दोष बालक भी उस के पास आ जाय तो वह राक्षसी रूप धारण करने वाली दया तथा ममता शून्य कठिन हृदया स्त्री उस अपने पवित्र हृदयी बालक को पत्थर के समान या किसी निर्जीव वस्तु के समान उठाकर फेंक देती है। उस समय क्रोध के आवेश में वह विवेक विचार से रहित होकर अपने आप को सर्वथा भूल जाती है। यदि उस समय उसका एकान्त हिताकांक्षी भी उसे समझाने को आवे तो वह उसे भी अपना प्रतिपक्षी ही समझती है।

इस प्रकार के खराब स्वभाव वाली स्त्री सत्य बोलने की श्रेष्ठ आदत को कायम नहीं रख सकती। उस के लिये ऐसा कोई शब्द ही नहीं रहता कि जिसे वह समय आने पर अपना शस्त्र न बना सके। वह दूसरों को परास्त करने के लिये सरासर मिथ्या-झूठा कलंक देने से भी बाज नहीं आती। ऐसी स्त्रीको कुटुम्ब में से किसी भी बड़े छोटे की शरम मर्यादा नहीं होती। वह अपने नीच स्वभाव के वश होकर लड़ाई के समय अपने आपको सर्वोपरि समझती है। ऐसी स्त्रियों के कारण पवित्र और उच्च से उच्च कुल कलंकित हो जाता है। वे रिजाई में छिपे हुये सूल के समान सारे कुटुम्ब को महादुःख देनेवाली होती हैं। ऐसी स्त्रियों के संसर्ग में रहने की बजाय निर्जन जंगल में या किसी पहाड़ की गुफा में जा रहना अधिक लाभदाई है। ऐसे नीच स्वभाव को धारण करनेवाली स्त्रियाँ मात्र अपने जीभ के दुर्गुण से भयंकर हानि पहुँचाती हैं।

सुखी कुटुम्बों में पूर्वोक्त कलह क्लेश के द्वारा दुःखोत्पत्ति का मुख्य कारण स्त्रियों में उन के कर्तव्य ज्ञानका अभाव ही है। यद्यपि आधुनिक स्त्रीशिक्षण से कुटुम्बों में पूर्वोक्त लड़ाई झगड़े नहीं होते तथापि इतना तो हमें अवश्य कहना पड़ेगा कि वर्तमान स्त्रीशिक्षण भारतीय कुटुम्बों को सुखी बनाने में सर्वथा असमर्थ है। वर्तमान इंग्लिश पद्धतिवाले शिक्षण से भारतीय ललनाओं में विनय नम्रता के बदले अभिमान और विलासप्रियता पैदा होती है। वर्तमान स्त्रीशिक्षण की पद्धति से भारतीय कुटुम्ब कदापि सुखी नहीं हो सकते। क्यों कि आधुनिक कालेजों का उच्च शिक्षण लेने पर भी

स्त्रियां अपने कर्तव्य ज्ञान से खाली रहती हैं। अतः स्त्रियों को उन के कर्तव्य ज्ञानका शिक्षण अवश्य मिलना चाहिये। स्कूल तथा कालेजका शिक्षण लेने पर भी अपने मुख्य कर्तव्य ज्ञान से वंचित रहनेवाली स्त्री कदापि अपने कुटुम्ब को सुखी नहीं कर सकती, परन्तु अपनी जिन्दगी में स्कूल तथा कालेजका दर्शन तक भी न करनेवाली मात्र अपने पवित्र कर्तव्य ज्ञान से विभूषित स्त्री अवश्य ही अपने विशुद्धाचरण से अपने कुटुम्ब को सुखी बनाती है।

जिस स्त्रीशिक्षण से स्त्रियाँ गृहकार्य करने तथा अपने बालकों का यथार्थ रीतिसे पालन पोषण करने में निपुण होकर अपने जीवन को उन्नत तथा सुखमय बना सकें, जिस स्त्रीशिक्षण से भारतीय स्त्रियों में आत्मसन्मान तथा अपने कर्तव्य का ज्ञान पैदा हो सके, जिस स्त्री शिक्षण से भारतीय ललनायें अपने पवित्र-उत्तम चारित्र के विमल प्रकाश से कुटुम्बों को सुशोभित कर सकें, जिस स्त्रीशिक्षण के पवित्र प्रभाव से घरों में स्वर्गीय सुख की झलक पड़ सके, और जिस स्त्रीशिक्षण की सुरभि-सुगंध से स्त्रियां अपने कुटुम्ब तथा अपने पड़ोस के कुटुम्बों को सुगंधित कर सकें, अपने पवित्र एवं विनय नम्रतापूर्ण आचरण से उन्हें सुखी बना सकें, अपने पति के सुख दुख में पूर्णतया हिस्सा लेकर उसके साथ प्रेम पूर्वक अपनी जिन्दगी बिता सकें बस ऐसे स्त्रीशिक्षण की आज भारतीय जनता को परमावश्यकता है। जिस स्त्री शिक्षण से हृदय में अहंभाव पैदा हो, पति आदि अपने पूज्य जनों के प्रति पूज्य बुद्धि न आवे, जिस स्त्री शिक्षण से कुटुम्ब के बड़े छोटे मनुष्यों के साथ किस प्रकार बरताव करना इत्यादि का ज्ञान पैदा न हो, जिस स्त्री शिक्षण से मानसिक, वाचिक, कायिक तथा आत्मिक कुछ भी सुधार न हो और मात्र विलासता का ही पोषण होता हो वैसे शिक्षण की बिलकुल आवश्यकता ही नहीं। जो अपने पवित्र जीवन को सादगी के मार्ग से उलटा विलासता के अधम मार्ग में ले जाय उस शिक्षण से मूर्ख रहना अच्छा है।

जिस शिक्षण से मानसिक वृत्ति सबल हो कर विकसित हो, जिस शिक्षण से अन्तःकरण पवित्र हो कर दूसरों के प्रति उदार

बने, जिस शिक्षण से चपलता नष्ट हो कर स्थैर्य भाव प्रगट हो, कर्तव्य ज्ञान की प्राप्ति से अन्तःकरण शुद्ध हो कर चारित्र पवित्र एवं उन्नत बने उसे ही शिक्षण कह सकते हैं। अन्यथा जो शिक्षण मात्र मौज शौख ही सिखाता है, विलासता का ही पाठ सिखलाता है, अपने जीवन विकाश के मार्ग से वंचित रख कर मात्र भरण पोषण जितना ही ज्ञान कराता है और जो मनुष्य को मात्र उसके निजी स्वार्थ की ओर ही खींचता है वह शिक्षण नहीं किन्तु मनुष्य के अमूल्य जीवन की कदर्थना करने वाली मायाजाल के समान है। श्रेष्ठ स्त्री शिक्षण पर ही देशके कुटुम्बों का श्रेष्ठ जीवन निर्भर है। परन्तु वह आज है ही कहां? आज तो हमारे देश में श्रेष्ठ स्त्री शिक्षण की बात ही दूर रही किन्तु हजारों ही कुटुम्बों की स्त्रियों को मात्र लिखना पढ़ना तक भी नहीं आता। उनके मूर्ख माता पिताओंने पवित्रता की मूर्ति बिचारी उन निर्दोष बालिकाओं को अक्षर ज्ञान से भी वंचित रख दिया है। ऐसे माता पिता अपनी लड़कियों के सासु ससुरे के निन्दा पात्र बनते हैं इतना ही नहीं किन्तु अपनी सन्तान को उसके कर्तव्य ज्ञान से वंचित रखने के कारण वे अपनी सन्तान के शत्रु समान बनते हैं। आज लाखों ही माता पितायें अपनी सन्तान को कर्तव्य से वंचित रखने के कारण पशुता से भी अधिक दुःख यातना भोगते हुये नजर आते हैं। अतः माता पिताओं का पवित्र कर्तव्य है कि वे अपनी सन्तान को सुशिक्षण दिला कर उन्हें सुसंस्कारी बनावें। अपनी कन्याओं के प्रति मातापिता का यही मुख्य कर्तव्य है कि कन्याय भावी काल में सासु ससुरे के घर जा कर उनके मन को संतोषित कर गृहिणी पद को दिपा सकें और अपने पवित्र आचरण से आत्म कल्याण कर सकें उन्हें इस प्रकार का शिक्षण देवें।

सुसंस्कारी पत्नी अपने कुपथगामी पति तथा अपने दुखी कुटुम्ब को भी किस प्रकार अपने अमूल्य पवित्र सद्‌गुणों से सुखी बनाती है इस बात की पुष्टि के लिये निम्न दृष्टान्त काफी होगा।

कुण्डनपुर में एक धनवान सेठ रहता था, उसने झूठे सच्चे व्यापारों द्वारा बहुतसा धन इकट्ठा किया था। धनवान होने के

कारण वह गाँवमें अच्छा प्रामाणिक गृहस्थ गिना जाता था। दैव योग उसके कुछ सन्तान न थी, इससे सर्व सुख की सामग्री होने पर भी वह बिचारा चिंतित चित्त रहता था। कुछ पूर्वार्जित सुकृत के उदयसे उसे चालीस वर्ष के बाद एक पुत्र पैदा हुआ। श्रीमन्त कुटुम्ब में वह एक सन्तान होने से उस पर माता पिता आदि कुटुम्ब के सब ही मनुष्यों का अति प्रेम होना स्वाभाविक ही था धनवानों के घरों में बच्चों पर जिस प्रकार का तथा जितनी हद् वाला लाड चाव होना चाहिये उस से विपरीत तथा अमर्यादित मोह के कारण बच्चों का भावी कालीन जीवन बिगड़ जाता है। बच्चों का पालन पोषण तथा उनके मन को संतुष्ट किस प्रकार करना चाहिये प्रायः इस बात के ज्ञान से धनी कुटुम्ब वंचित ही रहते हैं और इसी कारण उनकी सन्तान के जीवन की मोटर विषम मार्ग में दौड़ा करती है। सेठ साहूकारों के बच्चों के समान ही अति लाड-चावमें इस श्रीमन्त रामलाल सेठ के लड़के वसन्तलाल का भी पालन पोषण हुआ था। योग्य वयका होने पर वसन्त को गांवमें हिन्दी की प्राइवेट पाठशाला में पढने के लिये नियुक्त किया गया। इस गांव की पाठशाला में हिन्दी की पाँच किताबों से ऊपर का इंग्लिस शिक्षण वगैरह बिलकुल न था इस लिये हिन्दी की पाँच किताबें पढ़ लेने पर वसन्तलाल को इंग्लिस पढने के लिये दूसरे गांव में भेजा गया। श्रीमन्त रामलाल लाड चाव में पलने वाले अपने इकलौते पुत्र वसन्तलाल को वहाँ पर मुँह मांगा खर्च भेजता है। पास में खूब पैसा होने के कारण वसन्तलाल ने उड़ाऊ मित्रों की संगत में लग कर पढ़ने पर दुर्लक्ष कर दिया। पिता समझता है कि हमारा लड़का अंग्रेजी सीखने गया है और लड़का समझता है कि मैं यहाँ पर मौज मजा उड़ाने आया हूँ। वसन्तलाल ने इस प्रकार अपने मित्रों सहित पाँच वर्ष तक पैसा बरबाद कर मौज मजा उड़ाई। शिक्षण की ओर बिलकुल लक्ष न होने से अब उसने स्कूल जाना ही छोड़ दिया। पांच वर्षमें ज्यों त्यों करके बड़ी मुस्किल से कच्ची पक्की इंग्लिस की तीन चार किताबें सीखा। रामलाल ने अब उसे अपने घर पर बुला लिया था। रामलाल वसन्तलाल को

अपने लेन देन के व्यापार में जोड़ने का प्रयत्न करने लगा। वसन्तलाल को अपने घरका धंधा बिलकुल पसंद ही न आता था, इस लिये वह एक दिन अपने पितासे बोला, पिताजी! मुझ से यह धंधा न होगा, मुझे तो हमेशाह कोट पतलून तथा कालर नकटाई पहनने को चाहिये, सुबह से शाम तक बही के साथ मगज मारी करना यह मुझ से नहीं बन सकेगा। मैं तो किसी शहर में जा कर अपनी हैसियत के अनुसार कोई बढ़िया नौकरी करूँगा। रामलाल ने समझा कि लड़का अंग्रेजी पढ़ा हुआ है इस लिये सचमुच ही इसे यह लेन देनका मेहनतु धंधा पसंद न आयगा। इसके विचार के अनुसार यदि किसी शहर में कहीं अच्छे बढ़िया ओहदे पर नौकरी लग जायगी तो यह पैसा भी खूब कमायगा और अपनी जिन्दगी भी सुख पूर्वक बिता सकेगा तथा कोई उच्च नौकरी मिल जाने से हमारी ख्याति भी अच्छी हो जायगी। रामलाल के इस विचार को वसन्तलाल की माताकी भी पूर्ण सहानुभूति मिल गई। अब वसन्तलाल के परदेश गमन की तैयारी होने लगी। वसन्तलाल बोला पिताजी! परदेश का मामला है, वहाँ पर बिना पैसे कोई बात तक नहीं करता इस लिये परदेश में पहिले तो पैसा खूब चाहिये। आप इस समय मुझे पंद्रह सौ रुपये दे दो, यदि नौकरी जल्दी मिल गई तो पैसा वापिस ही भेज दूँगा अन्यथा नौकरी मिलने तक खाना पीना किराये के मकान में रहना और नौकरी के लिये हरएक शहर में जानेको रेल्वे वगैरह का सब खर्च अपने ही पास से करना पड़ेगा। वसन्तलाल की माता की संमति मिलने से रामलाल को पंद्रह सौ के नोट निकाल दिये। दोनों जेब गरम कर के वसन्तलाल अब नौकरी करने को निकला। नौकरी करने में वसन्तलाल में किसी ओफिस में कारकून बनने तक की भी लियाकत न थी। इस लिये बिचारे को बड़ी नौकरी तो मिले ही कहाँ से? और खर्च उसका इतना बढ़ा हुआ था कि जितना उस में कमाने की लियाकत थी उतने की तो उसे एक महीने में पानसुपारी ही लग जाती थी। वसन्तलाल दिल्ली, अलवर फिर कर राजपूताना में फिरा परन्तु कहीं भी नौकरी का पता न लगा। वह जिस गांव में दश

पंद्रह रोज रहता वहाँ पर खूब मजा उड़ाता। शामको दो घोड़ों की गाड़ी में बैठ कर हवा खाने जाता और मुसाफरी में भी वह सेकन्ड क्लास में गमन करता। खर्चीला स्वभाव होने से पैसा खूब उड़ाता था। वह सब जगह फिर फिराकर जोधपुर में आया। जोधपुर में आकर उसने एक बंगला किराये पर लिया। दो घोड़ों की एक फिटन गाड़ी भी महावारी पर रख ली। तीन चार नौकर और एक रसोइया भी रख लिया। अब उस जंटलमेन के पास कलदार समाप्त होने आये थे इस लिये उसने अपने पिता के नाम एक पत्र लिखा। उस पत्र में लिखा था कि मुझे जोधपुर स्टेट में मजीष्ट्रेट की नौकरी मिल गई है और कुछ दिनों बाद तरक्की होते हुये दीवान पद की जगह मिलने की संभावना भी होती है। तनखाह भी अच्छी है और ऊपर की आमदनी भी अच्छी होने की संभावना है, परन्तु तनखाह दो ढाई महीने बाद मिलेगी और मेरे पास खर्च सब खतम होने आया है। मजीष्ट्रेट पद के अनुसार मुझे अपना खर्च भी बड़े अमलदारों के समान ही रखना पड़ता है इस लिये जल्दी से दो हजार रुपये तार द्वारा भेज दीजिये।

पत्र पढ़ कर रामलाल को बड़ी खुशी हुई, उस ने विचारा लड़का है तो भाग्यशाली, एक दम अच्छे बड़े अहोदे पर चढ़ गया। रामलालने उसी दिन पोष्ट ऑफिस में जाकर दो हजार रुपये वसन्तलाल मजीष्ट्रेट के नाम तार मारफत भेजवा दिये। वसन्तलाल ने पोष्टमास्टर को लेटर द्वारा यह प्रथम से ही सूचना कर दी थी कि वसन्तलाल मजीष्ट्रेट के नाम से आनेवाले तार, लेटर, तथा मनीआर्डर हमारे पास अमुक नम्बर के बंगले पर भेजते रहना। वसन्तलाल को दो हजार मिल गये। उस के ठाठमाठ में जरा भी त्रुटि न आई। यदि किसी की ओर से पूछा जाता तो यह उत्तर दिया जाता था कि बड़ौदा स्टेट के न्यायाधीश किसी राजकार्य के लिये यहाँ पर कुछ दिनोंके वास्ते आये हुये हैं। वसन्तलाल यहाँ पर राजशाही ठाठ में रहता था, उस के साथ एक दो चपड़ासी भी रहते थे, नित्य नयी पोशाक भी बदलता था। इसी ठाठमाठ में वह महीने में एक दफा अपने घर पर भी चक्कर लगा आता था। गांव

के लोग उस के पोजिशन को देख चकित होते और कितने एक वसन्तलाल के सहपाठी विचार करते कि इसे स्कूल में तो इंग्लिश में पूरा सौ तक गिनना भी नहीं आता था तो इसे न्यायाधीश का पद मिल किस तरह गया? दूसरे मनुष्य कहते भई! विद्या पर कुछ आधार नहीं है इस में नसीब की बात है। अब तो रामलाल की जात बिरादरी में यह बात अच्छी तरह प्रसिद्धि में आ गई कि उसका लड़का वसन्त जोधपुर में न्यायाधीश के पद पर विराजमान हो गया है। वसन्तलाल जब कभी एकाध रोज के वास्ते अपने घर पर आता तब उस की जात बिरादरी तथा गांववालों की तरफ से उसका अच्छा सन्मान होता। इस गौरव से रामलाल की खुशी का तो कुछ पार ही न रहा था।

इधर अब रूपचंद खुटने लगे। क्यों कि जोधपुर में वसन्त लाल एक न्यायाधीश के ठाठ माठ से खेल तमाशों में खूब पैसा उड़ाता था, कभी कभी तो उस के भाडुती बंगले में रंडियों का नाच भी होता था। बंगलेवाले का मकान का किराया, बग्गी का मासिक किराया और रसोइया वगैरह नौकरों का वेतन चढ़ने लगा और पास में अब कुछ रहा नहीं। वसन्तलाल ने तुरत में एक मारवाड़ी की दुकान से आठ दिन में वापिस देने करके अपने नाम पांच सौ रुपये मंगवा लिये। मारवाड़ी ने समझा बड़े आदमी हैं उन्हें इस समय रुपयों की आवश्यकता होगी। अब कलदार समाप्त होने से वसन्तलाल ने फिर से अपने पिता के नाम रुपये मंगवाने को पत्र लिखा और उसमें लिख दिया कि अभी तक वेतन नहीं मिला है तथा रुपयों की आवश्यकता है इस लिये रुपये जल्दी भेजो। इस वक्त घर से रुपये आने में कुछ देर लगी, इस लिये लेनेवालों का वसन्तलाल पर तगादे पर तगादा आने लगा। मकान का भाड़ा तथा नौकरों की तनखाह भी चढ़ गई थी इस लिये वे लोग भी अब पैसे विना काम करने से मुँह चुराते और तनखाह मांगते। अब बिचारे नकली न्यायाधीश—मजीष्ट्रेट वसन्तलाल जरा विचार में पड़े। परन्तु कुछ भी उपाय न सूझा। अन्त में वसन्तलाल को वहाँ से भाग निकलने का वक्त आया। परन्तु लेनेवालों ने पीछा न छोड़ा था, अतः उन्हें

भी वह पैसा चुकता करने के लिये साथ ही लेता आया। यदि वहाँ से बड़ौदा जाय तो उस के मुलम्मे का झोल उतर जाय, इस लिये रास्ते में ही एक गांव में रहने वाले अपने पिता के मित्र के वहाँ जा कर उन लोगों का कर्जा चुकता कर अपना बिस्तर तक सब असबाब वहाँ ही छोड़ तथा और भी अन्य मनुष्यों का जिन्हें कि उस के अचानक भाग जाने की खबर ही न लगी थी लगभग दो ढाई हजार का कर्ज रख कर मिया फाटेखाँ बन कर घर आये। मियाजी गिर गये मगर टांग ऊंची की ऊंची, इस कहावत के अनुसार घरवालों तथा पड़ौसियों को कहा कि मेरी तबियत एकदम बिगड़ गई थी, मुझे वहाँ का हवा पानी बिलकुल माकफत नहीं आया, इसी लिये मुझे नौकरी छोड़ कर एकदम चला आना पड़ा। वहाँ के राजा साहब का तो अभी तक उस जगह पर मुझे रखने के लिये आग्रह ही है, परन्तु वहाँ की आब हवा माकफत न आने के कारण मैं अब वहाँ जाना ही नहीं चाहता।

आजकल भी प्रायः सेठ साहूकारों के लड़के बाल्यावस्था में उन के जीवन पर माता पिताका दुर्लक्ष होने के कारण तथा घरवालों के अति लाड चाव में उनका उड़ाऊ स्वभाव हो जाने से उस प्रकार के मित्रों की संगत में लग कर इसी प्रकार अपने जीवन एवं लहू पसीना एक करके कमाई हुई अपने बाप दादे की धन संपत्ति को बरबाद करते हैं। इस प्रकार के अलेल टप्पु दूसरे की ही कमाई हुई धनसंपत्ति पर तागड़धिन्ना करते हैं, वे स्वतः कमाने के लिये असमर्थ होते हैं।

वसन्तलाल यद्यपि एक गरीब घराने में व्याहा था तथापि उस की पत्नी बड़ी ही सुयोग्य सुसंस्कारी थी। उसके माता पिता ने उस में सच्ची गृहिणी बनने के संस्कार डाले थे। उसका लज्जालु एवं विनय से नम्र स्वभाव घर के सर्व मनुष्यों को संतोष पैदा करता था। परन्तु उद्धत स्वभाव वाले वसन्तलाल को इस गृहिणी-रत्न की कुछ भी कदर न थी। पहिले तो वहाँ उस बिचारी को जरा जरासी बातों पर भी मारपीट आदि से बहुत ही दुःख देता, पर वह बिचारी सब कुछ सहन करती। आज जब उसे अपने पतिदेव

वसन्तलाल की असली हकीकत मालूम हुई तब उसे अत्यन्त दुःख हुआ। तथापि उसे वसन्तलाल पर अभाव पैदा नहीं हुआ, किन्तु वह उसे प्रतिदिन समझा बुझा कर ठिकाने लाने तथा मिथ्या मान बड़ाई का त्याग कराने के लिये सदैव प्रयत्न करती थी। परन्तु वसन्तलाल का जीवन तो बाल्यावस्था से ही विषम मार्ग में गमन कर चुका था। बचपन में ही माता पिता के मूर्खता भरे फिजूल खर्ची के लाडचाव ने उस के जीवन को विषम बना दिया था। अतः अपनी सुसंस्कारी पत्नी के सदुपदेश की वसन्तलाल पर जरा भी असर न पड़ी।

वह एक दफा न्यायाधीश बन चुका है इस मिथ्या मान्यता से घर पर भी उसी प्रकार का ठाठ माठ रखने लगा। परन्तु घर में रह कर खुले हाथ पैसा खर्चना यह उस से बन न सका, इस लिये वह माता पिता से जुदा रहने लगा। अब अपनी इच्छानुसार व्यय करता है। रुपये खुट जाने पर पिता से माँगता है, यदि पिता रुपये नहीं देता तो उस के सामने कूवे में पड़ने का, परदेश भाग जाने का तथा लड़ाई में भरती हो जाने का भय बतलाता है। इस से इकलौते पुत्र पर प्रेम होने के कारण उस के भाग जाने के डरसे रामलाल उसे न छुटके रुपये देता है। पिता के दिये हुये रुपयों से जब उस का काम पूरा नहीं होता तब वह दूसरों के वहाँ से उधार ले आता है। बाप की मिलकत के ऊपर लोग उसे उधार देते हैं।

दैवयोग कुछ वर्षों के बाद वसन्तलाल के माता पिता स्वर्ग सिधार गये। अब तो वसन्तलाल अपने पिता की कुल संपत्ति का मालिक बन गया। अब उस का मार्ग बिलकुल निष्कंटक हो गया। विचार शक्तिशून्य उदार स्वभाववाले वसन्तलाल के पास पिता की मिल्कत कितने दिन ठहर सकती थी? उस ने दुर्व्यसनों में पड़ कर खराब मित्रों की संगत में थोड़े ही दिनों में पिता की कमाई हुई—पैसा पैसा कर इकट्ठी की हुई धनसंपत्ति को स्वाहा कर दिया। कमाई किस प्रकार होती है, पैसा कैसे पैदा किया जाता है इस बात का तो बिचारे वसन्त को जन्म से कुछ अनुभव ही न था। पिता की संपत्ति खाये बाद कुछ दिनों तक तो दूसरों से उधार

ले कर काम चलाया। लोगों को मालूम पड़ने पर अब कोई उसे उधार तक नहीं देता। अब तो बहुत से मनुष्य वसन्तलाल को सुनाते हुए दूसरों से उसकी मस्करी उड़ाते हैं कि देखो भई! वे न्यायाधीश—मजीष्ट्रेट साहब जा रहे हैं। अपनी तंग परिस्थिति के कारण वसन्तलाल को सब कुछ सहन करना पड़ता था। अब तंग परिस्थिति में खुशामदी टट्टू—स्वार्थी मित्र सब ही धीरे धीरे खिसकते गये। जो हमेशह वसन्तलाल के सब कामों में विना ही बुलाये आकर सरीख होते थे आज वे बुलाने पर भी उस के पास नहीं आते। जो मात्र एक कप चाय के लिये अपना ईमान बेच कर रात-दिन वसन्तलाल के ही चरण चूमते थे वे आज वसन्तलाल के दुर्दिन में यदि रास्ते में कभी मिल भी जाते तो दूसरी ओर मुख फिरा लेते थे। अब वसन्तलाल की बहुत ही तंग स्थिति हो चुकी थी। इस समय उसे दो लड़के भी हो चुके थे, उसकी चाल चलगत सुधारने के लिये वसन्तलाल की पत्नी उससे प्रतिदिन प्रार्थना करती, परन्तु उसके दिल में कुछ भी विचार न आता। वह बिचारी बहुत दफा हाथ जोड़ कर वसन्तलाल के पैरों में पड़ती, स्वामिन्! अब तो दया करो? मेरे लिये नहीं तो इन अपने दो बच्चों पर तो रहम करो। अब तो आप इस मिथ्या मान बड़ाई का त्याग करो, इस व्यर्थ की बड़ाई ने अपना सर्वस्व नाश कर डाला, प्रभो! अब तो आप अपने आचरण में परिवर्तन कर अपने पवित्र कुल की जाती हुई लाज को बचाओ! और तो सब कुछ खोया अब आबरु तो रक्खो! देखो! ये कर्ज मांगने वाले रोज की रोज पीछे लगे हैं, मैंने आज ही बात सुनी है कि जमनादास सेठ की तरफ से तो आप को पकड़वाने का वारंट भी निकल चुका है। न जाने अब क्या होगा? इन बच्चों की क्या दशा होगी?

चारों तरफ से हाथ बंद हो जाने और सिर पर बहुतसा कर्जा हो जाने पर विनीत भाव युक्त पत्नी के प्रतिदिन के बोध वचनों से वसन्तलाल को अब जरा अपनी स्थिति पर कुछ कुछ विचार पैदा हुआ। उसने विचारा कि ओहो यह क्यासे क्या बन गया? मैं किस तरह के रुआब का मनुष्य था? और आज मेरी यह स्थिति!! मित्रो

की भी परीक्षा हो चुकी, घर की सब मिल्कत नष्ट होकर कर्जा भी सिर पर चढ चुका। अब तो इस मेरी धोखे की टट्टी से रही सही आबरु का रक्षण होना मुस्किल है। अब तो इस मिथ्या मान बड़ाई के चष्मे को उतारना ही पड़ेगा। विचारी औरत तो मुझे प्रथम से ही झींकती थी, परन्तु मैने उस बिचारी की एक भी न सुनी। अस्तु, अब व्यर्थ की चिन्ता से क्या होगा? अब तो इस फिजूल खर्ची और मिथ्या बड़ाई को त्याग कर किसी सेठ के वहाँ पर नौकरी रह कर कुछ कमाऊंगा तो ही बाल बच्चों का निर्वाह हो सकेगा।

वसन्तलाल अब एक व्यापारी के वहाँ असामियों में तगादा करने के लिये थोड़ी ही नौकरी पर नौकर लग गया है, बालबच्चों का निर्वाह चलता है। कुछ दिनों के बाद वसन्तलाल ने प्रेम पूर्वक काम कर अपने सेठ की प्रीति संपादन की। सेठने उसका वेतन बढाया। बराबर विश्वास जम जाने पर सेठने अपने रूईके व्यापार में वसन्तलाल का चौथाई हिस्सा रख दिया। इससे उसे उस वर्ष दो ढाई हजार रुपये नफेके मिले। वसन्तलाल का उड़ाऊ स्वभाव होनेसे अपने स्वभाव को सुधारने के लिये अब वह जो कुछ कमाता है अपने पास न रख कर अपनी स्त्री को दे देता है। उसकी स्त्री घर में आवश्यकीय चीजें ही खरीद मंगाती है। अनावश्यक वस्तु के लिये वह एक पाई तक नहीं खर्चती। घर खर्चका तथा आमदनी का हिसाब वह बराबर रखती है। घर के निर्वाह से जो रकम वह प्रतिमास बचाती थी अब उससे अपने सिर चढा हुआ कर्जा उतारना शुरू किया। उस व्यापारी के हिस्से में व्यापार द्वारा पैसा कमाते हुये वसन्तलाल ने धीरे धीरे अपना तमाम कर्ज उतार दिया। अब वह अपनी सुशिक्षित पवित्र हृदय वाली गृहदेवी की सम्मति को सम्मान देकर व्यापार में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करता हुआ अपनी समुन्नति की धुन में लग गया है।

इस प्रकार सुसंस्कारी स्त्री अपने असाधारण गुणों से ऐसे विषम मार्ग में भी गये हुये अपने पतिदेव को ठिकाने ला सकती है।

सासु और बहु।

—••:०:••—

सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने से मालूम हुआ है कि विशेषतः कुटुम्बों में महाभारत मचने का कारण सासु बहु का अनबनाव ही होता है। यदि सासु अपनी बहु के प्रति पालन करनेवाले अपने कर्तव्य को पाले और यदि बहु बननेवाली लड़की कुमारावस्था में अपने माता पिता के घर पर सासु, देवरानी, जेठानी और नणंद के प्रति अपना क्या कर्तव्य है, उनके साथ किस प्रकार बरतना चाहिये इस बातका ज्ञान संपादन कर के आई हो तो उस कुटुम्ब में कभी कलह होने का कारण ही उपस्थित नहीं हो सकता। माता पिता के घर पर जो कुमारपन की अवस्था-ब्रम्हचर्यावस्था शिक्षण ग्रहण करने-किन किनके साथ अपना क्या क्या कर्तव्य है, किस किस के साथ किस किस प्रकार का आचरण करना चाहिये इत्यादि का ज्ञान संपादन करने की वय थी स्वार्थी माता पिता के हाथ नीचे अज्ञानता के कारण वह कीमती समय की वय घर के जूंठे बरतन माँजने या छोटे बच्चोंको खिलाने में व्यर्थ ही खोदी और विवाह के बाद बहु बने पीछे संसार की वृत्तियों में मन जुड़ गया, अब घरका कार्यभार सिर पर पड़ने से अपने कर्तव्य को जनाने वाला और अपने जीवन को सुखी बनानेवाला शिक्षण मिलना अशक्य है। इस लिये शिक्षण के अभाव में अपने कर्तव्यज्ञान से वंचित रह कर गृहस्थाश्रमी जीवन में कडुवे प्रसंगों का अनुभव करना पड़ता है। सुसंस्कारी बहु अपने सासु सुसरे को माता पिता के समान समझती है, नणंद को अपनी बड़ी बहिन के समान समझती है, पति को अपने पूज्य गुरुदेव के समान समझती है और देवर को अपने पुत्रके समान समझती है, इतना ही नहीं किन्तु उनके प्रति पालन करनेवाले अपने पवित्र कर्तव्य को प्रेम पूर्वक पालती है। ऐसा बर्ताव करने से घर में कभी भी परस्पर झगड़े टंटे करने का प्रसंग उपस्थित नहीं होता।

सुसंस्कारी सासु बहूको अपनी लड़की के समान समझती है। बहू के दुख सुख में वह उतना ही हिस्सा लेती है जितना कि अपनी लड़की के दुख सुख में लेना चाहिये। बहू से कोई कार्य बिगड़ जाने पर वह अपनी पुत्रीके ही समान उसे मीठे वचनों द्वारा शिक्षा देती है। बहू के प्रति अपने कर्तव्य को जानने वाली सुशिक्षिता सास् समझती है कि यह बिचारी अपने जन्म घर को छोड़ कर, अपने प्रिय माता पिताका जन्मका स्नेह छोड़ कर हमारे घर में आई है इस लिये हमारा घर यह इसीका घर है और हमी इस के माता पिता हैं। हमारे विना यहाँ पर इस बिचारी का है ही कौन? आज यह हमारी बहू है परन्तु कल यही हमारी इस सासूपने की पदवी पर आयगी, कल यही सारे घर की मालकनी बनेगी। इस लिये लड़ाई झगड़ों में, जरा जरासी बातों में इसका अपमान न करके यह भावीकाल में घर की मालकिनी बन कर घरका भली प्रकार निर्वाह कर सके, घर में शान्ति और समता—जन्यसुख को सदा के लिये कायम रख सके, घर में किसी भी प्रकारका वैर विरोध उपस्थित न होने दे कर कुटुम्ब के बड़े छोटे सब मनुष्यों को सुखी कर सके उस प्रकारका इसे शिक्षण दूं, ताकि मेरी बहू की प्रशंसा से मेरी भी प्रशंसा हो। इस प्रकार के विचारों से श्रेष्ठ सासू सदैव अपनी बहू को आदर्श गृहिणी बनाने का प्रयत्न करती है और यदि कदाचित् बहू से कभी कुछ भूल भी हो जाती है तो उसे अपनी पुत्री के समान ही प्रेम पूर्वक भूल सुधारने की सूचना करती है।

जो सासू अपने कर्तव्यज्ञान से रहित और कुसंस्कारी तथा मूर्खता के कारण अपने बड़प्पन के अभिमान में ही चूर रहती है वह अपनी पुत्रवधू को अपने घर की दासी के समान समझती है। घर में आते ही उस पर काम काजका बोज डालती है, यदि उस से पूरा काम न हो सके तो उस पर गालियों का बरसात बरसाती है। उस से जरासा भी कार्य बिगड़ जाने पर उसके माता पिता तक को गालियों से भाँडती है। यदि सासूजी के असभ्य कटु वचनों से हृदय तप जाने पर बहू के मुख से दबे हुये वचन से कुछ बोला

गया तो फिर तो पूछना ही क्या है। सासूजी क्रोधका मूर्तिमान स्वरूप धारण कर उसे क्रोधाग्नि में भस्म करने को तैयार हो जाती है, उसे मारने तक के अकृत्य से भी दुःख देने में कुछ बाकी नहीं उठा रखती। बात बात में उस की कदर्थना करती है। उस बिचारी की कोर्ट सासूजी ही थी। परन्तु उसी कोर्टमें से उस के लिये न्यायके बदले अन्याय होने लगा। वह कोर्ट उसे दूसरों की पीड़ा से क्या बचाये किन्तु स्वयं ही उसे पीड़ित करने लगी। अब बड़े से बड़ी हायकोर्ट उस के लिये उसका पतिदेव है। पति के पास अपने दुःखोंकी अरजी करती है। पतिदेव उस के दुःखों की अरजी पढ़ कर उस के प्रेम के लिये तथा घर में होनेवाले अन्याय से उसके दुःख से दुःखित होकर मौन ही रह जाते हैं, या उल्टा उसे ही निरुत्साहित करने लग जाते हैं। परन्तु माताकी मान मर्यादा रखने के लिये पति कुछ भी जजमेन्ट नहीं दे सकता। उसे दोनो तरफ के दुःख से दुःखित होना पड़ता है। अपने कर्तव्य मार्ग म चलते हुये भी अज्ञान सासू की ओर से त्रास पानेवाली गाय के समान विचारी उस बालवधू का सासु ससुरे और पति के सिवाय अन्य कौन है? बाल वय होने से मारे शरम के या माता पिताकी मान मर्यादा पालने के भार नीचे दब जाने के कारण पत्नी के ऐसे दुःखके प्रसंग जान ने पर भी पत्नीकी तरफ से पति के मुख से कुछ भी नहीं बोला जा सकता। पुत्र के न बोलनेवाले सद्गुण का लाभ लेकर घर में अज्ञान सासु अपनी बहू को सदैव दुःख देती है। अब कहो उस बिचारी की हिमायत लेनेवाला वहाँ पर कौन रहा? यदि कभी दया आने से कोई पड़ौसन बहूकी ओर से दो शब्द सासूको समझाने के लिये बोले तो वह विवेक रहित सासु बोलती है कि बस तुम ही तो हमारी बहूको सिखा कर बिगाड़ता हो। खबरदार जो तुम हमारे बीच में बोली। तुम्हारा हमारा क्या सम्बन्ध है? हम मन चाहे सो अपनी बहूको कहेंगे हमारे बीच में बोलनेवाली तुम हो कौन?

बस हो चुका, पड़ौसन का भी इस प्रकार के वचन प्रहारों से मुख बन्द कर दिया। इस प्रकार की सासु अपने आपको सर्वाधि-

कार संपत्ति समझ कर निरंकुश हो भावी भयंकर परिणाम का खयाल न रख कर अपनी बहू को घर की दासी समझ रात दिन त्रास दिया करती हैं।

इस प्रकार के जुल्म गुजारनेवाली बहुतसी दुष्टा सासुओं को बुढापे में बड़ा अनिष्ट फल भोगना पड़ता है। बहुतसी बहुवें जिन्हों ने अपने बाल्यकाल में घर में सासु के द्वारा अति दुःख सहन किया होता है, सासुजी की वृद्ध अवस्था में वे बदला चुका लेती हैं। क्यों कि उस समय घरका सर्व मुखत्यारनामा उन्हें ही मिलता है और बुढिया सासुजी अब बूढी गाय के समान बेकार हो जाती है। दुनिया में कहावत है कि दूधालू ही गायकी लातें सहन करली जाती हैं परन्तु काम निकल जाने पर उस मरखनी बूढी गाय को कोई पानी तक नहीं पिलाता। सासु से मिले हुये दुःखों को याद कर उससे वृद्धावस्था में बदला लेना हमारी समझ में यह भी सुकुलीना बहुओं के लिये कलंकरूप है। अज्ञानता में सासुने हित अथवा अहित से चाहे जितना दुःख दिया हो तथापि उसे अपनी पूज्य माता के समान समझ कर वृद्धावस्था में उसकी सेवा करना यही कुलवती बहुओं का पवित्र कर्तव्य है। बदला लेने की बुद्धि से अपने पूज्य जनों को दुःख देने के विचार मात्र से भी महा पाप लगता है। इस लिये कुलीन बहुओं को सदा काल ही अपने सुसंस्कारी स्वभाव के अनुसार अपने सासु ससुरे आदि पूज्य जनों की सेवा में दत्त चित्त रहना चाहिये। अपने विशुद्धाचरण से उन्हें संतोषित रखना चाहिये।

सासुका कर्तव्य बहू की भूलें सुधार कर उसे सन्मार्ग में दृढ करने का है। कदाचित् माबाप की अज्ञानता के कारण वह घर सम्बन्धी काम काज न सीख कर आई हो तो उसे प्रेम पूर्वक गृहकार्य सिखाने का प्रयत्न करना चाहिये। किन्तु तेरे मा बापने तुझे कुछ भी सलीखा न दिया, तेरे मूर्ख माता पिताने तुझे भी मूर्खनी ही रक्खा इत्यादि कटु वाक्य बोल कर उसे दुःखित न करना चाहिये। भावी काल में घर का समस्त अधिकार उसी को मिलने वाला है यह

समझ कर उसे श्रेष्ठ गृहिणी बनाने तथा घर का सर्वाधिकार वहन करने के योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

सुकुलीन बहुओं को विलासवृत्ति का परित्याग करना चाहिये। अपने जीवन में सादेपन को स्थान देना चाहिये। अपनी नम्रता, विनयता, शिष्टाचारता और लज्जालुता, स्वार्थत्याग आदि स्त्री सम्बन्धी सद्गुणों द्वारा अपने कुटुम्ब के सुख तथा सुयश को वृद्धिगत करने का प्रयत्न करना चाहिये। अपने स्वभाव को बिलकुल ठंडा बना कर धैर्य तथा सहन शीलता रख कर कुटुम्ब के सब मनुष्यों के साथ सरल एवं पवित्र बरताव करके उनके मन को संतोषित कर उनकी प्रीति संपादन करना चाहिये। घर में घर सम्बन्धी तमाम वस्तुओं की सुव्यवस्था रख कर तथा घर में किसी प्रकार का नुकशान न हो, कोई वस्तु अपने से या दूसरे से खराब न हो जाय इस बात पर ध्यान रख कर सासु ससुरे के मन को संतोषित रख उन्हें यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये कि हां अब बहु को हमारे घर पर बराबर ममत्व हो गया है। इस प्रकार के प्रशस्त सदाचार को पालन करने वाली कुल वधू अपने सारे कुटुम्बके मनुष्यों का प्रेम प्राप्त करती है। अपनी जेठानी एवं देवरानी के लड़की लडकों को अपनी ही सन्तान समझ कर उनके चित्त में स्थान प्राप्त करती है। ऐसे सरल तथा उच्चाचार विचार वाली ही स्त्री अपने माता पिता और सासु ससुरे के कुल को उज्वल बनाती है। इस प्रकार के श्रेष्टाचार संपन्न स्त्रियों वाले कुटुम्ब ही संसार म स्वर्गीय सुखका अनुभव करते हैं। ऐसी ही स्त्रियां घरकी कुलदेवी कहलाती हैं और ऐसी स्त्रियोंसे ही मनुष्यों का गृहस्थजीवन सुखी तथा सफल हो सकता है। इह लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करने की इच्छा वाली एवं अपने सत्संग से दूसरों को सुखी बनाने की इच्छा रखने वाली कुलीन स्त्रियों को पूर्वोक्त सदाचार पालना चाहिये।

आज कलके समय में अपने कर्तव्य ज्ञान से वंचित रहनेवाली कुसंस्कारी सासुओं द्वारा बहुओं को जो पूर्वोक्त करुणाजनक त्रास मिलता है सो बड़े बड़े कुटुम्बों से भी अज्ञात नहीं है। आजकल की

सासुओं के हृदय में जो भावना, जो उल्लास एवं जो चाव पुत्र का विवाह करते समय होता है वह घर में बहू आते ही सर्वथा धोया जाता है। जिस प्रकार पुत्र पर प्रेम रहता है उस प्रकार पुत्र की प्रेमपात्री—पुत्र की प्राणेश्वरी पर नहीं रहता। उसे अपनी पुत्री से हलके—नीचे दरजे की समझा जाता है। ब्याह के बाद जबतक एक दो दफा बहू ससुराल में आती है तबतक तो सासुजी की कुछ दया-दृष्टि अवश्य रहती है, परन्तु फिर हमेशह के लिये उसे एक दासी के समान माना जाता है। पुत्रवधूपन की भावना सासुजी के हृदय से उठ जाती है। अब वह उस पर संपूर्ण रीति से अपना अधिकार चलाना चाहती है। घर के सर्व कार्यों में बहू पर हुक्म चलाना ही वह अपने सासुपद का मुख्य कर्तव्य समझती है।

ब्याह होते समय तो बहू को भी बहू बनने और पति तथा सासु ससुरे के घर जाने का बड़ा ही चाव था परन्तु अब सासुजी के त्रास से वह मधुर और सुखकर मालूम होनेवाला विवाह कटु एवं दुखकर देख पड़ने लगा। अब उस के हृदय की उमंग, सासु ससुरेजी के प्रति अन्तःकरण में रही हुई भक्ति सर्वथा धोई गई।

जिस प्रकार आज कलके साधु स्वयं गुरु बनने के लिये तथा शिष्य पर हुक्म चला कर लोगों में बड़े महाराज कहलाने के लिये गृहस्थों के भोले भाले अनजान लड़कों को बहका कर अपना शिष्य बना लेते हैं और शिष्य बनाने से पहिले जो प्रेम तथा ममत्व बतलाते हैं शिष्य बनाये बाद वह सब कुछ नष्ट हो कर अन्तःकरण में प्रथम से ही छिपी हुई महत्वाकांक्षा की भावना प्रगट करते हैं बस उसी प्रकार आजकल की मातायें भी स्वयं सासुपद पा कर बहू पर हुक्म चला कर पड़ौसनों में अपना महत्व—बड़प्पन बतलाने की भावना से ही अपने लड़कों का चाव से विवाह करती हैं, परन्तु लड़के के समान लड़के की प्राण प्रिया पर प्रेम नहीं रखतीं। वे उसे अपने घर में काम काज करने वाली नौकरनी के समान समझती हैं। बहू बिचारी अपने प्यारे मात पिताओं को छोड़ कर, अपने बहिन भाइयों को छोड़ कर, अपने सगे संबन्धिओं को छोड़ कर एवं अपने कुटुम्ब कबीले व घरबार को छोड़ कर यहाँ दूसरे घर में, दूसरे कुटुम्ब

कबीले में और दूसरे अपरिचित सहवास में आती है, ऐसी नवीन परिस्थिति में सासु ससुरे आदि ससुराल के सर्व कुटुम्बी स्त्री पुरुषोंका अपने अपरिचित कुटुम्ब में आनेवाली उस बाल वधू के साथ किस प्रकार का बरताव होना चाहिये इस बात को पाठक महाशय स्वयं ही विचार लें। अपने माता पिता के प्रतिका प्रेम या पूज्य बुद्धि बहू को यहाँ पर अपरिचित कुटुम्ब में आकर अपने सासु ससुरे पर नियोजित करनी पड़ती है, अपने घर के ममत्व को छोड़ कर इस घर पर ममत्व रखना पड़ता है, अपने जीवन भरके सुख दुख का आधार अब से इसी घर के सुख दुख पर निर्भर है ऐसा दृढ विश्वास उसे अपने अन्तःकरण में जमाना पड़ता है। इन सब बातों को जल्दी ही सिद्ध करने में ससुराल के सर्व स्त्री पुरुषों का प्रेमाचरण ही हेतु भूत होता है। उस में भी विशेषतः सासुजी का ही प्रेमाचरण बहू में बहूपद की योग्यता शीघ्र लाता है। परन्तु आजकल की स्त्रियाँ सासुपद की योग्यता न होने से उन्हें यह भी विचार पैदा नहीं होता कि यह बिचारी हमारे अपरिचित घर में आज पहिले पहल आई है सो इस का जी लगता है या नहीं। हमारे घर पर इसका ममत्व जमता है या नहीं? हम पर इसका प्रेम जमता है या नहीं? और यदि नहीं तो यह सब कुछ कराने के लिये हमें इस के साथ किस प्रकार का प्रेमाचरण करना चाहिये? इस विषय में सासुजी को कुछ विचार ही नहीं होता। वह सिर्फ उसे अपनी खरीदी हुई दासी समझ कर उस पर हरघडी हुक्म चलाने के लिये तैयार रहती है। छोटी उमर होने पर भी सुबह से शाम तक के तमाम काम काज घर के बहू को ही करने पड़ते हैं। उसे किसी भी कार्य में किसी की ओरसे मदत नहीं मिलती। यदि सासु के मन में आ जाय तो कभी एक दफा की रसोई कर लेती है। इतना करने पर तो वह बहू पर बड़ा उपकार किया समझती है।

सुबह उठ कर घर में झाडू देना वह काम बहू का, बरतन मांजने सो भी काम बहू का, पानी भरना, कपड़े धोना सो भी काम बहू का ही है, यदि सासुजी किसी दिन लहर में आ कर रसोई करे तो उसे सर्व प्रकार से मदत करना सो तो बहूका काम है ही, घर के तमाम मनुष्यों

क जीम लेने पर पीछे से बचाकुचा अन्न खाना सो भी काम बहूका, सब के भोजन किये बाद जूठी थालियें साफ करना सो भी बहूका ही काम, शामको रसोई करना, सबको जिमा कर फिर आप जीमना सो भी काम बहूका, रातको सोने के समय सबकी चारपाई या बिछौने बिछाना सो भी काम बहूका, ये सब काम यथा समय करते हुये यदि सासुजी कोई दूसरा भी काम बीच में फरमावे तो जी हां कह कर उसके हुक्म के अनुसार करने लग जाना सो भी काम बहूका, सब कुछ करते भी सासुजी की कदर्थनायें सहन करना, उसके मार्मिक वचन प्रहार सहना, यदि कोई कार्य सासुजी के मन पसंद न हुआ तो उसके लिये सासुजी की गालियें मौन पूर्वक सुनना और ऐसा करते हुये सदाकाल सासुजी की चापलोसी करना यह भी काम बहूका ही है।

बस इतने से ही छुटकारा नहीं है अभी तो बहूका और भी कर्तव्य है, सो यह कि सासुजी के समान ही नणंद के भी बोल सुनना। उसके हुक्म को भी मान देना सो भी आजकल सासुके मन बहूका ही कर्तव्य गिना जाता है। विचारी बहूको इतना सब कुछ करते हुये भी घर में शान्ति नहीं मिलती। घर के सर्व काम काजका भार अपने सिर पर उठा लेने पर भी उसे सासुकी ओर से मात्र साबासी—उत्साह वर्धक शब्द तकका भी पुरस्कार नहीं मिलता। उल्टा यदि उससे कुछ नुकसान हो जाय किंवा सासुजी की गालियें सुनते समय कभी भूलसे कुछ उत्तर दिया जाय तो बहुतसी सासुओं को तो इतना भयंकर कोप चढ जाता है कि वे हाथ में लकड़ी लेकर बहूको मार मारने तक के भी अधम कृत्य से नहीं चूकतीं। जिस प्रकार आजकल अंध श्रद्धाका समय नष्ट हो जाने पर भी द्वारकाजी की यात्रा करने वालोंको जीतों को ही दाग दिया जाता है उसी प्रकार काली-नागन के समान जहरीले स्वभाव वाली कितनी एक सासु तो क्रोधमें अन्ध बन कर लोहे की कड़छी या चिमटे को अग्नि में लाल कर गायके समान विचारी निरपराध बाल बहुओं के शरीर में दाग देती हैं। आहा!! कैसा भयंकर त्रास है!! हृदय कांपता है, प्रभो! इस पवित्र भारत भूमि के कुटुम्बों में रही हुई इस भयंकर अज्ञा-

नता का नाश करो। इस स्त्रीवर्ग की कौटुम्बिक अज्ञानता राक्षसी ने आज तक हजारों-लाखों के प्राण हरण कर लिये। इस कुटुम्ब त्रास से दुःखित होकर हजारों मनुष्यों ने अपने सर्व सुखों को त्याग कर संन्यस्त स्वीकार कर लिया। इस अज्ञानता भरे कुटुम्ब क्लेशने लाखों मनुष्यों के सुखको नष्ट कर दिया। मात्र स्त्री जातिकी अज्ञानता के कारण कुटुम्ब कलह से आज भारत के लाखों कुटुम्ब ऊपर से सुखी दीखते हुये भी आन्तर जीवन पशु व नारकी के समान बिता रहे हैं। हे जगदीश्वर! इन दयापात्र दुखी कुटुम्बों को स्त्री शिक्षण के महत्व को समझने की बुद्धि दो और बाह्य सर्वसुख की सामग्री प्राप्त होने पर भी बिचारे दुःखी नरक कीटके समान दुःखमय जीवन बिताने वाले ऊपर से श्रीमन्त परन्तु सुखलेश वंचित इन दीन दुःखी रंक कुटुम्बों पर करुणा करो।

दूसरों से जबरदस्ती अपना विनय करना, दूसरों से जबरदस्ती काम काज कराना, दूसरों पर सत्तासे हुकम चलाना, अपनी सत्ता से दूसरों को धमकाना या त्रास देना, दूसरों को दबा कर-धमका कर उनसे सन्मान प्राप्त करना इत्यादि से कदापि बडप्पन प्राप्त नहीं होता। परन्तु दूसरों पर प्रेम करते हुये अपने नम्रता आदि सद्गुणों से अपने प्रति दूसरों की पूज्यबुद्धि प्राप्त करना, दूसरों के काम में सहायता करना, दूसरों को आश्वासन देना और दूसरों के सुख से सुखी एवं दुख से दुखी होना और अपनी शक्ति होते हुये-अपने हाथ पैर चलते हुये दूसरों के दुःख में सहायक बनना इत्यादि सदाचरण करने से ही स्त्री या पुरुष को बडप्पन मिल सकता है।

आजकल की स्त्रियों में बडप्पन प्राप्त करने की इस से विपरीत ही भावना देख पड़ती है। बहू की तबियत नादुरुस्त होने पर भी मात्र इस मिथ्या बडप्पन की भावना से उसे उस के काम धंधे में जरा भी सहाय नहीं की जाती। शरीर ठीक न होने पर भी सासु के डर से बहू सारा दिन घरका काम धंधा करती रहे और सासुजी उस पर दिन भर हुक्म ही चलाती रहे यह निर्दयता का कृत्य क्रूर सासुओं से ही हो सकता है। अपने प्रियपुत्र की प्राण प्यारी से निर्दयता पूर्वक काम लेना, उसे गृहदासी के समान समझना उस के दुख सुख का

कुछ भी खयाल न रखना यह अज्ञान मूर्खनी और दया हीन स्त्रियोंका ही काम है।

आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हजारों कुटुम्बों में सासु बहू में हमेशा क्लेश कलह रहता है। सासु की बहू पर और बहू की सासु पर प्रीति नहीं होती। इस से रात दिन कुटुम्ब में तकरार ही रहा करती है। इस सासु बहू सम्बन्धी घरकी तकरार से घर के पुरुषों को कितना दुःख उठाना पड़ता है इस बातको तो वही समझ सकते हैं कि जिन्हें इस विषय का कडुवा अनुभव मिल चुका हो या वर्तमान समय में मिल रहा हो। यदि सासुका बहू पर प्रेम न हो तो बहू चाहे जैसा सुन्दर और चाहे उतना अधिक काम करे तथापि बहूका किया हुआ वह सुन्दर तथा अधिक कार्य भी सासु की नजर में नहीं आता, उसे वह पसंद ही नहीं पड़ता। यदि बहू कोई अच्छा कार्य करने की सलाह दे तो सासुको वह बिलकुल पसंद नहीं पड़ती। बहू के किये हुये अच्छे से अच्छे काम में से भी कुछ दूषण निकालना, जरासी भूल हो जाने पर भी उसकी निन्दा करना, उसकी तरफ से सदैव मुँह चढाये रहना यह मूर्ख सासुओं का कर्तव्य ही हो जाता है। इसी प्रकार बहुतसी बहुओं का भी ऐसा ही खराब स्वभाव होता है कि बिचारी भोली सासुको अनेक तरहसे त्रास देती हैं। वे हरएक बातमें सासुजीके सामने नखरा करती हैं, सासुजी का कहना न मान कर अपनी मरजी मुताबिक स्वच्छन्द आचरण करती हैं। इस प्रकार सासु बहू के कर्तव्य को न समझने से घरमें रातदिन परस्पर झगड़ा टंटा हुआ करता है। बहु को अभी तक अपने पतिदेव के समक्ष अपना दुःख कथन करने का समय ही नहीं मिलता इतने में तो सासुजी अपने पुत्र के कान अच्छी तरह भर देती हैं। विचारशून्य मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे जिस की बात पहिले सुनते हैं चाहे वह सर्वथा असत्य ही हो उसी की ओर उन का झुकाव हो जाता है। पुत्र को प्रथम तो माता की बातें सुन उन्हें सत्य मान कर दुःखी होना पड़ता है, फिर पत्नी की बातें सुन कर उस के दुःख से दुःखित होना पड़ता है। स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा

होता है कि जब दूसरों के मन में वे अपनी बात सत्यतया ठसाने का प्रयत्न करती हैं, जब दूसरों की झूठी सच्ची बातें किसी के सामने करनी हों तब बड़ी खूबीके साथ नून मिरच लगा कर—सेरकी सवासेर या रज की गज बना कर रो रो कर करती हैं। इससे झूठी बात भी सुननेवाले के दिल पर असर कर जाती है। इस प्रकार माता की तथा बहू की दुःखभरी बातें सुन कर विचारे घर के मालिक को मन ही मन दुःख से अत्यन्त पीड़ित होना पड़ता है। वह विचारा सरौंते के बीच सुपारी के समान दोनों तरफ से पीडित होता है, उसे किसी भी प्रकारका जजमेन्ट-फैसला देनेका सामर्थ्य नहीं होता।

इस लिये स्वयं कलहदुःख से बचने तथा अपने निमित्त से दूसरों को दुःखसे बचाने की इच्छा रखनेवाली चतुरा-सयानी सासुओं को अपने पुत्रके या अपनी पुत्री के समान ही अपनी पुत्र-वधू पर प्रेमदृष्टि रखनी चाहिये। यदि बहू से कुछ भूल हो जाय तो उस पर गालियों की वृष्टि न करके उसे प्रेमभरे मधुर वचनों से समझाना, उसे जो कार्य न आता हो सो शान्ति पूर्वक सिखाना, उसे किसी प्रकारका दुःख हो या वह किसी प्रकार की उलझन में पड़-कर चिन्तातुर बन उस प्रकारका उसके साथ निन्दनीय आचरण न करना चाहिये। उससे जो काम काज कराना हो उस के लिये हुक्म नहीं किन्तु प्रेम पूर्वक सूचना करना, उसे बारंबार जरा जरासी बातों में कटुवचनों से तिरस्कृत न करना, हरएक कार्य में उसे मदत करना, घरका कोई भी कामकाज थोड़ा भले हो परन्तु उसे सुन्दर बनानेका प्रयत्न कराना चाहिये। अपने घर पर अपने घर के मनुष्यों पर उस के दिल में अपनेपन की बुद्धि पैदा हो, उसका जल्दी ही उस घर पर ममत्व जम जाय इस प्रकारका आचरण उसके साथ करना चाहिये। उस के अन्तःकरण में सासु ससुरे के प्रति पूज्यभाव प्रगटे इस प्रकारका आचरण बहू के साथ होना चाहिये। सासुजी के आचरण से उसे आनन्द होना चाहिये। यदि बहू उस के माता-पिता के घर शिक्षण ले कर न आई हो तो सासुका कर्तव्य है कि अपने घर आये बाद अपनी बहूको साधारण शिक्षण तो अवश्य

दे। उसे लिखना पढ़ना आवे, पुस्तक पढ़ना आवे, पत्र लिखना पढ़ना आवे और घर सम्बन्धी साधारण हिसाब किताब आवे इत्यादि ज्ञान तो उसे अवश्य ही कराना चाहिये। यह सब कुछ सुगड़ सासु कर सकती है और इस से भाविकाल में उसे ही सुख मिलता है। क्यों कि लड़के की बहू जो पढ़ी लिखी होगी तो ही वह अपना कर्तव्य समझ कर सासुकी सेवा भक्ति कर सकेगी और घर की व्यवस्था भी भली प्रकार कर सकेगी।

सासु को समझना चाहिये कि अपने पुत्रकी बहू ही अपने घर की मालिक है। जिस प्रकार घरका वारस पुत्र है उसी प्रकार पुत्र की वहू भी कुछ दिनों बाद सर्वाधिकार संपन्न होकर इस मेरे स्थान को प्राप्त करेगी, इस लिये उस पर सर्व प्रकार से प्रेम रख कर उसे घरकी व्यवस्था का ज्ञान कराते रहना, उसे धीरे धीरे अपना कार्य भार सोंपते रहना और वह किस प्रकार हुशियारी के साथ उस कार्यभार को वहन करती है—घर की व्यवस्था कैसी करती है इस बात पर प्रेम की दृष्टि से निरीक्षण करते रहना, यदि उसमें कहीं पर उसकी भूल होती हो तो उसे सुधारने के लिये प्रेम पूर्वक समझाना, उसकी शक्ति से बाहर का कार्य उसे न सोंपना, उस से सुख पूर्वक हो सके उतना ही काम उस से कराना, किन्तु अधिक कामकाज का भार उस पर एकदम कदापि न डालना चाहिये। उससे जितना कामकाज कराना हो सो उसी दृष्टि से कराना चाहिये जैसा कि अपनी पुत्री से कराया जाता है।

बहूको घर के कामकाज में निपुण—चतुर बनाना, धीरे धीरे उसे अपना काम सिखाना, सच्ची गृहदेवी बनाने का प्रयत्न करना, बहू पदके योग्य उसका क्या कर्तव्य है इत्यादि का शिक्षण देना, पति-सेवा किस प्रकार करना चाहिये, पतिका विनय किस तरह करना, उसे किस प्रकार संतुष्ट रखना चाहिये, संसार में दम्पती धर्म पालन करते हुये आदर्श जीवन बिताते हुये किस प्रकार आनन्द प्राप्त करना, घरका कारोभार किस प्रकार प्रामाणिकता से चलाना और घर में बड़े छोटों के साथ किस प्रकार का श्रेष्ठ व्यवहार रखना चाहिये,

एवं अपने घर पर आये हुये बाहर के मनुष्यों की सारसंभार किस प्रकार करना चाहिये इत्यादि का बहूको शिक्षण देना यह संसार का अनुभव करनेवाली सासु का मुख्य कर्तव्य है। अपने घरमें आकर बहू सुखी हो, उसे हमेशाह आनन्द प्राप्त हो, उसे अपनी ओरसे किसी भी प्रकार का असंतोष पैदा न हो, अपने आचरण से उसके दिलमें अपने प्रति अप्रीति पैदा न हो, उसके अन्तःकरण में सदा काल अपने प्रति प्रेम-पूज्य भावना बढ़ती ही जाय और वह हर एक कार्य अपनी सलाह ले कर करे-अपनी आज्ञानुसार करे इस प्रकार का सप्रेम आचरण सासु को बहू के साथ करना चाहिये।

बहूको हुशियार बनाना, यथार्थ गृहिणी गुण संपन्न बनाना यह सासु के ही हाथ की बात है। जिस प्रकार बहू को कजियारी, लड़ाकू, रातदिन लड़ाई झगड़ो द्वारा असभ्य वचन बोलने वाली बनाने से भावीकाल में सासु को दुःख मिलता है और सर्वत्र निन्दा होती है उसी प्रकार बहू को सुसंस्कारी, विनयवती, प्रेम-भक्तिमती एवं मधुर भाषिणी बनाने से सासु को भविष्य में सुख प्राप्त होता है और उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। जिस के साथ अपने पुत्र को जीवन व्यतीत करना है, जिस पर अपने प्रिय पुत्र के सुख दुख का आधार है और भावी काल में जिस के हाथ में अपने घर व्यवहार की वाग डोर आनेवाली है उस पुत्रवधू को प्रेम पूर्वक यथार्थ रीति से योग्य शिक्षण देने में सासु को सदा काल तत्पर रहना चाहिये। बहूको अपनी उत्तराधिकारी समझ कर सासुने अच्छा शिक्षण दिया होगा तो ही वह बहू अपने सासु ससुरे के नाम एवं उनके कुल को समुज्वलित कर सकेगी। यदि बहू पर प्रेम न रख कर उसे सारा दिन घर के मेहनतु काम धंधे में रोक कर घरके सुखका आधार है जिन पर इस प्रकार की घर सम्बन्धी अन्य महत्व पूर्ण बातों के जानने में उसे सर्वथा अनजान ही रक्खा जाय तो वह भविष्य काल में सासु को भी बहूके समान ही भयंकर हानि कारक है। इस लिये अपना तथा सारे कुटुम्ब का सुख इच्छने वाली सासु को चाहिये कि वह अपनी बाल बधू को, अपने घर में नयी ही आई हुई अपने

पुत्र की मुग्धा बहू को अपनी प्यारी पुत्री के समान प्रेमदृष्टि रखकर योग्य शिक्षण दे।

बहू का कर्तव्य भी सासु से कुछ कम नहीं है। भावी काल में घरके सर्वाधिकारपन का भार उसी के सिर पर पड़ने वाला है, इस लिये उसे भली प्रकार वहन करने के लिये प्रथम से ही बहूको पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। मात्र सहन शीलता के अभाव से ही बहुओं को कष्ट उठाना पड़ता है। यदि उनमें अपने पूज्य पति और सासु के एवं घर में रहनेवाली जेठानी तथा नणंद आदिके वचन सहन करने की आदत पड़ जाय, सासु नणंद और जेठानी वगैरह के आक्षेप पूर्ण वचनों को शरबत की घूंट के समान समता पूर्वक पी जाने की योग्यता आ जाय तो उन्हें पूर्वोक्त दुःख उठाना न पड़े। संसार में कहावत है कि एक चुप सौ को हरावे। यह बात सर्वथा सत्य है। मौन यह एक प्रकार का बड़ा भारी तप है,। परन्तु सहन शीलता के विना पूर्वोक्त प्रसंगों में मौन धारण करना भी उतना ही दुस्कर है कि जितना घर के चारों तरफ आग लग जाने पर उसे सुरक्षित रखना। इस लिये उस प्रकार के प्रसंगों में सहनशीलता बढ़ाने और मौन धारण करने के लिये अपनी जीभ पर संयम प्राप्त कर लेना सबसे अधिक श्रेष्ठ कार्य है। दूसरा मनुष्य अपने विषय में गन्दे शब्द बोल कर अपनी जीभ की खुजली मिटा रहा हो उस वक्त उसके गन्दे और कटुक वचनों की तरफ ध्यान न दे कर अपनी जीभ को पवित्र रखने के लिये चुप रहना चाहिये। यदि उन कड़वे और गन्दे शब्दों को सुनने की अपने कानों में शक्ति न हो, यदि उन वचनों के श्रवण करने से अपने हृदय का उफान न रुक सकता हो और यदि अपनी पवित्र जीभ को भी गन्दे और कटु वचन बोल कर अपवित्र करने का प्रसंग उपस्थित होता मालूम दे तो तुरन्त ही उस स्थान से उठ कर ऐसी जगह में जाकर जहाँ पर अपने हृदय को तपानेवाले वे गन्दे कटु वाक्य अपने कानों तक न पहुँच सकें किसी कार्य में मनोवृत्ति को लगा देना चाहिये। घर के कड़वे अनुभव वाले प्रसंग उपस्थित होने पर पूर्वोक्त रीति से सहन शक्ति के बढ़ाने और उसके भंग होने का समय आने पर

स्थानान्तर होकर उसे सुरक्षित रखने के प्रयत्न करने से घरमें बड़ा भारी फायदा होता है। अतः अशान्ति पैदा होने के समय अपनी पवित्र जीभ से दूसरे के समक्ष—सासु, नणंद, जेठानी, देवरानी आदि घरमें रहनेवाली स्त्रियोंके समक्ष आक्षेप पूर्ण, असभ्य, गन्दे तथा मार्मिक कटु शब्द न निकलने पायें इस के लिये बहूको सर्व प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये।

दुनिया में यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है। सूर्य अस्त होता है और रात्रि पड़ती है। किस लिये? सुन्दर सुहावना और नूतन प्रातःकाल होने के लिये। संध्या समय सूर्यविकासी कमलिनी सूर्यके वियोग से मुरझा जाती है और रात भरका दुःख सहन करती है। किस लिये? प्रातःकालीन सूर्यकी जीवन दात्री पवित्र कर-किरणों से अत्यानन्द प्राप्त करने—विकशित होने के लिये। मनुष्य भयंकर मृत्यु का दुःख सहन करता है, सो किस लिये? पुनर्जन्म पाकर नवीन तारुण्य प्राप्त करने के लिये। हरिश्चंद्र राजा को सर्वस्व दे डालने पर भी, पुत्र और पत्नी के बिक जाने पर भी भंगी के घर पर स्वयं बिक कर असह्य दुःख क्यों सहना पड़ा था? उसकी सत्य प्रियता के प्रभाव की दुनिया में छाप पड़ा कर यावत् चंद्र दिवाकर तक उसकी कीर्ति कायम रहने के लिये। प्रह्लाद को उसके जन्म दाता पितासे ही भयंकर कष्टों को क्यों सहना पड़ा था? उसके अन्तःकरण की अटल प्रभु-भक्ति का संसार में प्रभाव पड़ने और उस प्रकार की कठिन धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण होने से भक्त मनुष्यों के दिल में सदा के लिये उसके प्रति पूज्यबुद्धि पैदा होने के लिये। मीराबाई को अपने प्राणप्रिय पति देवसे ही अनेकानेक कष्ट क्यों सहने पड़े थे? उसके सच्चे प्रभु प्रेम के कारण संसार में उसके कीर्ति गीत गाये जाने के लिये। बस इसी प्रकार बहू को भी भावीकाल में घरके सर्वाधिकारपन का महासुख प्राप्त होने के लिये ही सासु तथा नणंद आदि के वचनों द्वारा कदर्थना सहन करनी पड़ती है। कुदरती कानून के अनुसार सुखके पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख अनिवार्य है। इस लिये बहू को चाहिये कि यदि सासु का बिलकुल

खराब स्वभाव हो तो अपनी सहन शीलता द्वारा अपने नम्रता, प्रेम, भक्ति विनय आदि सद्गुणों के द्वारा उसके स्वभाव को सुधारने का प्रयत्न करे।

वसन्तपुर में सर्व प्रकार की सुख सामग्री संपन्न एक ऐसा कुटुम्ब था कि जिस में रोज की रोज कलह होता था। घरके मालिक गुलजारी लालके एक ही कुंदनलाल लड़का था। घर में ऋद्धि सिद्धि की कुछ कमी न थी। घर वालों के लाडचाव के कारण कुंदनलाल की शिक्षण प्राप्त करने की वय बहुधा खेल कूद में ही व्यतीत हुई थी, इस लिये वह बिचारा साधारण ही पढ़ा लिखा था। गुलजारीलाल ने अपने पुत्र कुंदनलाल का विवाह एक अच्छे खानदान में किया था। पुत्र का व्याह कराये बाद बिचारा गुल-जारीलाल अधिक समय तक न जी सका। कुंदनलाल के विवाह के बाद लगभग छः महीने बीते होंगे कि गुलजारीलाल प्लेग की बीमारी में स्वर्ग सिधार गया। अब गुलजारीलाल के घर में उसकी पत्नी रुखी बाईका ही सर्वाधिकार चलता है। रुखी बाईको जन्म से ही कुछ शिक्षण नहीं मिला था और उसका स्वभाव भी मेथी पाक के समान जरा कडवा था, इस लिये वह सचमुच रुखी ही थी। कुंदनलाल की बहू कस्तूरी कुछ पढ़ी लिखी और शान्त स्वभाव होने से शान्ति प्रिय थी। गुलजारीलाल की मृत्यु के बाद कुछ महीनों तक तो इस कुटुम्ब में शान्ति रही, परन्तु निरंकुशा रूखीबाई ने अब अपनी पुत्र वधू पर अपने नाम के अनुसार रूखापन धारण कर घरका सर्व कामकाज कस्तूरी के ही सिर पर पटक दिया। ऐसा होने पर भी बिचारी कस्तूरी सासुजी की साबासी प्राप्त करने के लिये घरका तमाम कार्य बड़ी उमंग से करती। परन्तु सासु रूखीबाई की ओर से साबासी के बदले बिचारी कस्तूरी को फिटकार ही मिलती। ऐसा होने से कस्तूरी को बड़ा दुःख होता और उसका उत्साह भंग हो जाता। परन्तु करे क्या? घरका तमाम कामकाज कर रातको सासुजी के पैर दबाने पर भी सासुकी तरफ से साबासी के बदले झिड़कियां ही मिलती थीं। सासु रोजकी रोज नाहक ही कुछ न कुछ बात निकाल कर बहू के साथ लड़े बिना न

रहती। घरका काम करने में तो वह कस्तूरी को अपने घरकी एक दासी के समान समझती थी। कस्तूरीको जब वह किसी काम करने को कहती तो मुँह चढा कर धमका कर ही बोलती। घर में रूखीबाई की ही सर्व सत्ता होने से और उसका स्वभाव विचित्र होने से बिचारे कुंदनलाल को सब कुछ घरकी स्थिति जानते हुये भी यह हिम्मत न होती थी कि वह घरमें शान्ति रखने के लिये अपनी माताको कुछ कहे। हमेशाह के कलह से अब कस्तूरी का भी दिल बहुत ही उकता गया था, पर करे क्या उसे कोई उपाय ही नहीं सूझता था। प्रतिदिन जब सासु जरा जरासी बातों में उसकी कदर्थना करती हैं, मार्मिक वचनों द्वारा उस पर भयंकर प्रहार करती है उस समय हृदय संतप्त हो जाने से कस्तूरी के मुँह से भी एकाध वचन निकल जाता है। कस्तूरी का एक वचन भी सासुजी से नहीं सहा जाता। आप हजारों सुनाते हुये भी सासु एक सुनने को समर्थ नहीं होती।

इसी तरह के कलह क्लेश में जीवन विताते हुये इस कुटुम्ब को बहुतसा समय व्यतीत हो गया। इस कलह से तंग होकर कस्तूरी ने अपने प्राण विसर्जन करने का विचार कर लिया था। दैवयोग इतने में ही वसन्तपुर में एक परोपकारी महात्मा पधारे। गांव के तमाम स्त्री पुरुष महात्माजी को वन्दन नमस्कार करने तथा उनका धर्मोपदेश सुनने जाते थे। कस्तूरी का भी अन्तःकरण उस के माता पिता के सुसंस्कारों के कारण श्रद्धालु तथा कुछ कुछ धर्मप्रिय था। एक दिन अवसर पाकर कस्तूरी भी महात्माजी को नमस्कार करने एवं उनका धर्मोपदेश सुनने गई। महात्माजी के धर्मोपदेश की कस्तूरी के हृदय पर बड़ी अच्छी असर हुई। घर के रात दिन के कलह से जो उसके मन में आत्मघात करने का विचार निश्चय हुआ था महात्माजी का धर्मोपदेश सुनने से वह खराब विचार सर्वथा निकल गया और सहन शीलता ही मनुष्य के जीवन में सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, इसी सद्गुण से मनुष्य अपने शत्रु को भी मित्र बना सकता है यह उपदेश उस के हृदय पट पर लिखा गया।

सर्व मनुष्यों के चले जाने पर कस्तुरी ने महात्माजी को गुरु बुद्धि से भक्ति पूर्वक नमस्कार कर अपने प्रति महात्मा का महान् उपकार प्रगट करते हुये कहा कि प्रभो ! मुझे आपने नया जीवन प्रदान किया है। गृहक्लेश से दुखी हो कर मैंने अपने प्राण विसर्जन करने का निश्चय कर लिया था परन्तु आत्महत्या करने में भी भयंकर पाप है यह बात आज आप के उपदेश में सुन कर मैंने अपने पूर्वोक्त विचारों को पश्चात्ताप पूर्वक त्याग दिया है। अब आप मुझ अभागिन पर कृपा कर सहन शीलता प्राप्त करने का कुछ मंत्र बतलाइये। मैं सासुजी के सामने बोलना नहीं चाहती, तथापि जिस वक्त सासुजी मुझ पर मार्मिक वचन प्रहारों की वृष्टि करती है और मेरे निर्दोष माता पिताओं तक को गालियें सुनाती हैं उस वक्त मेरी सहनशक्ति कायम नहीं रहती। उस वक्त लाचार होकर मेरी जीभ से भी एक दो वचन धीरे से निकल ही जाते हैं और उससे फिर घर में बड़ा भयंकर महाभारत मचता है तथा उस महाभारत के कड़वे फल घर के छोटे बड़े सभी मनुष्यों को चाखने पड़ते हैं। अतः इस गृहकलह रूप भयंकर दुःख से बचने के लिये कृपा कर आप मुझे कोई मंत्र दीजिये।

महात्माजी बोले—बेटी ? तुम्हारे गृहकलह को मिटाने के लिये सब मंत्रों में एक यही महामंत्र है कि जिस वक्त तुम्हारी सासु तुम्हारे साथ लड़े, तुम्हें गालियें सुनावे उस वक्त तुम अपनी दो अंगुल की जीभ पर संयम रक्खो, तुम एक भी शब्द अपनी जबान से मत निकलने दो।

कस्तूरी बोली—गुरुदेव ! यह तो मैं सब कुछ समझती हूँ परन्तु उस वक्त उस क्रोधरूप आग के धधकते समय मुझसे मेरी जीभ पर संयम नहीं रहता यह मेरी मानसिक कमजोरी है। मैं इस कमजोरी को दूर कर सहन शीलता को अपने जीवन में प्रथम स्थान देना चाहती हूँ, इस लिये इस के लिये आप मुझे कोई मंत्र बतलाइये आप सच्चे कृपालु हैं।

स्त्रियों के स्वभाव में कुदरती ही भोलापन और श्रद्धालुता रहती है। कस्तूरी की अपनी आत्मसुधारना के लिये अति आतुरता देख

कुछ विचार कर महात्माजी बोले—अच्छा बेटी कल तीसरे पहर के समय एक गिलास में ताजा पानी लेकर आना मैं उस पानी को मंत्रित कर के तुम्हें उसके सेवन का विधि बतला दूँगा।

दूसरे दिन तीसरा पहर होते ही कस्तूरी एक गिलास ताजे पानी का भरकर झट महात्माजी के पास पहुँची। महात्माजी ने पानी का गिलास लेकर ॐ फुट फुट स्वाहा इत्यादि प्रगट मंत्राक्षर बोल कर उस पानी को मंत्र दिया और उसके सेवन का विधि बतलाया कि जिस वक्त घर में लड़ाई प्रारंभ हो, सासु गालियों का बरसात बरसाना शुरू करे उस वक्त इस पानी का घूँट भर कर कोने में बैठ जाना, जब तक सासु लड़ा करे, जब तक वह क्रोध में आकर तुम्हें गालियाँ दिया करे तब तक इस पानी की घूँट को मुँह में ही रखना। यदि सासु के लड़ते समय तुम उस पानी की घूँट को पी जाओगी या कुल्ला कर दोगी तो घर में तुम पर सब की अप्रीति हो जायगी और तुम्हारा दुःख जिन्दगी पर्यन्त भी दूर न होगा। जिस वक्त इस मंत्र के प्रभाव से थोड़ी ही देर में सासु शान्त हो जाय उस वक्त धीरेसे बाहर जाकर इस पानी का कुल्ला कर देना। इस मंत्रा का इस प्रकार विधि सेवन करने से तुम्हारे घर का कलह दुःख लगभग पंद्रह दिनों में ही नष्ट हो जायगा और तुम्हारा कुटुम्ब सुखशान्ति का अनुभव करने लग जायगा।

अब घर में जब सासु रूखी अपने रूखे स्वभाव के अनुसार कस्तूरी पर गालियों की वृष्टि करना शुरू करती है उस वक्त अलमारी में हिफाजत से रक्खे हुये उस गिलास को उठा कर कस्तूरी पानीका घूँट भरके घरके कोने में बैठ जाती है। सासुजी के मार्मिक वचन प्रहारों के घाव से उस का हृदय तो उफनता है परन्तु गुरुजी के वचन का पालन करने तथा मंत्रका विधि पालन करने के लिये वह पानीको पी नहीं सकती और न ही कुल्ला कर सकती थी। सासु गालियें बक कर जब थक कर शान्त हो रहती तब कस्तूरी धीरे से उठ कर उस के मुँह में रहे हुये पानी के घूँटको बाहर थूक आती। लड़ाई के समय जब इस प्रकार मंत्रका विधि पालन करते कस्तूरी को आठ दश दिन व्यतीत हो गये तब सासुको एक दिन

विचार पैदा हुआ कि बहू अब कुछ सुधरी मालूम देती है। बहुत दिनों से मेरे सामने कभी भी कुछ उत्तर नहीं देती। मैं कितनी गालियाँ सुनाती हूँ, कितने कड़वे शब्द बोलती हूँ तथापि वह मौन धारण किये बैठी रहती है। मालूम होता है कि इसने अब अपना स्वभाव ठंडा बना लिया है। यदि अब भी मैं इसके साथ लड़ा ही करूंगी, इसे गालियाँ दिया करूंगी तो पडोसन मेरा ही गुन्हा समझ कर मेरी निन्दा करेंगी। इस लिये अबसे मुझे भी इसके साथ ऐसा व्यवहार करना ठीक नहीं। बिचारी घरका काम तो सब करती ही है, रातको मेरे पैर भी दबा जाती है, मैं इसके साथ इतना लड़ती हूँ, इतना धमकाती हूँ तो भी बिचारी मेरी सेवा करनेसे नहीं चूकती। अपने सिवाय इस विचारी का है भी कौन यहाँ पर ?

इस प्रकार की भावना आते ही रुखी के भीतर से श्वास निकल गई। अपनी बहू के प्रति अब उसका अन्तःकरण स्निग्ध बन गया।

पूर्वोक्त प्रयोग से कस्तूरी के समान सुगंधित सहन शीलता के सद्‌गुण को प्राप्त कर कस्तूरी ने अपनी सासु के स्वभाव को बदला कर अपने कुटुम्ब में सदा के लिये शान्ति सुखका प्रसार कर लिया।

जिस घर में या जिस कुटुम्ब में कस्तूरी के समान बहू हो उस घर में कलह संबन्धी दुःख नहीं रह सकता। इस दृष्टान्त का सार यही है कि ज्यों बने त्यों घरको सुधारने के लिये, कुटुम्ब को सुखी बनाने के लिये बहुओं को सहन शीलता बढ़ानी चाहिये। सहनशील मनुष्य ही अपने से बड़े मनुष्य की भूलको उसे भूल तया स्वीकार करा सकता है। सहन करनेवाले मनुष्य की ही घरमें और बाहर प्रशंसा होती है। लड़ने—झगड़ा टंटा करनेवाला मनुष्य दूसरे शान्तिप्रिय मनुष्यों को सर्प विच्छु के समान भयानक लगता है। कटु स्वभाव वाला, बात बात में लड़ाई झगड़ा करनेवाला, जरासी बात पर ही दूसरों को मार्मिक वचन बोलने वाला, मुखसे नीच शब्द बोल कर दूसरों के दिल को दुखाने वाला और अपनी मिथ्या मान बड़ाई में चूर हो कर दूसरों को तुच्छ समझने वाला एवं दूसरों को अपने से हलका समझ कर उनके सामने

त्यौरी चढाये रखने वाला तथा अपने चिड़ चिड़ेपन के कारण हर वक्त मुँह चढाये रखने वाला मनुष्य दूसरों के लिये डरावने पशुके समान हो जाता है। इस लिये घरमें रहने वाले मनुष्यों को अपने स्वभाव में पड़ी हुई खराब आदतों को त्याग कर प्रसन्नता तथा सहनशक्ति को बढ़ाना चाहिये और प्रेम तथा युक्ति पूर्वक ही घर के बड़े मनुष्यों की भूल सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। जो कार्य सत्ता और जबरदस्ती से नहीं हो सकता वह काम प्रेम और युक्ति से हो सकता है। बहुतसी दफा मनुष्य सत्ता के गर्वसे मदान्ध बन जाता है, उस समय उसे ठिकाने लाने के लिये उसके नीचे रहनेवाले मनुष्यों को प्रेम पूर्वक युक्ति से काम लेना चाहिये, ताकि उसे स्वयं ही अपनी भूल मालूम हो जाय। इस बात के बारे में नीचे लिखे हुये दृष्टान्त से सासु बहु दोनों को ही अपने अपने कर्तव्य के विषय में उचित बोध मिल सकता है।

मिरजापुर में मनसुखराय का बड़ा कुटुम्ब गिना जाता था। मनसुखराय बड़े पुण्यशाली पुरुष थे। उन्होंने साठ वर्षकी उमर में कुटुम्ब में अपने पोतों पड़पोतों तक का सुख देखा था। उनका कुटुम्ब मिरजापुर में पहिले नम्बर गिना जाता था। यह कुटुम्ब जैसा खानदानी था वैसा ही सर्व प्रकार से सुखी भी था। मनसुखराय की पत्नी स्वभाव से शान्त और भद्रिक थी। लिखी पढी न थी क्यों कि उसके समय स्त्री शिक्षण का अभाव था। अपठित होने पर भी उस में आज कलकी स्त्रियों के समान अभिमान या कलह प्रियता की गन्ध न थी। वह अपनी पुत्र तथा पौत्र वधुओं को देख कर अत्यन्त खुशी और सुखी होती थी। वह अपने समान अन्य किसी को सुखी न समझती थी। उसने इस घर में आकर कभी भी दुःख न देखा था। अर्थात् उसकी सारी जिन्दगी सुखमें ही व्यतीत हुई थी। घर के सर्व स्त्री पुरुषों की उस पर पूज्य बुद्धि रहती थी। उसके बड़े लड़के तनसुखराय की बहू विजया जरा ईर्षालु स्वभाव की थी। उससे किसी की भी उत्कर्षता-मान बड़ाई न देखी जा सकती थी। वह अपने ईर्षालु स्वभाव के

कारण अपनी पूज्य सासु अमरी के उत्कर्ष को भी न देख सकती थी। वह स्वयं सन्मान इच्छती थी। बाबा मनसुखराय के जीते तक तो अमरी का घरमें किसीने भी वचन न उथला था। परन्तु उनकी मृत्यु के बाद बुढापे में अब कुछ कुछ अमरी के जीवन आकाश में दुःख के बादल घिरने लगे। अमरी को और किसीकी भी ओर से कुछ दुःख न था, उसके हरेभरे कुटुम्ब में मात्र उसके बड़े पुत्र तनसुखराय की बहू विजया अपने निष्कारण ईर्षालु स्वभाव से बिचारी बुढिया सासु को तंग किया करती थी। मनसुखराय के स्वर्गवास के पीछे घरमें अमरी मा का पद अपने आप ही विजयाने ले लिया था। विजया भी अब सासु बन चुकी थी, उसके तीन पुत्र और दो पुत्री थीं। दो लड़कों का व्याह हो चुका था। उसके बड़े लड़के चैनसुखराय की बहू चकोरी बड़ी चतुरा तथा विनयवती थी। इस लिये चकोरी पर विजया की कुछ मेहरबानी रहती थी। घर में सब औरतों में स्वयं बड़ी होने के कारण तथा पुत्रों की बहुओं की सासु बनने से घरका सर्वाधिकार अब विजया को ही मिल चुका था। विजया यों तो घरमें सबके साथ साधारण रीतिसे ठीक व्यवहार करती, परन्तु अपनी सासु अमरी के प्रति द्वेष उसको अवश्य रहता। घरमें सर्वाधिकार पद प्राप्त करके विजया ने अपनी सत्ता को दूषित करना शुरू किया अब वह बात बात में सासुजी को झिड़कने लगी। बिना प्रयोजन भी वह अपनी सासु अमरी को अपमान के वचन सुना देती है। बुढ़िया अमरी विजया के स्वभाव को प्रथम से ही समझती थी इस लिये वह बिचारी कुछ भी न बोलती। बहूके अपमान जनक वचनों को शान्ति से सुन लेती। अमरी यह भी समझती थी कि मेरा टुकड़ा अब बहुओं के ही हाथ में है, इस लिये वह बिचारी ज्यों त्यों करके अपने अन्तिम दिनों को व्यतीत करती थी। न जाने विजया का अपनी अमरी सासु के साथ कुछ पूर्व जन्मका वैरभाव ही था क्या! वह अपने दुष्ट स्वभाव से बिचारी बुढिया सासु को खराब वचनों द्वारा अनेक प्रकार से दुःख देते हुये भी तृप्त न होती थी। दैवयोग बिचारी अमरी बीमार हो गई।

यह तो हम पहिले ही कह चुके हैं कि घरमें अब सर्व सत्ता विजया की ही चलती थी और वही अमरी को अपनी दुश्मन समझती थी। ऐसी परिस्थिती में चार पाई पर पड़ी हुई विचारी बीमार अमरी की सार संभार कौन करे? दवादारु की तो बात ही दूर रही उसे खाने तक को पूरा नहीं मिलता। अमरी विचारी अपनी पूर्व स्थिति के सुख याद करके खाट में पड़ी पड़ी रोया करती। वह चाहती कि प्रभु मुझे मृत्यु दे। जन्म से सर्व प्रकार के सुख वैभव भोगने वाली को बुढापे में यह दुःख!! बीमार को थाली में न खिलाना चाहिये बहुओं के सामने यों कह कर कुटिला विजया ने पचीस तीस मट्टी के कूंडे मंगवा लिये और खाने के समय दुपहर को रातका बचा हुआ और रात को दुपहर का बचा हुआ ठंडा भात कूंडे में डाल कर अमरी को देने लगी। कितने एक दिन अमरी के इसी प्रकार की दुःख स्थिति में व्यतीत हुये। विजया साफ न करा कर अमरी के जूंठे कूंडे को बाहर फेंकवा देती थी। कुछ दिन इसी तरह बीत जाने पर विजया ने यह काम अपनी पुत्र वधू चकोरी को सौंप दिया। चकोरी सचमुच ही बड़ी चकोर तथा दयालू हृदय की थी।

सासु की आज्ञा से चकोरी ने अपनी वृद्धा सासु की सासु को कूंडे में डाल कर बासी ठंडा भात खिलाना और उस जूंठे कूंडे को बाहर फेंक देने का काम अपने जिम्मे ले लिया। दयालू स्वभाव वाली चकोरी के दिलमें अपनी पूज्या बड़ी सासु अमरी के प्रति भक्ति और दया भरी थी, परन्तु खराब स्वभाव वाली अपनी सासु विजया के सामने उस विचारी को इस विषय में कुछ बोलने तक का भी सामर्थ्य न था।

अपनी सत्ता में आये हुये काम में चकोरी ने अपने चकोर स्वभाव के अनुसार अन्दर ही अन्दर परिवर्तन कर डाला। सासु विजया को मालूम न पड़े उस प्रकार की रीति से वह कूंडे में गरम खाना रख कर ऊपर जरा से बासी ठंडे भात डाल कर अमरी को खिलाती। अमरी को पच सके उतना घी वगैरह भी चकोरी उस ताजे भोजन में डाल देती है। मालूम पड़ने से उसे सासु की तरफ से झड़की

न मिले इस डरसे ही वह उस ताजे भोजन पर जरासा ठंडा भात डाल लेती है, सो भी अमरी के पास जाकर उसे एक तरफ निकाल देती है और अमरी को गरमागरम ताजा भोजन खिलाती है। वह रोज की रोज अब अमरी के जूंठे कूंडे को सासु की आज्ञानुसार बाहर नहीं फैंकती। हमेशाह जरा साफ करके कूंडों को घरके एक कोने में इकट्ठे करती जाती है।

दैव योग एक दिन विजयाने घरके कोने में कूंडों का ढेर लगा देखा। उसने चकोरी से पूछा कि बहू! तूने ये कूंडे बाहर क्यों नहीं फेंके? घर में किस वास्ते इन्हें इकट्ठे किया है? चकोरी नम्रता से बोली—सासुजी काम पड़ने पर फिरसे पैसे खर्चने न पड़ेंगे इन्ही से काम चल सकेगा, इसी लिये मैंने इन्हें बाहर न फैंक कर घर में रख छोड़ा है।

विजया—अरे भोली बहू! भला इन कूंडों का घर में क्या काम पड़ेगा?

चकोरी—काम क्यों न पड़ेगा, सासुजी! अपने घर में कुल परंपरा से चली आती हुई रीत तो मुझे भी पालन करनी पड़ेगी न?

विजया-(आश्चर्य में पड़ कर) कुल परंपरा से चली आती रीत!! सो कौनसी रीत है?

चकोरी—यही कि जो अपने घर में अभी चलती है।

विजया—मैं समझी नहीं सो कौनसी रीत? मुझे बतला तो सही अपने घर में कौनसी रीत चली आती है जो इस समय भी चलती है।

चकोरी—सो यही रीत कि इस अपने घरका जो यह रीत रिवाज चला आता है कि बुढ़ापे में सासुजी को मट्टी के कूंडे में बासी और ठंडा भात खिलाना। जब आप थोड़े दिनों बाद बुढ़िया होओगी तब मुझे भी तो इस कुलका यह रीति रिवाज अकसर पालना ही पड़ेगा न? उस समय नये कूंडे मंगवाने में पैसे खर्चने की अपेक्षा ये क्या कोई बुरे हैं? उस समय आपके लिये ये ही काम आ-जायेंगे।

चकोरी का शिक्षा पूर्ण नम्र वाक्य सुनते समय विजया के शरीर में सन्नाटा सा छा गया। ये क्या कोई बुरे हैं उस समय आप के लिये ये ही काम आजायेंगे, यह वाक्य विजया के हृदय को चीरता चला गया। चकोरी के अन्तिम वाक्य से घर की मालकनी सासु विजया को दुःख तो उतना ही हुआ था जितना कि साथ ही में एकदम पचास विच्छुओं का डंक लगने से होता है, परन्तु अपने ही दुस्कृत्य से दबी हुई विजया कुछ भी उत्तर न दे सकी। मारे लज्जा के उसका मुँह नीचा हो गया। वह कुछ देर तक सोच विचार कर बोली बहू ! यह हमारे घरका परंपरागत रीत रिवाज नहीं है, इस में मेरी ही भूल है। मैं आजसे इस अपनी भूलको सुधार लेती हूँ। अच्छे घरों में तो ऐसा होना लांछन लगाने वाला है। सासु की सेवाभक्ति करने में ही अच्छे कुटुम्ब की शोभा है। मैं आज तक अज्ञानता के कारण भूल में पड़ कर अपने कर्तव्य से विपरीत कर रही थी, तूने मुझे अच्छा बोध दिया। सासुजी से अपने अपराध की क्षमा मांग कर अबसे मैं स्वयं उनकी सेवा किया करूंगी।

इस प्रकार चकोरी की चतुरता भरी टकोर से उसकी सासु विजया का जीवन ही बदल गया, उसने अपनी सासु की प्रतिपालना करने का अपना पवित्र कर्तव्य संभाल लिया। यह तो अटल सिद्धान्त ही समझना चाहिये कि जिसने अपनी सासु की सेवा की होगी वही सासु बन कर बहू से अपनी सेवा करा सकेगी। अन्यथा जैसा उसके साथ बरताव किया होगा वैसा ही अपने साथ होगा।

सद्गुणी सासु नीचे लिखे हुये दृष्टान्त से भली प्रकार बोध ले सकती है। उज्जैन में एक अच्छे खानदानी कुटुम्ब में चंदाबाईने अपने बड़े लड़के की बहूके साथ हमेशाह कलह क्लेश कर करके उसे ऐसी बना दिया था कि अब वह सामने होकर उल्टा सासुका ही नाकों दम कर देती थी। चंदाबाई को अब घर के कलह क्लेश से पीछा छुड़ाना मुस्किल हो गया था। उसने पहिले तो अपनी हकुमत चलाने के लिये बहू के साथ लड़ना झगड़ना, उसे

गालियें देना, घरका सर्व कामकाज करते हुये भी उसे धमकाते ही रहना और उसके माबापों तकको कोसना शुरू किया था। किन्तु कुछ दिनों तक तो नवीन बहूने सब कुछ सहा, पर जब वह स्वयं सासु के गुण सीख गई तब तो फिर सासु को ही उल्टा तंग करने लगी और वैसा करके अपना बदला उतारने लगी। अब तो सासु ही इस घर के लड़ाई झगड़े से तंग हो गई थी।

चंद्राबाई एक दिन पड़ोस में रहनेवाली भानुमती के घर गई। वहाँ पर भानुमती के पुत्र की बहू शारदा का विनय गुण देख कर बोली–भानुमती! तुमने शारदा का प्रेम किस प्रकार प्राप्त किया है?

भानुमती—बहिन तुमने यह बहुत ही अच्छा और आवश्यक प्रश्न किया, बहिन! प्रेम ही गृहस्थाश्रम का भूषण और जीवन है। प्रेमसे ही सारे कुटुम्ब में सुख शान्ति रह सकती है, प्रेमसे ही कुटुम्ब के मनुष्य अपना जीवन मधुर बना सकते हैं। बिना प्रेम संसार में सुख ही कहाँ है? जिस घर में परस्पर प्रेम नहीं वह घर ही काहेका? वह तो एक प्रकार की धर्मशाला या मुसाफरों-के रहने की सराय के समान हैं। बहिन! गृहस्थाश्रम में प्रेम बिना आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। बालबच्चों की प्यारी बालक्रीडायें, घरमें स्त्रियों का सरल आनंद भरा हास्य, पतिपत्नी का एक दूसरे के सुख के लिये अपना निजी स्वार्थ त्याग, यह सब कुछ प्रेम पर ही आधार रखता है। परन्तु खेदकी बात है कि आज अपने इस पवित्र भारत देशमें वह सुख दायक पवित्र गृह प्रेम नष्ट प्रायः हो गया है। अपने पवित्र देशमें ऐसे कितने कुटुम्ब हैं जो गृह प्रेमसे सुख शान्ति और आनन्द भोगते हैं? अपने देशमें ऐसे कितने पतिपत्नी हैं जो हरेभरे कुटुम्ब में रह कर खुले दिलसे परस्पर अपनी भावनायें प्रगट कर सकते होंगे?

चंदाबाई—सच बात है बहिन तुम जो कहती हो सो सही है, प्रेम ऐसी ही वस्तु है। परन्तु साधारण रीतसे वह अधिक समय तक टिक सके सो बनना मुस्किल मालूम देता है। जब पहिले पहिल बहू घर में आती है तब तो सासु उसे बहुत चाहती है और

दो तीन महीने तक उनमें परस्पर अच्छा प्रेम रहता है, परन्तु फिर धीरे धीरे वह पहिली भावना और चाव नष्ट होता जाता है। अन्त में वह प्रेम कुछ दिनों बाद द्वेष में बदल जाता है। मैं चाहती हूँ कि हमारे घरमें भी हम सासु बहु में ऐसा ही प्रेम रहे पर नहीं रहता, क्या किया जाय? कुछ ऐसा साधन बतलाओगी कि जिससे गृह-प्रेम हमेशाह कायम रह सके?

भानुमती—बहिन! प्रेमका आधार विश्वास पर है, यदि बिश्वास में जरा भी खामी पड़े तो तुरन्त ही प्रेमका बन्धन ढीला पड़ जाता है। आज दुनिया में जितना व्यापारादि व्यवहार चल रहा है उस का मूल आधार विश्वास ही है। संसार में कोई भी काम विश्वास विना नहीं हो सकता। विश्वासी मनुष्य दूसरों के सद्गुण तरफ ही देखता है। मनुष्य मात्र में अनेक त्रुटियें होने पर भी अनेक सद्गुण भी होते हैं। विश्वासी मनुष्य दूसरे की त्रुटिओं को न देख कर उनमें रहे हुये अनेकानेक सद्गुणों को देखता है और उनका अनुभव करता है। विश्वासी मनुष्य आशावादी एवं सुखवादी होता है, संसार में विश्वास घातके हृश्य देखने पर भी वह निराश नहीं होता। उसमें क्षमाका भाव अधिक होता है। वह एक दफा नहीं किन्तु अनेक दफा अपने सम्बन्धियों एवं मित्रों का अपराध होने पर भी उन्हें अपने विश्वास के वृक्षकी छायामें से दूर नहीं करता। अन्तमें तो संसार में सद्गुणों की ही विजय होती है। संसार में दुर्गुण चिरस्थायी नहीं रह सकता। दुनिया में सदा सद्गुणों की ही सुगन्धी फैलती है। बहिन! क्षमाका ऐसा अच्छा परिणाम आता है कि कदाचित् मित्र या अपना कोई सम्बन्धी किसी कारण विश्वास घाती भी बन गया हो तो अपने क्षमा सद्गुण से वह स्वयं लज्जित हो कर उसके किये हुये दुस्कृत्यों पर पश्चात्ताप करता हुआ विश्वासी के सद्गुणों पर मोहित हो जाता है। जो मनुष्य सद्गुणों की स्थिरता पर विश्वास रखता है वह अपने इर्द गिर्द प्रेमकी सुगन्ध फैला सकता है और उससे वह अनेकानेक मनुष्यों का मन अपनी ओर खींच सकता है। ऐसे सद्गुणी मनुष्य के साथ मिलने में भी मनुष्य अपना गौरव समझते हैं।

चंदाबाई—परन्तु ऐसे मनुष्य तो बहिन! संसार में बहुत ही थोड़े होते हैं।

भानुमती—हाँ ऐसे मनुष्य थोड़े होते हैं तभी तो चिरस्थायी प्रेम का इतना अभाव देख पड़ता है न! आज तो चारों तरफ ऐसे ही मनुष्य विशेष देखने में आते हैं कि जिनका किसी पर भी पूर्ण विश्वास नहीं होता। संशयात्मा सदा काल प्रेम धन से वंचित रहता है। संशयी मनुष्य सदा दुःखवाद के ही सिद्धान्तों को मानता है। वह समझता है कि संसार में सब मनुष्य झूठे और कपटी हैं। वह अपने सगे संबन्धिओं के व्यवहार में भी कोई खराब प्रयोजन ही देखता है। यदि उसे कोई अच्छा मनुष्य प्रेमसे या आदर भावसे बुलावे तो वह यही समझता है कि वह मनुष्य किसी प्रकार का अपना खराब प्रयोजन या स्वार्थ साधने के लिये ही मेरी खुशामद करता है। ऐसे मनुष्य की मित्रता दूधके उफान के समान ही अचिरस्थायी होती है। बहिन! तुमने औरंगजेब का नाम तो सुना ही होगा।

चंदाबाई—हाँ हमारे बड़े लड़के मुरारीलाल को इतिहासिक पुस्तकें पढ़ने का शौक है, उसीसे मैंने मुसलमान बादशाह औरंगजेब के बारेमें सुना है कि वह हिन्दुओं को बड़ा सताता था।

भानुमती—सो सच है, उसके विषय में कहा जाता है कि वह बिना मित्र मृत्युका ग्रास बना। वह हिन्दुस्तान में एक महान राजा था, परन्तु संसार में उसके जितने मित्र बने अन्तमें उन सबको उसका दुश्मन बनना पड़ा।

चंदाबाई—भला अन्त में उसके मित्रों को दुश्मन क्यों बनना पड़ा इसका क्या कारण?

भानुमती—बहिन! इसका कारण यही कि उसका किसी पर भी विश्वास न जमता था। वह अपने सगे सम्बन्धियों को भी शंका की ही दृष्टिसे देखता था। न मालूम ऐसे मनुष्यों को अपनी आत्मा पर भी विश्वास जमता होगा या नहीं। बहिन! गीताजी में भी कहा है कि—

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

इस श्लोक का तात्पर्य यही है कि संशयात्मा-अविश्वासी मनुष्य-का विनाश हो जाता है और उसे इस लोक तथा परलोक में भी सुख नहीं मिलता। अब तुम स्वयं विचार लो संसार के व्यवहारों में विश्वास की कितनी जरूरत है। तुम इस बात पर अपने आप ही सोच विचार करो कि जो गृहस्थाश्रम संसार म सर्व आश्रमों का आधार ह उसे चलाने के लिये पूर्वोक्त गुणकी कितनी आवश्यकता ह? गृहस्थाश्रम प्रेमका शिक्षणालय है। यदि प्रेमका रक्षण रहे तो ही गृहस्थाश्रम सुरक्षित रह सकता है और गृह प्रेमका रक्षण विश्वास द्वारा ही हो सकता है। एक घंटेका अविश्वास एक वर्षके प्रेमको नष्ट कर डालता है। कदाचित् किसी घरमें कुटुम्ब के मनुष्यों में परस्पर अधिक अविश्वास का प्रारम्भ होता हो तो उस कुटुम्ब का इसमें ही श्रेय है कि उस घरके मनुष्यों को घर छोड़ कर किसी धर्मशाला या सराय में जा बसना चाहिये। क्योंकि मनुष्य को अविश्वास से जितना दुःख निपजता है उतना और किसी से वैसा दुःख प्रायः नहीं निपजता।

चंदाबाई—बहिन! तुम जो कहती हो सो सब ही सच है। आजकल जो हमारे घरों में जरा जरासी बातों में अविश्वास किया जाता है उससे कभी कभी तो इस प्रकारका हृदय बल जाता है, मन को इतना दुःख होता है कि गृहस्थाश्रम में नहीं किन्तु मानो हम घोर नरक कुंडमें ही न रहते हों। बहिन! परसों की ही बात है कि हमारे घर में मुरारीलाल की बहूने अपने पतिके लिये खीर रांधी थी। बहूको बाहर जाना था तो वह खीर को ताकमें रख कर ताला लगा गई, क्योंकि उसे शक था कि पीछे मैं खा न जाऊं। अरे दुष्टा! क्या मैं घरकी मालकनी होकर भी तेरी जरासी खीर को चुरा कर खाऊंगी? (इतना बोल कर चंदा क्रोध से रोने लगी)

भानुमती—बहिन! हिम्मत रक्खो, क्रोध करने से क्या यह दोष दूर हो सकेगा? जो हम उसके सद्गुण की ही ओर नजर रक्खें

तो संशयरूप प्रचंड पवन से प्रेमरूप रोहणाचल कदापि कंपित नहीं हो सकता। मैं अपने घरमें सदा काल इस बात पर ध्यान रख कर वरतती हूँ जिससे हमारी बहू शारदा के मनमें क्षण भरके लिये भी संशय को स्थान न मिले। तुम जानती ही हो कि सासु बहूकी लड़ाई सैकड़ों वर्षों से मशहूर ही है, बल्कि इसके लिये दुनिया में यह कहावत भी प्रचलित हो गई है कि जब कोई दो औरतें लड़ती हों तो लोग कहते हैं कि ये तो ऐसी लड़ती हैं कि जैसे कोई सासु बहू लड़ती हों। कितनी एक औरतों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरों की लड़ाई देख कर खुशी होती हैं। ऐसी औरतें दूसरों की लड़ाई देख कर खुश होती हैं इतना ही नहीं बल्कि वे अपने मन में दो घड़ी आनन्द मनाने के लिये पड़ोस के घरोंमें लड़ाई की दीयासलाई लगाने का प्रयत्न करती रहती हैं। पड़ोसनों को परस्पर लड़ा मारने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। यह प्रयोजन सिद्ध करने के लिये वे प्रथम तो एक दूसरे के बीच शक पैदा करने का जहरी बीज बोती हैं।

चंदाबाई—ऐसा कोई उपाय है जिससे शक पैदा ही न हो सके?

भानुमती—हाँ है और सासु ही उस उपाय की विशेषतः जवाबदार हैं। जब पहिले पहिल ही बहू घरमें आती है तब उसे अपने पतिके सगे संबन्धिओं का बहुत ही कम परिचय होता है। उसे अपने पड़ोस में रहने वाली स्त्रियों के स्वभाव का ज्ञान बिलकुल नहीं होता। परन्तु बड़ी उमर की होने के कारण तथा बहुत से वर्षोंका अनुभव होनेसे सासुको तो अपने आसपास रहने वाले घरके और बाहर के मनुष्यों के स्वभाव का अच्छी तरह से परिचय होता है। व्याह होकर जब पहली ही दफा शारदा हमारे घरमें आई थी उस वक्त मैंने यही विचार सामने रख कर काम लिया था। मैंने बहुत कुछ अनुभव करके यह विचार निश्चित किया कि सासु, बहूकी मार्ग-दर्शक है। जिस प्रकार एक हितेच्छु मार्ग-दर्शक मनुष्य अनजान मनुष्यों को सीधे सरल मार्गसे ले जाता है, वैसा ही कर्तव्य बहूके प्रति सासुका है, यह समझ कर मैंने प्रथम से ही शारदा को सावधान कर दिया। जो औरतें दूसरों के छिद्र

देखने के लिये ही या सासु बहू के दूषण देखने के और कुछ अवसर मिल जाने से सासु बहूमें शक पैदा करने के प्रयत्न करने तथा दूसरों के घरका भेद भाव जानने के लिये ही दूसरों के घर पर आया जाया करती हैं और जिनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि दूसरों के घरकी जरा सी भी बात जान कर उसे रजकी गज बना कर दूसरी औरतों में या घरों में उस बात का विज्ञापन बाँटती फिरा करती हैं वैसी खराब स्वभाव वाली औरतों को मैंने अपने घरमें आनेसे मना कर दिया और शारदा को भी उनके स्वभाव का परिचय दे दिया। जब कभी बहूके सामने मेरे मुखसे कोई झूठी बात निकल जाती थी उस वक्त मैं अपने अपराध को बहूके सामने प्रगट कर देती थी। क्यों कि जिस प्रकार प्रेमका आधार विश्वास पर है उसी प्रकार विश्वास का सत्य पर आधार है। मेरे ऐसे बरताव से बहूका आचार विचार भी मुझसे छिपा न रहता था। वह अपने मनकी सब बातें मुझसे कह देती। यदि उससे कभी कुछ अपराध हो जाता—कुछ घरका काम काज बिगड़ जाता तो वह सरल हृदय से उसी प्रकार अपने कसूर को मेरे सामने प्रगट कर देती जैसे कि अपनी माकी लाडली एक लड़की अपने कसूर—अपराध माके समक्ष कह देती है। यदि शारदा में मैं कोई प्रकार की त्रुटि देखती तो उसे प्रेम पूर्वक सुधारने का प्रयत्न करती, परन्तु दूसरों के समक्ष वह बात कदापि नहीं कहती। मेरे इस प्रकार के बरताव का परिणाम यह हुआ कि आज दोनों सासु बहुओं में परस्पर पूर्ण विश्वास और प्रेम कायम है।

चंदाबाई—तो क्या विश्वास और प्रेम एक ही वस्तु है?

भानुमती—नहीं, सो तो मैंने प्रथम से ही कहा है कि विश्वास प्रेमका आधार है और वह अत्यावश्यक है। विश्वास रूप आधार स्थिर हुये बाद अन्य आवश्यकीय बातों की ओर लक्ष देना बहुत ही सरल तथा सुगम हो जाता है। प्रथम तो मैं बहूके पिहर वालों को सन्मान और आदर सत्कार की दृष्टिसे देखती हूं। मैं कदापि उनकी त्रुटिओं—खामिओं पर कटाक्ष नहीं करती।

चंदाबाई—(चकित होकर) क्या सच कहती हो ? मैंने तो आज कल ऐसी कोई भी सासु नहीं देखी जो बहूके पिहरवालों–उसके मा बापों पर कटाक्ष नहीं करती हो। कितनी एक बहूकी माको फूवड़ समझ कर उसकी मस्करी करती हैं। कितनी एक सासु बहूके पिताकी गरीबी पर कटाक्ष करती हैं और कितनी एक बहूकी बहिन की मूर्खता पर हँसती हैं।

भानुमती—बहिन ! वे ऐसा करती हैं तभी तो बहुओं का उनके प्रति प्रेम नहीं होता। मैंने तो आज तक बराबर अपने नियमों का पालन किया है। मैं यह अच्छी तरह समझती हूं कि पूर्वोक्त वर्तन प्रेमके लिये बड़ी जहरीली असर करता है। प्रेमको तो प्रेम ही अपनी ओर खींच सकता है। क्या बहूमें प्रेमभाव नहीं होता? जब वह जन्मके घरको छोड़ कर पहिले ही ससुराल में आती है क्या उस समय वह अपने प्यारे माता पिताका कुदरती प्रेम भूल जाती है ? नहीं ऐसा कदापि नहीं होता। मैं यह विचार ध्यानमें रख कर ही आज अपनी समदन को अपनी प्रियसखी के समान बना सकी हूँ। वह मुझसे बड़े प्रेमके साथ पत्र व्यवहार करती है।

चंदाबाई—बहिन ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, मैंने आज तक कोई ऐसी भली मानस सासु नहीं देखी। अच्छा भला तुम और कौन कौनसे नियमों का पालन करती हो ?

भानुमती—बहिन ! मेरा दूसरा नियम यह है कि पुत्रको बहूके साथ अधिक प्रेम करता हुआ देख कर मैं बहू पर ईर्षा नहीं करती, बल्कि अपने पुत्र और बहूमें विशेष प्रेमभाव देख कर मैं बड़ी खुशी होती हूं। यदि कभी बहूकी ओर किसी कारण पुत्रका मन उदास देखती हूँ तो उसके सामने बहूके सद्‌गुणों का वर्णन कर पुनः बहूमें उसका प्रेम जागृत करती हूँ।

मेरी बड़ेमें बड़ी इच्छा यही रहती है कि पुत्र और बहूमें परस्पर प्रेम दिनोंदिन बढ़ता ही जाय तो मैं वह देख कर सुखी होऊं। बहुतसी दफा मैंने पंडितों और धर्म-गुरुओं के व्याख्यानों में सुना हुआ है कि शास्त्र में आता है वर और बहू दोनों मिल कर ही गृह-

स्थ का एक शरीर कहलाता है। यह शास्त्र का वचन ध्यान में रख कर उन दोनों को एकरूप बनाने में सहायता करना और बहू को उसके पतिकी इच्छानुसार सुशिक्षित तथा सद्गुणी विनयवती बनाना बस यही मैं मेरा मुख्य कर्तव्य समझती हूँ। इन दोनों के सुखके लिये मेरे मन में जितनी भावना है उतनी अपनी प्रतिष्ठा के लिये या अपनी मान बड़ाई के लिये नहीं है। मेरा तीसरा नियम यह है कि मैं हदसे ज्यादा बहूसे काम नहीं कराती। मैं उसे अपने घरकी काम करनेवाली मजदूरन नहीं समझती, किन्तु उसे घरकी उत्तराधिकारिणी समझती हूँ। घरका उचित काम काज किये बाद वह अपनी मरजी मुताबिक विश्रान्ति ले और खुली हवा सेवन करे मैं उसे इस प्रकार की हमेशह सूचना किया करती हूँ। मैं उसे सब कार्यों में पूर्ण रीतिसे प्रसन्नता पूर्वक सहानुभूति देती हूँ। यदि कभी उसका शरीर नरम गरम होता है तो तब मैं अपना मान छोड़ कर सच्चे अन्तःकरण से उसकी सेवा करती हूँ। यह सब कुछ करते हुये मैं उसे मेरे घरकी सभासद समझ कर हरएक कार्य में उसकी सलाह लेती हूँ।

चंदाबाई—बहिन! धन्य है तुम्हारे जैसी सासुओं को। तुम्हारे घरका ऐसा सदाचरण है तभी तो सारे मुहल्ले में तुम्हारी प्रशंसा होती है और इसी कारण तुम स्वर्ग के समान सुख भोग रही हो। खैर आज तक जो हुआ सो हुआ अबसे तीन महीने बाद हमारे बिचले लड़के चिरंजीलाल का ब्याह होनेवाला है, जब उसकी बहू घरमें आयगी तब मैं भी उस अपनी नयी बहूके साथ जैसा तुम करती हो वैसा ही सदाचरण करने का प्रयत्न करूँगी।

भानुमती—बहिन! सच पूछो तो घरके ऐसे सदाचरण में ही सुख है। जो हमसे हजार दरजे अधिक सुखी देखने में आते हैं, जो लाखोंपति कहलाते हैं उनके घरोंमें होनेवाले कौटुम्बिक कलह क्लेशको देख कर मुझे उन बिचारे दुखी कुटुम्बों पर दया आती है। बहिन! धनसम्पत्ति में सुख नहीं है परन्तु घरके मनुष्यों के पारस्परिक सच्चे प्रेममें सुख है। जिस पुत्रको पैदा

करने म हमें अति दुःख उठाने पड़ते हैं, यदि उसके सुखके लिये भी प्रयत्न न करें और उल्टा उसके सुखमें खलल पहुँचावें तो फिर हमारा जन्म ही बेकार है। संसार में पुत्रसे प्यारी वस्तु ही कौनसी है? जब हमें पुत्र इतना प्यारा है तो पुत्रकी प्यारी वस्तु पर प्रेम रखना यह भी तो हमारा कर्तव्य ही है। इस लिये बहिन! मेरी समझ से तो पुत्र और पुत्रकी बहूके सुखमें ही अपना एवं सारे कुटुम्ब का सुख समझना चाहिये। अपने घरको स्वर्ग के या नरक के समान बनाना यह सासु के ही हाथ की बात है। यदि घर में सासु अच्छी होगी तो बहू भी वैसी ही श्रेष्ठाचारवाली होवेगी और यदि सासु खराब स्वभाव की होगी तो उसकी देखा देखी अच्छी बहू भी खराब बन जायगी। इस लिये अपने सदाचरण से बहूको सद्गुणी बनाना और उससे सारे कुटुम्ब भरमें सुख शान्ति स्थापन करना यह सासुका ही कर्तव्य है। भानुमती और भी कुछ कहना चाहती थी कि इतने में ही उसकी बहू शारदा वहाँ पर आ पहुँची और हाथ जोड़ कर बोली—माताजी! रसोइ तैयार है। इसके बाद दोनों जनी भोजन करने चली गई।

कुटुम्बक्लेश से पशुजीवनके तुल्य दुःख भोगनेवाले भारत के कोट्यावधी गृहमंदिरों में जब भानुमती और शारदा के समान सासु बहू होंगी उस समय भारतीय गृहजीवन स्वर्गीय सुखका अनुभव करेगा।



' जीभके दोषोंसे भयंकर हानि '

—••:०:••—

बहुतसी स्त्रियों म अन्य सब तरह के सद्‌गुण होने पर भी एक ऐसा भयंकर घातक दुर्गुण होता है कि जो उनकी दृष्टिमें ही नहीं आता। वह भयंकर घातक दुर्गुण जीभका दोष है। इस असाधारण दुर्गुण से बहुत से सज्जन मनुष्यों के जीवन की नींव डगमगा जाती है। यों तो यह दूषण न्यूनाधिक तया तमाम स्त्री पुरुषों में होता है, परन्तु अनुदार विचार वाले मनुष्यों और उसमें भी स्त्रीवर्ग में यह दोष विशेषतः देखने में आता है।

बहिनो! आप अन्य जरा जरासे पापों से डरती हो परन्तु प्रतिदिन तुम्हारी जीभसे कितना पाप होता है इस बात का कभी तुम कुछ खयाल करती हो?। तुम छोटे पापों के आगमन—मार्ग को रोकने का प्रयत्न करती हो परन्तु जीभके दुर्गुण द्वारा जो पापका प्रवाह तुम्हारी आत्मा को भारी बना रहा है उस पर तुम्हें विचार करने का कभी अवसर मिलता है?

तोप, बन्दूक या मशीनगन से मनुष्य दूसरे का नाश करता है यह तुम जानती ही हो, परन्तु जीभ रूपी मशीनगन जो अन्य तमाम शस्त्रों से अनन्त गुना कहर गुजारती है उसकी कल्पना कौन कर सकता है? तोप या बन्दूक को तो एकली को ही काम करना पड़ता है परन्तु जीभरूपी तोप तो हजारों साधनों द्वारा, हजारों प्रपंचों द्वारा ऐसे घोर दुःख और शोकके बीज बोती है कि जिसके कटु फलोंकी गिनती ही न हो सके। शस्त्रसे होनेवाला नुकसान कुछ समय के बाद भूला जा सकता है किन्तु मनुष्य की जीभ से होने वाला अनर्थ अनेक वर्षों तक कायम रहता है और उसमें से हजारों प्रकार की अनर्थ परंपरायें बढ़ती चली जाती हैं।

निर्दयता, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, कटु वचन, दूसरों की आक्षेपपूर्ण समालोचनायें, दूसरों की निन्दा और चुगली, इत्यादि ये सब

जीभके ही दूषण हैं। यद्यपि संसार में चोरी और खून ये महान् अपराध गिने जाते हैं, परन्तु किसी भी प्रजामें चोरी और खूनसे पैदा होने वाले शोक या दुःखका मुकाबला यदि जीभके अपराध से पैदा होने वाले शोक या दुःखसे किया जाय तो जीभ के ही दोष भयंकर मालूम होंगे। एक तराजु के पलड़े में एक तरफ फौजदारी के तमाम अपराधों को रक्खो और दूसरे में जीभ की कडवास से पैदा होने वाले अपराधों को रक्खो तो जीभके अपराधों–पापों ही का पलड़ा नीचे नम जायगा। शस्त्र तो मात्र मनुष्य के शरीर का ही नाश करता है किन्तु जीभ तो मनुष्य के जीवन से भी प्यारी उसकी आबरू और चारित्र–प्रतिष्ठा का नाश कर डालती है, और एक दफा चारित्र–प्रतिष्ठा की हानि हुये बाद फिर मनुष्य का तमाम जीवन बेकार, दुःखमय, क्लेशमय और मृत्युके समान हो जाता है।

चोर किंवा खूनी मनुष्य से बहुत कम मनुष्यों को दुःख उठाना पड़ा होगा मगर दुनियामें ऐसा कौनसा मनुष्य है कि जिसे अपनी जिन्दगी में अपने किसी मित्र द्वारा या किसी दुर्जन द्वारा भूलसे या खराब स्वभाव के कारण किंवा उद्देश पूर्वक जबान से उच्चारण किये हुये शब्द की असर से दुःख न उठाना पड़ा हो?

मनुष्य चाहे जितना पवित्र और सत्यमय जीवन बिताता हो तथापि दुर्जन स्वभाव वाले मनुष्य की ईर्षा और निन्दा की आंखें उस पवित्र जीवन में से भी दूषण शोध कर उसे हलका बतलाने के प्रयत्न करने में कुछ कसर न उठा रक्खेंगी। किसी के आचार पर किये हुये आक्षेप, शिष्ट मनुष्यों के हृदय में तिरस्कार पैदा करने वाले असत्य कलंक, अर्ध सत्य आरोप, और अतिशयोक्ति से कथन किया हुआ दूसरे का सूक्ष्म दोष, ये तमाम कीड़े समाज के जीवन रूप हृदय को भीतर से कुतर खाते हैं, उसे खोखा कर डालते हैं। इस प्रकार का अधम कृत्य करने वाले नीच मनुष्य पोशीदा–छिपी रीतिसे एक दूसरे के लिये असत्यारोप मनुष्यों में इस तरह फैलाते हैं तथा वे अपने कलुषित हृदय से निकले हुये दूसरे को हलका बनाने वाले दुर्वचन रूप तीरों को ऐसे पने और जहरीले बनाते हैं

कि उनसे पैदा होने वाले भयंकर नुकसान की कल्पना करना भी बड़ा कठिन काम है।

ये सब बातें बाहर से तो बड़ी ही छोटी मालूम होती हैं और इसी कारण हमारे बहुत से बहिन भाई इस तरफ लक्ष तक भी नहीं देते, परन्तु यह परनिन्दा की आदत छोटीसी होने पर भी यहाँ तक महान् रूप धारण करती है कि जब उस पर विचार करते हुये उसके भयंकर परिणाम को देखते हैं तब कलेजा काँप उठता है। इस लिये जीभसे पैदा होने वाले दूषण को छोटा और निर्माल्य समझ कर उस पर उपेक्षा करना बड़ा भयंकर हानि-कारक है।

एक क्रूरसिंह को मारना सुगम कार्य है, परन्तु एक छोटे से प्लेग के जन्तुको मारना कठिन काम है, क्योंकि वह नजर नहीं आता। यद्यपि वह देख नहीं पड़ता तथापि वह भयंकर हानिकारक अवश्य है। बस इसी प्रकार मनुष्य की जीभ से निकला हुआ सूक्ष्म मालूम देनेवाला भी दूसरे का दोष-प्रदर्शक वचन महान् अनर्थ कारक बन जाता है। इन सूक्ष्म देख पड़ते हुये दोषोंके कारण ही अनेक जातियों में, अनेक समाजों में, अनेक मंडलों में और अनेक मित्रोंमें उनके सर्वनाशके जहरीले बीज बोये गये हैं और वर्तमान में भी यह अज्ञानतापूर्ण महान् हानिकारक प्रवृत्ति खूब जोर शोरसे चल रही है। दूसरों की निन्दा या चुगली करना यह एक प्रकार का चेपी रोग है, तथापि मनुष्य इससे बचने का प्रयत्न नहीं करते। बल्कि बहुत से तो जान बूझ कर उसमें फसते हैं।

कुछ समय हुआ लंडन में परनिन्दा के भयंकर परिणामों को समझने वाले कितने एक विवेकी पुरुषोंने एक मंडल स्थापन किया है, जिसका नाम परनिन्दा-निरोधक मंडल रक्खा है। उस मंडल का 'उद्देश यह है कि उसके सभासदों को दूसरों की निन्दा और बद्-बोई होती हुई अटकाने में अपना सर्व बल खर्च करना। दूसरों पर असत्य कलंक लगाना अथवा किसीके छोटे से दोषको गम्भीर रूप देकर उसकी चारित्र-प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाना या किसीका

आशय समझे विना ही उसके आशय की अपनी मति-कल्पना से निश्चयात्मक हलकी तुलना कर लेना और उसे मनुष्य-समाज में दर्शाना इत्यादि इन जीभके दूषणों का दूषित हानिकारक परिणाम विचार-शील मनुष्य प्रत्यक्ष देख रहे हैं। जो स्त्री या पुरुष दूसरों की निन्दा करने में ही आनन्द मानता है या जो ऐसा नीच कृत्य करने में ही कटिबद्ध है उसके अभ्यन्तर ज्ञान चक्षु अज्ञानता के पटल से आच्छादित हो जाते हैं। उसे संसार में जहाँ तहाँ काले ही कृत्य देख पड़ते हैं। जगत में रही हुई शुद्धता, पवित्रता, माधुर्य आदि सद्गुणों को वह देख ही नहीं सकता। उल्लू के समान उसे सद्-गुणरूप सूर्यका कहीं दर्शन ही नहीं होता। उसके हृदय में सदा के लिये उदार विचारों का स्थान ही नहीं मिलता। उसके मान-सिक लक्षबिन्दु में इतनी नीच वृत्ति आ घुसती है कि वह सदा-शय से किये हुये दूसरों के श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कार्य को भी खराब आशय से किया हुआ समझता है। जिस प्रकार कौवा संसार के सुन्दर श्रेष्ठ पदार्थों को छोड़ कर गन्दकी पर ही जा बैठता है, अथवा जैसे मक्खी शरीर की तमाम सुन्दरता को छोड़ कर जहाँ कहीं शरीर में जख्म होता है झट वहाँ ही जा बैठती है और उसमें ही वह आनन्द मानती है, बस उसी प्रकार परदोष शोधक स्त्री-पुरुष भी दूसरों में रहे हुये अनेक उच्च सद्गुणों की ओर न देख कर उनमें रहे हुए दोषोंको ही देखता है। जिस तरह चूहे के पीछे बिल्ली झपटती है उसी तरह उसकी दृष्टि मनुष्यों में रहे हुये अवगुणों को ग्रहण करने के लिये दौड़ती है। ऐसी नीच वृत्तिवाले मनुष्य के ईर्द गिर्दका वातावरण ही दूषित हो जानेके कारण उसके स्वभाव के अनुकूल दूसरों का दोष ढूँडना उसके लिये स्वाभाविक कार्य हो जाता है और वह अपनी अमूल्य जिन्दगी इसी नीच वृत्तिमें समाप्त करता है।

एक प्रूफ पढ़ने वाला मनुष्य उन वाक्यों में रही हुई सुन्द-रता को नहीं देखता, वह तद्गत उच्च विचारों की ओर लक्ष नहीं देता, लेखकी उत्तम लेखन शैली या भाषा माधुर्य से उसका मन आकर्षित नहीं होता किन्तु कौनसा अक्षर बराबर नहीं छपा, पूर्ण-

विराम या अल्प विराम कहाँ पर नहीं रक्खा गया, अथवा कौनसे शब्द परस्पर जोड़ने के थे और वे नहीं जोड़े गये या कौन कौनसे शब्द जुदे नहीं किये गये, इत्यादि उस प्रूफमें से भूलें ही देखने का उसका कार्य होता है। इसी प्रकार पर दोष शोधक मनुष्य की नजर में दूसरों में रहे हुये अनेक उत्तम गुण नहीं आते परन्तु घाव पर मक्खी के समान उनकी दृष्टि दूसरों की त्रुटियों तथा भूलों पर ही पड़ा करती है। नीच स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों से दूसरे का दोष देख कर शान्ति पूर्वक बैठा भी नहीं रहा जाता। वे अपने स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों की शोधमें ही रहते हैं और वैसे मनुष्य के मिलने पर वे अपनी की हुई उस नवीन शोधको बिना ही पूछे ताछे बहादुरी के साथ ललकार कर कहने लग जाते हैं और उसमें नून मिरचें लगाना या उसे अतिशयोक्ति से बढ़ा कर कहना इसे तो वे अपनी चतुराई या हुशियारी ही समझते हैं। एकसे दूसरे के कानों पर और दूसरे से तीसरे के कानों पर अतिशयोक्तियों द्वारा फैलता हुआ दूसरे मनुष्यका एक छोटासा दोष अधिक जन समाज में प्रसरित हो जानेसे वह गम्भीर रूप धारण कर लेता है और इससे वह मनुष्य समाज की दृष्टिमें महा पापी और महा पतित बन जाता है। फिर वह उसके सामाजिक जीवन में किसी प्रकार भी अपना विकास नहीं कर सकता। अच्छा होने पर भी उसे साधारण जनता अधम ही समझती है। अब उसके गुणोंसे भी दूसरे मनुष्य लाभ नहीं उठा सकते। अर्थात् उस मनुष्य का पवित्र जीवन भी समाज के लिये सर्वथा बेकार बन जाता है। हाय री! निन्दा की आदत! तूने अनेक मनुष्यों का जीवन-सर्वस्व धूलमें मिला दिया!!

बहिनो! विचार करो कि इस निन्दा राक्षसी के फन्दे से आप मुक्त हो? आप दूसरे के दोषोंको अपने दोषोंके समान देख सकती हो? दूसरे को पापी या दूषित जान कर उसे तिरस्कार की दृष्टिसे न देख कर दया और प्रेमसे उसे सन्मार्ग में लानेवाला कौन है? बहिनो! जिस स्त्री पुरुष के हृदय में अपने भूले हुये बहिन भाइयों की भूलों के लिये उनके प्रति तिरस्कार के बदले दया-करुणा और प्रेम भरा हो उसके चरणों में अन्तःकरण पूर्वक सिर झुकाओ, उसे सचमुच

महान् व्यक्ति समझो और उस उदार हृदयवाले मनुष्य के जीवन का अनुकरण करके आप अपना जीवन कीमती बनाओ।

भारतकी गृहदेवियों! तुम्हें मालूम है कि परिणाम में भयंकर रूप धारण करनेवाले और स्वरूप से बिलकुल छोटासा दीखनेवाले इस जीभके दुर्गुण द्वारा शय्या में कितने ही तकिये आंसुओं से भीने हुये होंगे, कितने ही मनुष्यों का जीवन सदाके लिये संसार में भारभूत बन गया होगा! कितनी ही आबरूदार विधवा बहिनें इस राक्षसी प्रवृत्ति के कारण असत्यारोपों से अपने जीवन को भूमिभार समझ कर घरमें ही रोरो कर मरती होंगी, कितने ही मनुष्यों ने प्रतिष्ठा-हानिकी अपेक्षा आत्मघात करना पसंद किया होगा और कितने ही मनुष्यों ने दूसरों की इस भयंकर आदत के परिणाम में मुख से एक भी शब्द उच्चारण किये बिना ही अपने जीवनकी समाप्ति की होगी।

सहृदय भगिनी बन्धुओ! यदि आप वास्तविक रूपसे इस भयंकर आदत का जहरीला परिणाम समझे हो तो अपना जीवन बचाने के लिये आजसे ही इस भयंकर आदत को त्यागने की दृढ प्रतिज्ञा कर लो। अपने अन्तःकरण में ऐसे नीच दुर्गुणों को स्थान ही मत दो। अपने हृदय को प्रेमपूर्ण उदार विचारोंसे सुवासित बना लो।

इस खराब आदत के कटु परिणाम में हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक मनुष्य सर्वथा पवित्र और प्रमाणिक तया जीवन बिताता है। अपनी इष्ट वस्तुको प्राप्त करने के लिये वह न्याय नीति से तथा अपने पूर्ण सामर्थ्य से जीवन युद्धमें तनतोड़ पुरुषार्थ करता है और इस से वह उस अपनी इष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी तैयारी में ही है, इतने ही में जनसमाज में उसके लिये सर्वथा असत्यारोप की अफवा उड़ती है। बस फिर तो कहना ही क्या था, उसकी तमाम आशायें निष्फल हो जाती हैं। वह युवान होते हुये भी आघातों से हताश हो कर वृद्ध बन जाता है। उसके लिये उसका सारा जीवन निरस बन जाता है और वह अब अपने भारभूत शेष जीवन

को दुःखमय स्थिति में बड़ी मुस्किल से पूर्ण करता है। किसी द्वेष वश या अपने नीच स्वभाव के कारण एक दूसरे के बारेमें जब कोई मनुष्य समाज में असत्य आरोप की अफवा फैला कर उस मनुष्य के लिये इस प्रकार का भयंकर परिणाम उपस्थित करता है उस वक्त उस मनुष्य की आत्मा दुर्गुणों से कैसी मलिन होती होगी इस बात की तुलना करना बड़ा कठिन है।

बाहरसे चाहे साधु ही क्यों न देख पड़ते हों परन्तु प्रायः दुर्जन मनुष्यों में ही यह लक्षण पाया जाता है कि दूसरों की निन्दा करने और सुनने में उन्हें एक प्रकार का आनन्द और रस पड़ता है। यह आनन्द या रस वैसा ही समझना चाहिये कि जैसा दाद पर खुजाने में आता है। वह रस यह सूचना करता है कि जिस बात की तुम निन्दा करते हो उस दुर्गुण से तुम स्वयं मुक्त नहीं हो, वह अवगुण तुममें उससे भी कुछ अधिक भरा है जिसकी तुम निन्दा करते हो।

अच्छे भले आदमियों की निन्दा करने वाले ही तज्जन्य पापके हिस्सेदार बनते हैं इतना ही नहीं किन्तु सुनने वाले भी उस दुरित के हिस्सायती बनते हैं। शास्त्र में कहा है कि "न केवलं यो महतां विभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पाप भाक्" अर्थात् महान् पुरुषों की निन्दा करने वाला ही केवल पापका भागी नहीं बनता परन्तु साथ ही में सुनने वाला भी उतना ही पापी बनता है।

जो स्वयं पवित्र है वही पवित्रता की कदर कर सकता है, जो स्वयं प्रामाणिक है वही प्रामाणिकता की कीमत समझ सकता है, जो धर्मात्मा है वही धार्मिकता का महत्व समझ सकता है, जो स्वयं सदाचारी है वही सदाचार की खूबी जान सकता है और जो स्वयं न्यायी है वही दूसरों में रहे हुये उन सद्गुणों को महत्त्व की दृष्टि से देख सकता है और वही मनुष्य दूसरों की परीक्षा करने में समर्थ हो सकता है।

इस परनिन्दा दूषण को समाज में प्रसरित करने में साधन के तौर पर अखबार पत्र भी खूब भाग लेते हैं। वर्तमान अखबार पत्रोंका

हमें फायदा भी भूल जाने की जरूरत नहीं है। क्यों कि उनसे पैदा होनेवाले दोषोंको शोधने की अपेक्षा उनमें रहे हुये अनेक लाभों को एक क्षण भर भी न भूलना चाहिए। वर्तमान अखबार यह एक जीभ नहीं है परन्तु सैकड़ों हजारों एवं लाखों जीभों का समूह है। जितने कान उस अखबार को सुनें उनको बद्‌बोई की बात फैलाने में वह हजार मुखवाले राक्षसी प्राणीके समान सुनाता है। जिस प्रकार गीध पक्षी प्राणीके गले सड़े कलेवर को दूरसे देख कर उस तरफ दौड़ता है उसी तरह ताजे समाचार के शौकीन पढ़ने वालोंके लिये कालम भरनेवाले परदोषों के कार्यको जगत की दृष्टिमें खुला करके उसमें आनन्द और हर्ष मानते हैं। उनके लिये हर-एक बातमें सत्यता की जरूरत नहीं होती। उनकी कल्पना शक्ति इस प्रकारकी फलद्रुप होती है कि एक छोटी से छोटी बातको भी वे चाहे वैसे महान् कद्‌रूप में चित्रित करने को तैयार ही रहते हैं। ऐसे मनुष्यों की लेखनी में सत्यासत्य समाचार लिखनेकी बड़ी ही त्वरा (उतावल) होती है। परन्तु उनके दीमाग में विचार शक्तिका बड़ा अभाव होता है। अखबारों में असत्यारोप के समाचार पढ कर मनुष्य अपने स्वभाव के अनुकूल उस पर अतिशयोक्ति का और भी अधिक श्वतिक पूरते हैं। क्योंकि साधारण जनता में स्वतंत्र विचार शक्तिका बहुधा अभाव होनेसे उसे ऐसी बातें रुचिकर हो पड़ती हैं और इसी कारण मनुष्य विचार किये विना ही अपने मन के सामने अनीति का आबेहूब चित्र कल्पित कर लेते हैं।

जब कोई धनाढ्य व्यक्ति किसी अच्छे कार्यमें मदद करना जाहिर करता है तब अखबार के एडीटर महाशय कहेंगे कि वह अपनी कीर्तिके लिये करता है या कोई पैसे वाला मनुष्य जब किसी परोपकार के कार्य में अपना पैसा न खर्चे तो अखबारों के संपादक इस बातका ढोल बजाने को तैयार ही रहते हैं कि वह तो सदा से ही कृपण और कंजूस मक्खी चूस है, उसने कब अच्छे कार्य में चार पैसे खर्चे हैं ? जो अमुक कार्य में वह मदद करे ?

तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्य को दूसरों के दूषण ही देखने की आदत पड़ जाती है उसके लिये एक भी ऐसा सद्‌गुण नहीं कि

जिसे उसका दूषण शोधने वाला स्वभाव दुर्गुण रूपमें कल्पित न कर सके। इस विषय में कवि भर्तृहरि का कथन याद आता है—

जाड्यं ह्री मति गण्यते व्रतरुचौ, दम्भः शुचौ कैतवम्,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता, दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्सगुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥

अर्थात् शरमदार मनुष्य को जड़ बुद्धिवाला कहते हैं, व्रत में रुचिवाले मनुष्य को दम्भी कहते हैं, पवित्रता को कपट कहते हैं, मुनिको बुद्धि रहित गिनते हैं, प्रिय वचन बोलनेवाले को दीन-गरीब गिनते हैं, तेजस्वी को अभिमानी समझते हैं, छटादार व्याख्यान देनेवाला मनुष्य वाचाल गिना जाता है, सहनशील मनुष्य को अशक्तिवाला समझते हैं। किंहुबना गुणी मनुष्यों का ऐसा एक भी सद्‌गुण नहीं कि जिसे दुर्गुणी मनुष्य दोष रूपमें परिणत न कर सके।

जो मनुष्य साधारण जनता की अपेक्षा विकास मार्गमें आगे बढना चाहता है उसे अपना पवित्र जीवन बिताते हुये पूर्वोक्त तमाम प्रकार के असत्यारोप और कलंकरूप तीरों के प्रहार सहन करने के लिये सदैव तैयार रहना चाहिये।

पवित्र गृहस्थ-जीवन जीनेकी इच्छावाले प्रिय सज्जनो! और सुज्ञ सन्नारियो! इस परनिन्दा रूप विकराल भूतकी छायामें न आकर सर्वत्र सद्‌गुणों की गवेषणा करो और सद्‌गुणों के वातावरण में रह कर आप स्वयं सद्‌गुणी बनो।



विधवाओं की परिस्थिति



विधवाओं की क्या खता क्यों देते हो दोष,
खता आप की है सभी रहो मित्र खामोस ॥

इस देशमें बाल और वृद्ध विवाह की भरमार से अत्यधिक बढ़ती हुई बाल विधवाओं की दुःखमय करुणाजनक दशा देख कर हृदय भर आता है, आंखें अश्रुजल से डबाडब हो जाती हैं और दुःखसे कलेजा मुँह को आता है।

आज विधवाओं के लिये संसार में जगह जगह कांटोंकी जाल बिछ रही है। उन्हें समाज में रह कर अपना जीवन व्यतीत करना एक दुर्गम पहाड़ को उल्लंघन करने के समान विषम मालूम हो रहा है। मस्तक पीड़ाके समान बाहर से न देख पड़ने पर भी वे अपने आन्तर जीवन में भयंकर यातनायें भोग रही हैं। उनका जीवन जहाज संसार के महा सागर में सामाजिक एवं नीच वृत्ति-वाले स्वार्थी पुरुषों के अत्याचार रूप चट्टानों की टक्करें खाता हुआ बिन खेवटिये इधर उधर डावाँडोल हो रहा है।

जो विधवा बहिनें बेवारस होती हैं, जिनके सिर पर कोई भी वाली वारस नहीं रहता उन अनाश्रित बालविधवाओं का जीवन तो और भी विषमता तथा भयंकर जोखम में आ पड़ता है। प्रथम तो संसार के वासनापूर्ण संयोगों में रह कर उस फरजीयात बाल वैधव्य का पालना ही लोहे के चने चाबने के समान महा दुष्कर है और यदि हजारों में एक कोई पवित्रात्मा सती उसे अपना परम धर्म समझ कर पालती भी हो तो उसके उस व्रतरूप कीमती रत्न पर विकार वासना से दूषित दृष्टिवाले ठगोंकी नजर जमी ही रहती है। देशभर में अज्ञानता की अधिकता के कारण यहाँ तक विकार वासनावाली दृष्टिका आधिक्य बढ़ रहा है कि यदि कोई विधवा शीलको ही अपना परम सर्वस्व समझ कर सर्वथा पवित्र जीवन बिताती हो परन्तु उसके सिर पर कोई देवर, जेठ

ससुरा आदि निजी वारस न हो यदि इस प्रकार की हतभागिनी विधवा घरमें कोई भी पुरुष न होनेके कारण किसी समय किसी एक सदाचारी पुरुषसे अपनी नम्र प्रार्थना द्वारा बाजार संबन्धी कुछ सौदासुलुप मंगवाले या वह सदाचारी पुरुष अपनी ही भलमनसी से किंवा उस अनाश्रिता विधवाकी दयासे उसका कुछ काम काज कर दे तो पड़ौस के स्त्री पुरुष और इस बातको जान पानेवाले अन्य मनुष्यों की दोषपूर्ण दृष्टिमें वह सदाचारी पुरुष और निर्दोष विधवा सती पतित ही भासित होते हैं।

जिस मनुष्यने कभी आजतक चोरी करनेका मार्ग न देखा हो तथापि किसी भ्रमसे दूसरे मनुष्य उसे चोरतया प्रसिद्ध करते हों तो अवश्य ही उस अपरिपक्व हृदयी प्रमाणिक मनुष्यके दिल में भी कभी न कभी चोरी करने के विचार प्रवेश करेंगे। दूसरों के असत्यारोपण से उसके अन्तःकरण में एक दिन यह विचार आ ही घुसेगा कि जब विना ही चोरी किये लोगोंमें मेरा नाम चोरतया प्रसिद्ध हो गया है तो फिर क्यों न चोरी करके मैं अपनी तंगीयें दूर कर लूं। अर्थात् जब किसी एक श्रेष्ठ स्त्री पुरुष के सदाचरण के बारेमें किसी द्वेषी मनुष्य द्वारा या किसी नीच वृत्तिवाले मनुष्य द्वारा किंवा किसी बाह्याचरण से पैदा होनेवाले भ्रमद्वारा समाज में अश्लील विचार फैल जाते हैं और बहुतसी दफा अन्तमें वे विचार सत्य भी मालूम होते हैं तब उस प्रकार के नीच विचारों को उस मनुष्य के हृदय में जन्म देने और आचरण में आकर उसके जीवन को नष्ट करने के कारणभूत समाज में प्रथम से पसरे हुये वे गन्दे विचार ही होते हैं और उस एक पवित्र जीवन को नष्ट भ्रष्ट करने के पापका भागीदार उन असत्य गन्दे विचारों का प्रचारक ही बनता है।

आज उच्चसे उच्च समाजों में विधवाओं को फरजीयात वैधव्य पालन करने में पद पदमें विघ्नोंके पहाड़ खड़े हैं। सामाजिक बन्धनों के कारण पशुओं के समान ही वे अपनी दुःख वेदनायें दूसरोंके सामने मुँहसे कहने तकको भी असमर्थ हैं। बालवैधव्य दुःखका अनुभव विधवाओं के सिवा यदि अन्य किसीको हो सकता है तो कुछ

विचारशील विधुर युवकों को ही हो सकता है। "जिसके पगमें नहीं बिवाई वह क्या जाने पीड पराई" इस कहावत के अनुसार जिसने अपना जीवन इस बारेमें सुखमय व्यतीत किया हो और वृद्धावस्था पर्यन्त एतद्विषयक दुःखका कभी अनुभव ही न किया हो वह मनुष्य वैधव्य और विशेषतः बालवैधव्य भोगनेवाली अनाथ अबला बालिकाओं के दुःखको कदापि नहीं समझ सकता। वे सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित हो कर किस प्रकार अपना दुःखमय जीवन पूरा करती हैं सो वे ही जान सकती हैं।

पाठक महाशय! समाज के बन्धन किस प्रकारके सड़े हुए हैं सो तो आप भली प्रकार जानते ही होंगे। सैकड़ों और हजारों वर्षोंके सामाजिक कायदे कानून आजतक उसी रूपमें माने और मनाये जाते हैं। देशकाल के अनुसार उन सामाजिक कायदे कानूनों में न तो अभी तक सुधार हुआ और न ही समाज के अगुवा उनमें सुधार करना चाहते हैं। आज देशकाल के अनुसार अपने उपयोग में आनेवाली तमाम वस्तुओं में सुधार करते हुये मनुष्यों ने अपने घरके पायखानों तकमें सुधार कर लिया, परन्तु खेदकी बात है कि भारत वर्षके उच्च समाजों में सामाजिक जीवन सुरक्षित रखनेके लिये या उसकी उन्नति के लिये अभी तक भी सामाजिक सुधार नहीं हुआ। समाज के आगेवान भी न्याय अन्याय की तुलना न करते हुये समय पर अपनी सत्ताका दुरुपयोग करके अज्ञानता के वश होकर अपने आपको कृतकृत्य समझते हैं। चाहे उनके उस अज्ञानतापूर्ण और दयारहित न्यायसे दूसरों का जीवन सर्वथा बेकार हो जाता हो और चाहे उनके न्यायसे समाज की ही जड़ें कट जाती हों तथापि वे उनके मूर्खताभरे न्यायसे अपने आपको समाज के संरक्षक समझते हैं।

बेलगांव जिलेके एक गांवमें एक उच्चसमाज में एक श्रेष्ठ खानदानी कुटुम्ब में एक विधवा को किसी नालायक मनुष्य की संगत होनेसे हमल रह गया। हमल बढ़ने पर समाज में अपना नाक रखने के वास्ते उस विधवाने अपने गर्भको गिराने के लिये

गर्भ औषधियाँ सवने करने का प्रयत्न किया। यह बात वहाँके किसी दयालु व्यक्तिको मालूम हो जाने से उसने उस विधवा को समझाया कि भद्रे ! एक दुष्कृत्य तो तुझसे विकारवासना के वश होकर हो ही गया है अब दूसरा उससे भी भयंकर यह भ्रूण हत्या का दुष्कृत्य तू किस लिये करती है ? मैं तुझे इस हत्यासे बचने के लिये एक मार्ग बतलाता हूं और वह मार्ग यही है कि तू इस बच्चेको पूरे दिनोंका जन कर पडंरपुर के आश्रम में सौंप आ। यह बात सुन कर उस विधवा के अन्तःकरण में कुछ दया का संचार हुआ, उसने यह बात प्रतिज्ञा पूर्वक स्वीकार ली। उस बच्चेको पूरे दिनोंका जन कर आश्रम को सौंप दिया। किन्तु यह बात समाज में फूट निकली। बस फिर तो कहना ही क्या था। उस बच्चेको गर्भमें ही न मार कर पूरे दिनोंका जनकर आश्रम में दे देने से वह विधवा समाज की (पंचोंकी) गुन्हेगार बन गई। यदि उस बच्चेको वह विधवा समाज के जानते हुये भी गर्भमें ही मार डालती तो समाज की गुन्हागार नहीं बन सकती थी। परन्तु उस बच्चेके प्राण बचाने से वह अबला दयालु समाज की गुन्हागार बन गई। समाज ने उस अबला पर हमदर्दी न रख कर उसे पुनः अनीति के मार्गमें गमन करने के लिये अवकाश दिया। अर्थात् उस ने अपनी पुरानी सत्ताका उपयोग कर उस अभागिनी अनाथ विधवा को अपने सरकल से बहिष्कृत कर दिया।

जिस जमाने में विचारशील समाज भंगियों तक की भी शुद्धि करके उनके उद्धार के लिये उन्हें अपने अन्दर ले रहे हैं उसी जमाने में भारत के कईएक पुराणप्रिय और अज्ञानपूर्ण समाज अपने दुःखित बहिन भाइयों को भी बहिष्कृत कर संसार से अपने अस्तित्व को जल्दी मिटाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

समाज की तरफ से जो विधवाओं और बालविधवाओं पर अत्याचार हो रहे हैं सो एक प्रकारके ही नहीं, उन पर अनेक प्रकार से जुल्म ढाये जा रहे हैं। जो स्त्री अपने पतिदेव के जीते हुये कुटुम्ब के तमाम स्त्री पुरुषों की दृष्टिमें सन्मान्य गिनी जाती

थी और जो एक प्रकार से घरकी मालकनी ही कहलाती थी एक पतिदेव के वियोग से घरमें लाखों की संपत्ति होने पर भी वह विचारी वैधव्य अवस्था में वस्त्र और खाने तक कोभी दूसरों की मुहताज बनती है इतना ही नहीं किन्तु उसे अपना पेट पालन करना भी बड़ा दुष्कर हो जाता है। उसे सासु ससुरों की ओरसे पेट की तक याने खाना खर्च तक मिलना मुस्किल हो जाता है। ऐसी बहुत सी विधवाओं को तो बेकार और भारभूत समझ कर उनके सासु ससुर अपने घर बुलाते तक भी नहीं हैं। वे विचारी अपने मा बापके घर पर ही अपने भारभूत उस शेष जीवन को कराह कराह कर पूर्ण करती हैं। यदि सासु ससुरों को उस अनाथा की कुछ दया आ जाय तो भले ही उसके निर्वाहार्थ कुछ उसको दे दिया जाता है अन्यथा उसे दूसरों की मेहनत मजूरी करके अपने पेटका निर्वाह करना पड़ता है। इस प्रकार की दशामें जब कि उन अनाथाओं का जीवन हरएक तरह की तंगियों से परिपूर्ण हो और संसार की हरएक वस्तुके लिये जब वे दूसरों का ही मुँह ताकती हों और उस पर भी समाज की तरफ से हर तरह के अपवादों की चिन्तासे रात दिन अन्तःकरण संतप्त रहता हो फिर ऐसी परिस्थिति में वे अबलायें अपने कष्टमय भारभूत जीवन को कहाँ तक पवित्रतया कायम रख सकती हैं इस बातकी तुलना उनके आन्तर जीवन से परिचित मनुष्य ही कर सकता है।

विधवाओं के दुःखकी तुलना करनेवाले मनुष्य के घरमें यदि उसकी बालविधवा लड़की बैठी हो और यदि वह मनुष्य अपनी सन्तान के सुख दुःखको अपना सुख दुःख समझता हो तो वह सांसारिक भोग विलासों की इच्छा तक भी न करेगा। जिसके घरमें पुत्रकी प्राणप्यारी बालवधू बालवैधव्य की कठोर तपश्चर्या करती हो यदि वह सच्चा पुत्रप्रेमी होगा तो पुत्रप्रणयिनी के दुःख से दुःखित हो कर कदापि विषयजन्य सुखकी इच्छा न करेगा। जिस घरमें सांसारिक भावना की गन्ध तक न लेनेवाली बालविधवा बालवैधव्य की फरजीयात कठिन तपस्या करके अपने जीवन को कराह कराह कर पूरा करती हो उस घरमें रहने

वाले उस अबला के सदय माता पिता और भाईको विषय वासना अन्य सुख भोगने का कोई अधिकार ही नहीं रहता।

यद्यपि कई वर्षोंसे देशके सुशिक्षित विचारशील मनुष्यों का विधवाओं की करुणा जनक दशा पर कुछ गौण दृष्टिपात हुआ है सही परन्तु उनकी आन्तर स्थिति सुधारने के लिये दत्त चित्त हो कर एक आर्य समाज के सिवा अन्य किसीने आवश्यक आन्दोलन ही नहीं किया। भले ही आर्य समाज की यह स्त्रीसुधार की किंवा संसार सुधार की योजना पुराणप्रिय समाजों को पसंद न हो तथापि हमें इतना तो निष्पक्षपात तया मंजूर करना ही पड़ेगा कि उसने दुःखित विधवाओं की करुणा जनक स्थिति पर दत्त चित्त हो कर गहरा विचार अवश्य किया है।

जिस देशमें पाँच पाँच और सात सात दफा विवाह करा कर अनेक सुन्दरियों के साथ सांसारिक सुख भोग कर भी पंचावन और साठ वर्षके बूढे खुर्राट जिनका घर पुत्र पौत्रादिओं से भरा हुआ है और जो सिर्फ एक दो वर्षके ही संसार में महमान हैं यदि ऐसे पुरुष यमराज के दरबार में पहुँचने की तैयारी करनेकी अवस्था तक भी अपनी विषय वासना पर संयम नहीं प्राप्त कर सकते तो फिर वहाँ पर संसार की वृत्तिओं से सर्वथा अनजान दश या बारह वर्षकी उमर में ही विधवा होने वाली और जीवन पर्यन्त वासना पूर्ण संयोगों में रहने वाली बालिकायें किस प्रकार इस दुष्कर व्रतका पालन कर सकती हैं?

महान् विद्वान मनुष्य को भी उसके जीवन की प्रासंगिक बातें सुनने वाले अपने विचार के किसी एक मनुष्य की आवश्यकता पड़ती है तो विचार करने की बात यह है कि जिसे किसी प्रकार का शिक्षण ही न मिला हो या अक्षर ज्ञान तक से भी जो वंचित हो और रात दिन घरमें भाई भाबी की, माता पिता की, चाचा चाची की, जेठ जेठानी की, देवर देवरानी की और सासु ससुर की सांसारिक भावनाओं का पोषण होता हुआ देखती हो और उसके मानसिक दुःखको सुनने वाली कोई स्त्री तक भी घरमें न हो कि

जिससे वह दो घड़ी प्रसन्न चित्तसे अपने सुख दुखकी बातें कर सके और उन बातोंके द्वारा अपने भीतर भरे हुये आवेग को हलका कर सके, ऐसी परिस्थिति में मात्र सामाजिक बन्धनों के लिये या लोक लाज के लिये ही बालवैधव्य भोगने वाली अबलाओं के सुलगते हुये जीवन को किस प्रकार शान्ति लाभ हो सकता है ?

जब आज कल के योगी पुरुषों को भी किसी समय आनंदित हो कर अपने विचार वाले मनुष्य के साथ प्रसन्न चित्त से बातें करने की आकांक्षा होती है तो फिर कमजोर हृदया अबलाओं को फरजीयात उदासीन दशा में विना ज्ञान अपना सारा जीवन व्यतीत करना यह कितना उलझन भरा और कठिन काम है इस बातका अन्दाज तो उस दुःख से दुःखित मनुष्य ही लगा सकता है। यों तो बालविधवाओं के जीवन की विडम्बना करानेवाले अनेक दृश्य हमारी आंखों के सामने तिरमिरा रहे हैं। उन भयानक दृश्यों को लिख कर हम सहृदय स्त्रीपुरुषों के हृदय को आघात पहुँचाना पसंद नहीं करते। तथापि उनकी शोक जनक दशा पर स्वयं अपनी बुद्धि से अनुमान कर लेनेके लिये यहाँ पर एक सत्य घटना का उल्लेख कर देना हमें आवश्यक जान पड़ता है।

भारत के अनेक प्रान्तों में एक वरार प्रान्त भी प्रसिद्ध प्राप्त है। इस प्रान्त में आकोला नामक एक सुप्रसिद्ध नगर है। यह बीच में बहने वाली नदीके दोनों ओर बसा हुआ है। पुरानी मर्यादा के अनुसार यहाँ पर अब भी मंडी भरती है—इसे मध्यप्रान्त के देहात में पैठ कहते हैं और दक्षिण महाराष्ट्र में इसे बाजार कहते हैं। यह मंडी या पैठ किंवा बाजार आठवें दिन भरता है। इस दिन आस पासके गांवों वाले हजारों स्त्री पुरुष वहाँ आकर आवश्यक सौदा सुलुफ खरीद ले जाते हैं और अपने पासका बेच भी जाते हैं।

इस गाँव में बुधवार को मंडी भरती है। आज बुधवार का ही दिन है। धर्मशाला के इर्द गिर्द और पुलके पास स्त्री पुरुष डेरा डाले पड़े हैं। मानो दिनके परिश्रम से थक कर सूर्य नारायण विश्रांति लेनेको अपने घर पर चले गये हैं। चंद्रमा की शीतल

किरणों से नदीका सुन्दर सजल दिखाव मनुष्यों के चित्तको अपनी ओर खींचता था। विशाल पुलके सुरम्य स्थान पर इस समय अनेक पुरुष टहल रहे हैं।

अकस्मात् एक ओर से हाहाकार की ध्वनि-आवाज सुन पड़ी। उस ध्वनि और प्रति ध्वनिने लोगों को एकदम आकर्षित किया। अग्निकी प्रचंड ज्वालाने लोगोंको उधर होने वाली जोर शोर से ऊहापोह का अर्थ स्पष्ट तया समझा दिया। आग लग गई, आग लग गई, यों कहते हुये सैकड़ों मनुष्य एकदम उस तरफ दौड़ने लगे। आगकी बढ़ती हुई ज्वालाओं से प्रकाश भी बढ़ता जा रहा था। वृद्ध अपनी टेक को भूल गये, मजदूरोंने काम छोड़ दिया। माताओं ने बालकों सहित छत पर चढ़ कर यों कहना शुरू किया, हाय बड़ी आग लगी, अमुक का मकान जल गया! वह देखो आग बढ़ गई।

लोगों की सहायता से और पुलिस वालों की मदद से आग तो बुझ गई परन्तु बहुत से घरोंकी राख हो गई। मातायें अपने बाल-बच्चों को ले कर नदीके पुल पर आ खड़ी हुई। हरएकने अपना दुखड़ा एक दूसरे को सुनाना शुरू किया। परन्तु वह देखो! एक सुकुमारी के पास जमघट लगा है, वह अबला हताश होकर रुदन कर रही है। किसीने समझा कि इसका इकलौता पुत्र जल मरा होगा, किसीने कल्पना की कि इसका पति छतके नीचे दब मरा होगा। किन्तु उस दया पात्र अबला की अविरल अश्रुधारा ने लोगोंके हृदय को पिगला दिया। उस अबला का नाम काशीबाई था। इस आगमें उसका सर्वस्व-घरबार भस्म हो चुका था। केवल एक सुफेद साड़ी उसके उज्वल तन पर जो उसने पहनी हुई थी वस्त्र में वही उसके पास थी और वर्तन, चार पाई आदि घरकी सामग्री उस जले भुने मकान की पड़ी हुई छत के नीचे विरूप में दबी पड़ी थी।

दुखिया अबला की दयामय दशा देख कर कई सज्जनोंने उसे अपने घर ले जाने की प्रार्थना की, परन्तु अज्ञात वासमें वह अनाथ

युवती कैसे जा सकती थी? उसे रोते धोते वहाँ पर ग्यारह बज गये। अन्तमें उसने पासवाली धर्मशाला में जाना स्वीकार किया। वहाँ उसे एकान्त स्थान मिल गया। परन्तु उसकी दारुण दशा, उसका हृदय विदारक और मर्म भेदि करुणामय आर्तनाद, उसके अश्रुधारा का निरन्तर बहता हुआ प्रवाह कानों को भेदन करता था।

दैव योग से उसी धर्मशाला में अपने नामके अनुसार गुणोंको धारण करनेवाली एक विद्यादेवी नामकी सुयोग्य स्त्री उतरी हुई थी। उससे काशीबाई की करुणामय दशा न देखी गई। वह उस के दुःखसे दुःखित हो उसके पास आई और उसे मीठे शब्दों में धीरज देने लगी। विद्यादेवी के दिलासा देने पर काशीबाई का दुःख-पूर्ण हृदय अधिकाधिक उमड़ रहा था। दुःखसे परिपूर्ण उस अभागिनी के हृदय के उफान को अश्रु द्वारा ही बाहर निकलने का मार्ग मिला था।

श्रीमती विद्यादेवी अपने पतिके साथ पंजाब जा रही थी। बाल बच्चों को अपने पास रख कर उसने स्वामी से सविनय प्रार्थना की कि आप दूसरे कमरे में जा कर विश्राम करें। इस बाईको मेरे पास छोड़ दें, मैं इस बिचारी को समझा बुझा कर सुला दूंगी। पतिके लिये दूसरे कमरे में बिस्तर आदिका प्रबन्ध कर श्रीमती विद्यादेवी ने काशीबाई के लिये चारपाई और वस्त्रोंका प्रबन्ध किया। विद्यादेवी ने बरामदे में अपने पास ही काशीबाई को सोने का आग्रह किया। स्त्रियोंमें इतनी कोमलता होती है कि उन्हें अपनी जाति पर सहसा विश्वास हो जाता है। इस समय नौकर भी जलपान करने चला गया था। अब विद्यादेवी का अपनी ओर सच्चा प्रेम भाव देख काशीबाई भी रोने धोनेसे कुछ शान्त हुई। बरामदे के आगे लकड़ी चारखाना पटड़ियाँ लगी हुई थीं। दरवाजा बन्द कर लिया गया। जब विद्यादेवी ने देखा कि इस वक्त काशीबाई शान्त चित्त हो कर अपने दुःखका विचार कर रही है तब उसने मीठे शब्दों में इस प्रकार अपना कथन प्रारंभ किया। बहिन! बेशक मैं पंजाबमें रहने वाली हूँ, आप महाराष्ट्र में निवास करती हैं, परन्तु हम दोनों स्त्रियाँ हैं। अपनी जातिके दुःखसे दुःखित होना और बनसके

वहाँ तक उस दुःखको दूर करने का प्रयत्न करना यह हरएक मनुष्य का कर्तव्य है। मुझे तुम्हारे दुःखसे बड़ा दुःख होता है। बहिन! हमारे इस देशमें अबलाओं के लिये सच पूछो तो ताजिन्दगी पराधीनता की बेड़ियें कायम ही रहती हैं। उसमें भी विधवा औरतों के लिये तो जगह जगह आपत्ति की घन घटायें छाई रहती हैं। हमारे इस पवित्र देशमें कि जहाँ पर पूर्वकाल में स्त्रीजाति के सुखके लिये उतना ही विचार किया जाता था जितना कि पुरुष जातिके सुख के लिये, आज पुरुषों ने अपने आधे अंग, अपनी आधी शक्ति स्त्रीजाति को सर्वथा भुला कर सिर्फ अपने ही निजी स्वार्थको संपादन करने में कमर कसी हुई है। इसी कारण आज यह देश स्त्री जातिकी दुःखभरी आह से गुलामी के बन्धनों में जकड़ा हुआ विदेशियों का मुँहताज बना हुआ है। बहिन! इस देशमें यहाँ तक अज्ञानांधकार छाया हुआ है कि हमें उच्च शिक्षण देना तो दूर रहा किन्तु साधारणतः प्राथमिक शिक्षण देना भी हमें व्यर्थ समझा जाता है। यदि हमारे शिक्षण को पुरुषों के समान ही उन्हों ने महत्व दिया होता तो हम स्त्री जाति की आज ऐसी सोचनीय दुर्दशा क्यों होती? यदि हमारे देशका स्त्री समाज सुसंस्कारी और शिक्षित होता तो आज देश सेवा में कितना उपयोगी हो पड़ता? बहिन! यदि सच पूछो तो हमारे दुःखका कारण पुरुषों की हमारे प्रति हलकी भावनायें और सर्वथा उपेक्षा भाव ही है। जो पुरुषोंने हमें अपने समान ही रक्षणीय समझा होता, जो उन्हों ने अपने दुःख सुखके समान ही हमारा दुःख सुख समझा होता और यदि पुरुष जातिने स्त्री जातिको अपने सुखका साधन नहीं किन्तु अपने विकास का साधन समझा होता तो अवश्यमेव इस भारतभूमि को आज स्वर्गसे बढ़ कर सुख संपन्न देखा होता। परन्तु हाय दुःख है कि जिन जीवित देवियों की पूजा होनी चाहिये आज वे जगह जगह अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित हो कराह कर जीवन बिता रही हैं।

बहिन! मैं स्त्रीजाति हूँ अतः मैं तुम्हारे दुःखका अनुभव कर सकती हूँ। मेरे पति मेरे विचारों से सहमत हैं। वे अक्सर्‌ अखि-

स्टेन्ट कमिश्नर हैं। हम लोग स्त्री जातिके दुःख दूर करने के अनेक उपाय सोच रहे हैं। जहाँ से मैं आ रही हूँ वहाँ भी हमने एक पाठशाला खोल रक्खी है। यदि आपके दुखड़ों का पता लग जाय तो उन्हें दूर करने के उपाय शोध निकालना कोई बड़ी बात नहीं है। तिस पर आप तो कुछ पढ़ी लिखी भी मालूम होती हैं। क्या मैं जान सकती हूँ कि आपको क्या क्या कष्ट हैं?

काशीबाई—देवीजी! अगर एक कष्ट हो तो बतलाऊं! मैं आप की अत्यन्त अनुगृहीत हूँगी यदि आप मुझे जीवन यात्राको समाप्त करने में सहायता दें, मेरा दुःख एक नहीं है! मैं निस्सन्तान और निस्सहाय हूँ। HIGH FAMILY (उच्च घर) में जन्म लिया था परन्तु शूद्रों से भी भ्रष्ट मेरा जीवन हो गया। आप को क्या बतलाऊं इतना कह कर काशीबाई फिर से रोने लगी। दुःखी मनुष्यों का जब धैर्य नहीं रह सकता तब रोने के सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। उस समय उन दुःखियों का रुदन करना ही उनका बल समझा जाता है। कहा भी है कि "अबलानां रोदनं बलम्"

विद्यादेवी उसकी खाट पर बैठ कर और उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर बोली बहिन! मैं नहीं जानती थी कि आप ऐसी शुद्ध आर्य भाषा बोल सकती हैं और आप अंग्रेजी भी जानती हैं। भला आप पढ़ी लिखी होकर इतनी अधीर क्यों होती हैं। आप तो महाराष्ट्र में जन्मी हैं, भला फिर आप यह हिन्दी कैसे पढ़ीं?

काशीबाई—हिन्दी तो मैं नागपुर के फीमेल ट्रेनिङ्ग स्कूल में पढ़ी थी।

विद्यादेवी—तो क्या आप अध्यापिका का कार्य भी करती हैं?

काशीबाई—नहीं मैंने कभी भी अध्यापिका का कार्य नहीं किया।

विद्यादेवी—अच्छा आपने अंग्रेजी का कब और कितना अभ्यास किया है?

काशीबाई—मिडल तक की अंग्रेजी तो मैंने घर पर ही पढ़ी थी और शेष मेडिकल कालेज में जाकर।

विद्यादेवी—तो क्या आप डाक्टरी भी जानती हैं ?

काशीबाई—हाँ कुछ जानती हूँ परन्तु अभ्यास कम है।

विद्यादेवी—यहाँ आपका कोई सम्बन्धी है जिसके पास रहती हो ?

काशीबाई—(एक लंबी स्वास लेकर) देवि ! आप सौभाग्यवती हैं, मैं दुश्चरित्रा और कलंकित हूँ । मैं अपनी पापमय विचित्र कहानी आपको किस मुखसे सुनाऊँ ? मेरा कलंकित जीवन सुनने से आपको मुझ पर अतिशय घृणा और तिरस्कार पैदा होगा। आपके पवित्र कान मेरी पापमय कथा सुनने को उत्सुक ही न होंगे। हाँ यदि उद्धार होता देखूं तो अपने कालिमायुक्त पापी हृदय को चीर कर आपके सम्मुख रख दूं, परन्तु—

विद्यादेवी—बहिन ! आप पूर्ण विश्वास रक्खो। आपकी योग्यता को देख कर आपकी ओर मेरा हृदय पाशबद्ध हो चुका है। मैं आपका पूर्ण प्रबन्ध करूंगी, आप जरा भी चिन्ता न रखिये और जब तक प्रबन्ध नहीं हो सकेगा मैं सखी या सहेली बना कर आपको अपने पास अपने प्राणों से भी प्यारी समझ कर रक्खूंगी। बहिन! पाप किस से नहीं होता ? और फिर हम अबलाओं को तो बुरी तरह से रौंदा और कुचला जा रहा है। आप निशंक हो कर अपना आदिसे अन्त तक सर्व वृत्तान्त सुना देवें।

काशीबाई—(घड़ी देख कर) देवि ! एक बजने आया है, मेरी कर्म कहानी लंबी और मर्म भेदी है। मुझे भय है कि आपकी निद्रा में विघ्न पड़ेगा। मैं तो मुसीबत की मारी प्रायः सदैव रातको रोती हुई तारे गिनती रहती हूँ।

विद्यादेवी—नहीं आप मेरा ख्याल न करें। एक क्या चाहे भले चार क्यों न बज जायँ, मैं आपके दुःखको बाँटना चाहती हूँ आप प्रथम से ही सुनावें।

काशीबाई—अच्छा बहिन ! आपका शुभ नाम क्या है ?

विद्यादेवी—मेरा नाम विद्यादेवी है।

काशीबाई—विद्यादेवी बहिन! तो फिर मैं विश्वास करलूं कि मेरे शब्द एक धार्मिक जीवन वाली देवीके कानों पर पड़ेंगे और यदि वह मेरी सहायता न करेगी तो कमसे कम वह मुझे घृणा या तिरस्कार की दृष्टिसे तो न देखेगी।

विद्यादेवी—(प्रेमसे गलेमें हाथ डाल कर) क्या कहती हो घृणा? मैं तो अपनी सखी बना चुकी हूँ। आजकी रातसे ये दोनों शरीर कभी भी पृथक् न हों मैं यह उस भगवानसे प्रार्थना करती हूँ।

सचमुच ही विद्यादेवी काशीबाई की योग्यता पर मुग्ध हो गई थी। विद्यादेवी वास्तव में एक सहृदया आदर्श गृहिणी थी। काशीबाई के दुःखसे सचमुच ही उसे बड़ा दुःख हुआ था। क्यों न हो ऐसी दुखिया अबलाओं पर किसको तरस न आय?

काशीबाई—तब सुनिये बहिन! मैं अपनी दुःखद कथा सुनाती हूँ। मैं जन्म से महाराष्ट्री हूँ। एक उच्च ब्राह्मण घराने में मेरा जन्म हुआ था। उस घरमें धन संपत्ति ऐश्वर्य की भी कुछ कमी न थी। मेरे पिता इंजीनियर थे। उन्हें अनुमान १०० रु. वेतन मिलता था। मेरे तीन भाई थे, एक बैरिस्टर, एक I. M. S. और तीसरे बम्बई हाईकोर्ट के ADVOCATE थे। मैं उनकी अकेली कनिष्ठा और लाडली बहिन थी। वृद्धावस्था में माता पिताने जो मुझसे प्रेम किया वह पुत्रोंसे भी नहीं था। कहते हैं कि जब मेरी शादी हुई तब बड़ा रुपया खर्च किया गया था। मेरी आयु उन दिनों सात वर्षकी थी। परन्तु मुझे बहुत ही कम याद है। मैं आठवें ही वर्ष में विधवा हो गई, इतना कहते हुये काशीबाई की आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और उसने दोनों हाथोंसे अपने मुखको ढाँप लिया।

विद्यादेवी—तब क्या आप ससुराल में ही रहीं?

काशीबाई—नहीं मुझे तो याद भी नहीं कि मैं कैसे और कब ससुराल गई थी। मैं अपने बापके ही घर पर रही। मेरे एक भाईने बड़े प्रयत्न से मेरे पढ़ने का उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। मुझे पढ़ाने को दो मास्टर और एक अध्यापिका नियुक्त थे। मैं

अपने पढ़ने गुनने में वैधव्य के कष्टोंको सर्वथा भूल गई थी। माता मुझे सुकुमारी जान कर अतिप्रेम से रखती थी। भाई तथा पिता नित्य नयेसे नये बाजे आदि सामान मेरे लिये लाया करते थे। इस प्रकार सुख पूर्वक मेरी उमर ११ वर्षकी हो गई। हमारे देश में अन्य देशों के समान स्त्रियोंके लिये परदा नहीं है। मैं प्रायः नौकरों को लेकर या अकेली ही भाईके स्थान पर जाया करती थी।

इन दिनों एक सुन्दर युवक पोस्ट आफिस में नौकर होकर हमारे नगरमें आया। उसने मेरे चढ़ते हुये लावण्य को देखा। मैं उसका नाम नहीं बतलाना चाहती, पर लोग उसे शुक्लजी कहते थे। एक दिन मैं उस गली में से जा रही थी उस वक्त मुझे देख कर उस युवक ने मुझ पर कंकरें फेंकीं। मैं चुपचाप अपने मकान की ओर बढ़ गई। लज्जावश यह बात मैंने किसीसे न कही, परन्तु मेरी उस अनुचित लज्जाने मेरे जीवन के लिये विषका काम किया। दो चार दफा जब मैं उस रास्तेसे निकली तब उसने उसी तरह मुझे अकेली देख कंकरें फेंकीं। इतना होने पर भी मैं चुप ही रही, इस से अनीति मार्गमें धसने का उसका होसला बढ़ गया। बहुत दिन व्यतीत हो गये, अब मैं भी बहुत सावधान हो गई थी। हमेशह घरसे बाहर जाते समय मैं नौकर या परिचारिका को साथ रखती थी।

एक दिन जब कि घर पर नौकर और परिचारिका कोई भी न था, भाईके मकान से दैववशात् मैंने एकलीने ही रातके करीब ९ बजे घर आनेका साहस किया। घर आते वक्त रास्ते में उसी युवकने मुझ से छेड़ छाड़ की। मैंने उसे गाली सुनाई। परन्तु न मालूम उसे कैसे साहस हुआ उसने मुझे एकदम पकड़ लिया और बल पूर्वक खींच कर वह मुझे अपने घरमें ले गया। बस उसी निन्दित घड़ीसे मेरा पतन हुआ। मैंने बड़ा शोर मचाया। उसने मुझे अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। तारुण्य वय और एकान्त स्थान फिर मैं तो दुर्बल थी वशमें आ गई। घर देरसे पहुँची। मुझे अपने पाप कृत्यपर तिरस्कार आया। माता पिता क्या जानते थे?

जब दूसरे मास रजोदर्शन न हुआ तो मैं बहुत घबराई। मुझे अपने पापको छिपाते छिपाते लगभग तीन महीने बीत गये। मैंने अब घरसे बाहर जाना छोड़ दिया। पढ़ने से भी मेरी रुचि उठ गई। सिर दर्दके बहाने मैं खाट में ही पड़े पड़े दिन काटने लगी। चिन्ताके मारे मुझे कुछ भी न सूझता था। यह बात मैं किस के सामने और किस मुँह से कह सकती थी?। जब मुझे चारों ओर से चिन्ताने जकड़ लिया और कोई भी उपाय न सूझा तब मैंने लाचार हो अपनी एक सखी से सब सत्य हकीकत कह दी। दुर्भाग्यवश उसने मेरी सहायता तो न की, उल्टा मेरी माता से कह दिया। यह बात सुन कर माताने एकदम बड़ा भयानक रूप धारण कर लिया। वह दिनरात मुझे कोसती और मेरा तिरस्कार करती। उस के हृदय से उस दिनसे मेरे ऊपर का ममत्व उठ गया।

होते होते यह बात मेरे पिताको भी मालूम हो गई। उन्होंने कुछ परामर्ष किया। वे वैद्यों और हकीमों से नयी नयी दवायें लाते और मुझे जबरदस्ती पिलाते। परन्तु गर्भपात न हुआ। पाँचवा महीना बीत गया। गर्भ के लक्षण स्पष्ट हो गये। मुझे घरके सम्बन्धी विषके समान कड़वे लगने लगे और मैं उनकी आंखोंकी तारा होने के बदले कांटा बन गई। मेरी ओर कोई देखना भी न चाहता था और मुझे तो दूसरों को मुँह दिखाना मानो मृत्युके समान कष्टकारी हो ही गया था। उस समय जो मेरे हृदय में व्यथा होती थी सो मैं ही जानती थी। जी चाहता था कि यदि जमीन फट जाय तो मैं जीती ही समा जाऊं।

इसी अवसर में मेरी माताने यात्राकी तैयारी की। उसने केवल एक ही नौकर और एक ही नौकरानी साथ में ली जब उसने मेरे कपड़े और बिछौनेको निकाला उसी वक्त मेरा माथा ठनका। दूसरे दिन चलने से आधा घंटा पहले मुझे कहा गया कि चलो मथुरा तीर्थकी यात्रा कर आवें। मैं माके सामने बहुत गिड़गिड़ा कर रोई, परन्तु सुनता कौन था। मैंने बीमारी और अपनी दुर्बल दशाकी ओर ध्यान दिलाया परन्तु माताके सिवाय उस समय वहाँ कोई था

ही नहीं जो मेरी बात पर ध्यान देता। भाई और पिता पहिले ही से संकेत करके खिसक गये थे। मैं यात्रा करने को या अपने किये को भरने को माताके साथ हो ली। मथुरा पहुँच कर एक मकान किराय पर ले लिया गया। डाक्टरों और वैद्योंको बुलवाया गया।

हाय! मेरी वह दशा कैसी सोचनीय थी। खाना पीना बन्द सा हो गया। न जाने क्या क्या दवायें खाईं। कितनी ही दफा रक्तके प्रस्राव से मैं घंटों तक बेहोश हुई परन्तु न तो ये कम्बख्त प्राण ही निकले और न ही वह गर्भस्थ बालक मरा। अन्तमें मुझे दशवाँ मास शुरू हुआ। प्रसव में पुत्री पैदा हुई। उसे मारनेका प्रयत्न किया गया, किन्तु वह भी न मरी। मैंने मातासे विनीत भावसे अनेक प्रार्थनायें कीं पर उस ने एक न मानी। उसका क्रोध मानो चिड़ाई हुई नागन के समान था। उसके रक्त नेत्रोंद्वारा न तो मातृस्नेह ही प्रतीत होता था और न ही शान्त हृदयका बोध मालूम होता था। मैं डरके मारे उसके सामने बोलती भी न थी।

अब मथुरा से घरकी ओर प्रयाण हुआ। रास्तेमें मणिकपुर स्टेशन आया, वहाँ पर ही हमें संध्या हो गई थी, वहाँ पर ही हम उतर गये।

स्टेशन के बाहिर एक वृक्षके नीचे डेरा लगाया। वहाँ पर ही भोजन बनाया गया। रातको एक पासके मकानमें जा सोये और यह निश्चय किया गया कि सुबह ९ बजेकी गाड़ीसे घर जायेंगे। पिछली रात अनुमान ४ बजे मेरी आंखें खुलीं, देखा तो न कोई वहाँ पर नौकर है और न माता। वे मुझे सोतीको छोड़ वहाँसे चले गये। मैंने अपने आपको उस निर्जन स्थानमें एकली ही पाया। मेरी गोदमें अबोध बालिका थी, मेरे पास न तो कोई वस्त्र और न कुछ रुपया था। वह दिन सारा मैंने रोते रोते निकाला। अनेक प्रकारसे आत्मघात करनेका प्रयत्न किया, परन्तु ये कठोर प्राण भी न निकले।

अन्तमें मैंने उसी हत्यारे को पत्र लिखा जो मेरी कन्याका पिता और मेरी इस सोचनीय दशाका मुख्य कारण था। वह वहाँ पर आया और मुझे ले गया। भला आपको तो इन बातोंकी खबर

ही क्या कि एक व्यभिचारी और दुराचारी पुरुष के साथ रहने में क्या क्या कष्ट और मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। उसने मुझे एक गाँव में मकान किराये पर ले दिया और आप नौकरी की तलाश में निकला। उसे ४० रुपये मासिक की नौकरी मिल गई। अन्तमें उसके घरवालों को मालूम हो गया। उन्होंने मुझे बुलवाया। उस की औरत और बच्चे घर पर मौजूद थे। मैंने हरएक प्रकार से उन की सेवा की। उसकी स्त्रीके लिये मैंने नीचसे नीच काम किया, परन्तु सौकन का डाह कब चैन लेने देता था। मुझे रोज मार पीट पड़ने लगी। अन्तमें मैं अत्यन्त तंग होकर वहाँ से एकली ही भाग निकली और गिडगिड़ा कर बड़ी मुश्किल से सौ रुपये लिये।

वहाँसे मैं नागपुर पहुंची और फीमेल ट्रेनिङ्ग स्कूलमें दाखिल हो गई। वहाँका कोर्स दो सालका था। वहाँ पर मुझे अभ्यास करते एक वर्ष और तीन मास व्यतीत हो गये। मुझे एक स्कालरशीप भी मिलने लगी। मैं अपनी क्लासमें सबसे पहिले नम्बर रहती थी। आश्रम की दिनचर्या भी अनुकूल थी। अब मैं समझती थी कि यहाँ मेरा जीवन सुधर जायगा, परन्तु इतने ही में एक आपत्ति और आ पड़ी। शुक्लजी मुझे मिलने और देखने को आये। खैर आज्ञा लेकर मैं उन से मिली भी सही। वह मेरे कमरे में कुछ देर तक रहे। आश्रम का नियम था कि रातको ९ बजे बाद वहाँ पर कोई पुरुष न रहे। मैंने उनसे जानेको कहा परन्तु वे न गये। कामातुर पुरुष भला काँहेको मेरी प्रार्थना पर ध्यान देता? वह मेरी खाटके नीचे छिप गया और घंटों नीचे रहा। मैं भी बलात् इस पापमें संमिलित थी। अकस्मात् १० बजे हमारी सुपरिनटन्डन्ट मिस साहिबा मेरे कमरे में आई। बस भाण्डा फूट गया और साथ ही मेरा कर्म भी फूटा।

मुझे दूसरे ही दिन बोर्डींग और स्कूल से खारिज कर दिया गया। मैं रोती धोती फिरसे पापके जीवन को उनके साथ व्यतीत करने को आई। कुछ दिनों बाद फिर किसी प्रकार कुछ रुपया इकट्ठा कर मैं बम्बई में आई और वहाँ डाक्टरी पढ़ने लगी। ट्यूशन ले कर और

कुछ उन की सहायता से मैंने बम्बई में तीन साल व्यतीत किये। परन्तु मेरे दुर्दैववश फिर से शुक्लजी वहाँ पर भी आ पहुंचे। मैं अपनी बद-नामी और उनकी मार पीटसे डर कर फिर वापिस आई। अब अनुमान आठ नव महीने से फिर मैं इस अकोला में ही हूँ। मेरी किताबें, मेरे वस्त्र और मेरी जो कुछ संपत्ति थी सो इसी घरमें थी जो इस समय आगमें जल गया। अब ऐसी अवस्था में मेरे लिये सिवाय मृत्युके अन्य कोई शान्ति देनेवाली वस्तु नहीं है। मेरी आयु इस समय केवल २५ वर्षकी है, परन्तु अन्तिम सात वर्षों में मैंने खूब देखा और अनुभव किया कि किस तरह रक्षक भक्षक बन जाते हैं। मेरे लिये जगत अन्धकारमय है। इस संसार में अब मेरा कोई भी हितचिन्तक नहीं है।

जिसने मेरे धर्म और जीवन को नष्ट भ्रष्ट किया उस पर इतना भी विश्वास नहीं कि वह मुझे रोटी तकका सहारा दे। मैं अपनी जीवनलीला पर वारंवार विचार कर एक मात्र रोने धोने में ही अहर्निश अपने दुःखको काटती हूं। बाल्यावस्था में मैंने राजकुमारियों के समान सुख पाया था और उससे विपरीत अब मैं युवावस्था में गतसर्वस्व एक भिखारन से भी बढ़ कर दुःखोंका अनुभव कर रही हूँ।

विद्यादेवी—बहिन! पापकी स्मृति निश्चित ही मनुष्य के मनको उद्विग्न कर देती है। अब आप शान्त होकर एक दो घंटे विश्राम कर लें। मैं आपके लिये यथेष्ट प्रबन्ध कर दूँगी और यदि आप अपने जीवन को अपनी बहिनों की सेवामें अर्पण करना चाहेंगी तो आपकी समुन्नति के साथ ही आपसे अन्य बहिनों को भी बड़ा लाभ होगा और तदर्थ अनेक साधन मिल जायँगे।

सुबह उठ कर विद्यादेवी ने अपने पतिसे सब वृत्तान्त सुना कर उसके बारेमें मशवरा किया। उन्होंने सहर्ष उसे सहायता देनी स्वीकार की। रातकी गाड़ीसे काशीबाई अपना पवित्र आर्य-जीवन व्यतीत करने के लिये श्रीमती विद्यादेवी के साथ लाहोर को रवाना हो गई।

इस प्राचीन पवित्र भूमिमें आज स्त्रियोंके लिये कितना अन्धेर छा रहा है ? अबलाओं पर कैसा अत्याचार किया जाता है ! औरतें चाहे कितनी ही गई गुजरी क्यों न हों परन्तु बिना बेईमान शैतान पुरुषोंके बहकाये वे अपने धर्मसे कदापि नहीं डिग सकतीं। औरतों का जीवन नष्ट करना, उनका चारित्र बिगाड़ना यह पुरुषजाति का काम है। किसी किसी नीच वृत्तिवाले अधम पुरुषों ने तो अपने जीवन में सैकड़ों स्त्रियोंके पवित्र जीवन नष्ट किये होंगे। कितने एक दुराचारी पुरुष तो कई एक विधवाओं को अपने पंजेमें फसा कर उनकी बुरी तरहसे मट्टी पलीद करते हैं, उन्हें वेश्या तककी अधम स्थितिको पहुँचा देते हैं। यह बात सत्य है कि दोनों ही हाथोंसे ताली बजती है, परन्तु समाज केवल स्त्रियोंको ही दण्ड क्यों देता है ? निराश्रिता स्त्रियाँ ही क्यों बिरादरी और घरसे निकाली जाती हैं ? चरित्र भ्रष्ट पुरुष जिनका व्यभिचार औरतों के मुकाबले पचास या सौ गुना अधिक होता है वे क्यों नहीं समाज की ओरसे सजा पाते ? समाज उन बेईमानों के सामने क्यों नहीं गरदन ऊँची करता ? समाज उन पापकी मूर्तियों, पाखंडी, कुचरित्र पुरुषोंका क्यों तिरस्कार नहीं करता ? इस प्रकारका आंख मिचौना करना यह उन पापियों को स्त्रियोंका सर्वनाश करने के लिये सहाय देना और असहाय अबलाओं पर घोर अत्याचार करना है। जिस समाज में ऐसा न्याय करनेवाले अगुवा हों उस समाज के जीवन में व्यभिचार की दुर्गन्ध क्यों न उड़ेगी और अनाथ अबलाओं पर घोर अत्याचार क्यों न होंगे ?

हमारा समाज कि जिसे हम मूर्खतावश अतिउत्तम समझ बैठे हैं और जिसकी पवित्रता पर फूले नहीं समाते वह बिलकुल निर्जीव निर्बल और सर्वथा अशिक्षित मनुष्यों का टोला है। इस प्रकार के समाज या संघको शास्त्रों में अस्थिसमूह (हड्डियोंका ढेर कहा है) यदि सच पूछो तो इस समाज को सती सियोंकी आह और कुचरित्र स्त्रियोंका पाप भस्मीभूत कर रहा है और यदि इस भयंकर स्थितिको सुधारने के लिये लोगोंने कुछ भी ध्यान न देकर पूर्ववत् अधम दशामें ही जीवन बिताया तो यह आह थोड़े ही

समय में समाज को जला कर राख कर डालेगी। कसाई के हाथोंसे कटते हुये पशुओं से भी अत्यधिक दयाजनक स्थिति आज हमारे भारत के उच्चमें उच्च समाजों में विधवाओं की है। पवित्र और धर्मनिष्ठ भारत वर्षमें कटते हुये असंख्य निरपराधी पशुओं और उनसे भी बुरी तरह जीवन पर्यन्त रोरो कर मृत्युका सिकार बननेवाली लाखों विधवाओं की कराहना से ही आज सारा देश सुखसे वंचित होकर अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव कर रहा है और यदि यही दशा रही तो अन्तमें उन निरपराधी आत्माओं की कराहना इस देशका सर्वनाश किये बिना न रहेगी।

पाठक महाशय! अपने इर्द गिर्द दृष्टि डाल कर देखो कितनी बाल विधवायें भारत में काशीबाई के समान अपने कीमती जीवन की कदर्थना कर रही होंगी। जिन्हें सांसारिक वासनाओं की गन्ध नहीं, पति पत्नी या गृहस्थ-जीवन क्या चीज है इतना जानने का ज्ञान भी अभी जिनमें नहीं आया और जो सुहाग तथा वैधव्य के शब्दार्थ को भी नहीं जानतीं ऐसी संख्याबद्ध भारत-ललनायें इस फरजीयात बाल वैधव्य के भारके नीचे दब कर आज अपने अमूल्य जीवनरत्न को नष्ट कर रही हैं और ऐसी परिस्थिति में अकालमें तेरहवें मासके समान उन पर सामाजिक अत्याचार और भी सोचनीय है।

यदि देशनायक इनके जीवनमें से अज्ञानता निकाल दें और इनके लिये कुछ भी मध्यम मार्ग निर्माण कर दें तो क्या सैकडों और हजारों विधवायें पूर्वोक्त कष्टोंसे मुक्त होकर देशहित करने में उपयोगी न बन सकें? अवश्य बन सकती हैं। परन्तु दूसरों के दुख पर दृष्टि ही किसकी जाती है? आज सचमुच ही भारत में गायोंके समान ही इन विधवाओं की दशा देख पड़ती है। इनका दुःख दूर करनेका समाज के नेताओं को कोई मार्ग ही नहीं सूझता और जो इनके बारेमें गहरा विचार करनेवाले सुधारकों के मनमें इनके दुःख दूर करनेका उपाय सूझता है उसे पुराने खुर्राट पसंद नहीं करते।

गृहस्थाश्रम में गृहस्थी मनुष्यों के लिये सबसे श्रेष्ठ और कुदरत के नियम के अनुसार उत्तम गृहस्थधर्म तो यही है कि जिस प्रकार स्त्रियोंके लिये एक पतिव्रत है उसी प्रकार पुरुषों के लिये भी एक पत्नीव्रत हो। बाल्यावस्था में पति मर जाने पर उन्हें विकार पोषक संयोगों में रख कर उनसे फरजीयात वैधव्य की कठिन तपस्या कराना यह मुग्ध स्त्रीजाति पर सरासर अन्याय है, इस बातको तमाम विचारशील मनुष्य सहज ही में समझ सकते हैं। गृहस्थाश्रम में रह कर पवित्र जीवन बिताते हुये जो स्त्री पुरुष अपने जीवन में एक ही दफा वास्तविक विवाह करता है अवश्य ही वह आदर्श-गृहस्थ जीवन बितानेवाला होनेके कारण दूसरों का आदरणीय और वन्द्य गृहस्थ कहा जाता है। परन्तु पुरुष अपनी वासनाओं को तृप्त करने के लिये चाहे जितनी दफा विवाह करें, चाहे जितनी दफा दुल्हे बन कर कंगना बाँधें और स्त्रियोंके लिये उस के माता पिता गाय भैंसके समान उसे एक दफा जिसके हाथों सौंप दें उसकी मृत्युके बाद वह लाचार होने पर भी दूसरा विवाह कर ही न सके यह सिद्धान्त गहरा विचार करनेवाले विचारशील विद्वानों को सर्वथा अग्राह्य है। अपनी मानसिक निर्बलता के कारण ब्रह्मचर्य न पलने से और अपने वासनाजन्य शारीरिक तुच्छ सुख के लिये पुरुष पुनर्लग्न—अपना दूसरा विवाह कराने की छूट रखते हैं और उसे शास्त्र सम्मत मानते हैं, परन्तु इसी प्रकार की छूट स्त्रियोंको भी दी जाय तो बेशक यह न्याय कहा जा सकता है। यदि सच पूछा जाय तो इस विषय में स्वार्थी मनुष्य शास्त्रोंका दुरुपयोग कर रहे हैं। वे शास्त्रोंमें से उतनी ही बातें ढूंढ कर जनता के समक्ष रखते हैं जितनी उनके अनुकूल होती हैं। उसी शास्त्रमें यदि कोई उनके प्रतिकूल उल्लेख हो तो वे उसे कानोंसे सुनने तक को भी तैयार नहीं होते। जिसका लक्ष्यबिन्दु अपने ही स्वार्थ पर जम जाता है वह मनुष्य शास्त्रका अर्थ भी अपने स्वार्थमें ही करता है।

स्त्रियोंकी ओरसे कहा जाता है कि सामाजिक शास्त्रकी रचना करने वाले पुरुष ही थे, अतः उन्होंने अपने ही सुभीते के अनुकूल

शास्त्रकी रचना की है। यदि शास्त्रोंकी रचना करने वाली स्त्रियाँ होतीं तो वे भी पुरुषों के समान अपनी अनुकूलता के अनुसार शास्त्रोंमें उल्लेख करतीं और जो आज उनका दरजा है सो पुरुषों के लिये लिखतीं।

यह हम भली प्रकार जानते हैं कि जो जाति बहुत समय से अपनेसे निर्बल जाति के अधिकारों को दबाये बैठी हो, जिसे यह पूर्ण विश्वास हो कि अमुक हमसे नीची जाति मात्र हमारी सेवा करने के लिये ही, हमारे सुखका साधन तरीके ही जी सकती है, उसे हमारे समान सुख भोगने का अधिकार ही नहीं वह जाति उस दुर्बल जातिका पक्ष करनेवाले न्यायशील मनुष्यकी बातों पर सदा उपेक्षा ही किया करती है इतना ही नहीं किन्तु वह अपने सिद्धान्त या मनमानी कल्पना के अनुसार उसकी प्रचलित रूढीसे प्रतिकूल विचार प्रगट करनेवाले या आन्दोलन करनेवाले पर अनेक प्रकार के आक्षेप भी किया करती है और वह सत्य बातों पर भी कभी ध्यान नहीं देती।

बालविधवाओं के फरजीयात वैधव्य से उन्हें विवश होकर किस प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है, उन्हें लाचार होकर किस प्रकारके प्रसंगों में अपने जन्मसिद्ध महत्वपूर्ण लज्जागुण का परित्याग करना पड़ता है और उससे किस प्रकारके भयंकर अनर्थ कारक परिणाम उपस्थित होते हैं यह सब कुछ प्रत्यक्ष देखते हुये भी पुरुषजाति यदि अपने अन्तःकरण में इस बात पर कुछ भी विचार न करे और अपना बचाव करने तथा उनकी इससे भी भयंकर दशा लानेके लिये इस प्रगतिशील जमाने में भी मात्र शास्त्रोंका ही बहाना लिया करे तो समझ लेना चाहिये कि उसका अन्तःकरण विचारशक्तिसे सर्वथा रहित है।

यदि विचार किया जाय तो शास्त्र भी मनुष्य जातिके कल्याणार्थ ही लिखे गये हैं। उन्हें विवेक बुद्धि पुरस्सर सांगोपांग पढ़ना चाहिये, उन वचनों पर गहरा विचार करना चाहिये और उसके साथ ही देश कालकी परिस्थिति को भी देखना चाहिये। शास्त्रकारों के वचन सापेक्ष होते हैं। वे देशकाल के अनुसार ही आगे बढने

की मानवजाति को शिक्षा दिया करते हैं। जिस समय शास्त्रोंकी रचना की जाती है उस समय उस वक्तकी वर्तमान-कालीन परिस्थिति को देख कर ही की जाती है। उस समय के देशकाल की परिस्थिति सब जगह और सर्व देशकाल में कदापि कायम नहीं रहती। मुगलों के समय की परिस्थिति से आज गवर्मेन्ट के साम्राज्य की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। उस समय में हमें अपनी मान मर्यादा या अपने सामाजिक जीवन और अपने धर्मका रक्षण करने के लिये जो बालविवाह आदि करना पड़ता था आज देशकाल की परिस्थिति सर्वथा उससे बदल जाने के कारण वैसा ही करते रहने से हमारा सामाजिक जीवन प्रायः नष्ट भ्रष्ट होता जा रहा है। इससे आप भली प्रकार समझ सकेंगे कि वैसी परिस्थिति में रचे हुये सामाजिक शास्त्र सदैव उसी प्रकार उपयुक्त नहीं हुआ करते। प्राचीन धर्माचार्यों ने सामाजिक एवं धार्मिक शास्त्रों की रचना विकास क्रमके नियमानुसार ही की थी। उनका इरादा भावी देशकाल की परिस्थिति के विपरीत शास्त्र रचना करके समाज की जड़ काटने का न था।

उस समय विवाह की प्रणाली मात्र शारीरिक सुखके लिये न थी, परन्तु पवित्र गृहस्थाश्रम में रह कर पवित्र गृहस्थ जीवन बिताते हुये एक दूसरेका परस्पर सहायक बन कर आत्मविकास करने के लिये थी। उस समय गृहस्थाश्रम मात्र मौज मजा उड़ाने के लिये न था, किन्तु गृहस्थाश्रम के योग्य आदर्श जीवन जीते हुये दूसरों के कल्याणमार्ग में सहायक बनने के लिये था। उस समय आज कलके समान पशुओं की तरह वंश-वृद्धि के लिये सन्तानोत्पत्ति न की जाती थी, परन्तु गृहस्थ जीवन के योग्य ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुये उत्तम जीवात्माओं को जन्म देकर, उन्हें इह लोक और परलोक सम्बन्धी सन्मार्ग में चलने का शिक्षण देकर श्रेष्ठ मातृपितृपद प्राप्त करने और सुसंस्कारों द्वारा परोपकार के मार्ग में चल कर आदर्शजीवी बनने के लिये ही की जाती थी। उस समय के स्त्री पुरुष विवाह का वास्तविक उद्देश समझनेवाले होनेके कारण अपने जीवन में एक

ही दफा विवाह किया करते थे। सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था होनेके कारण उस समय पुनर्विवाह को पापरूप समझते थे। उस समय पुक्त उमर में समझ पूर्वक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता था। उस समय आज कलके समान गुड्डा गुढियों की तरह बालविवाह न होते थे। पुक्त वयमें विवाह होने पर भी स्त्री पुरुष महीने में अमुक दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। इस प्रकार सांसारिक भोग विलासों में व्यवस्था पूर्वक परिमितता होनेके कारण उस समय के स्त्री पुरुष लंबी आयुषवाले होते थे और आरोग्यता के नियमों के अनुसार ही उनकी जीवनचर्या होनेसे वे निरोगी जीवन बिताते थे, परन्तु आज कलके समान सदैव डाक्टरों या वैद्योंके अधीन उनका जीवन न रहता था। उस समय ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा कीमती और महान् उपयोगी समझा जाता था। इस प्रकार श्रेष्ठ सामाजिक जीवन होनेके कारण उस समय विधवाओं की संख्या अधिक न बढ़ती थी। उसमें भी बाल वैधव्य भोगने का प्रसंग तो क्वचित् ही आता था। ब्रह्मचर्य का महत्व होनेसे विधवाओं को सन्मान की दृष्टिसे देखा जाता था और उनका जीवन भी ब्रह्मचारिणी संन्यासनियों के समान ही होता था।

उस समय की विधवायें पतिमृत्यु के बाद सौन्दर्य वर्धक शृंगार कदापि न करती थीं। वे एक ही दफा भोजन करती थीं, भूमि पर ही साध्विओं के समान विस्तर (संथारा) बिछा कर सोया करती थीं। दूसरों की विवाह शादीमें वे कदापि भाग न लेती थीं, बल्कि और भी किसी विकार वासना सम्बन्धी विचारों को पैदा करनेवाले सांसारिक महोत्सवादि कार्यमें वे सामिल न होती थीं। विकार वासना को पैदा करनेवाले तमाम खाद्य पदार्थों का भी वे सर्वथा परित्याग कर डालती थीं। मात्र शरीर को कायम रखने के लिये ही वे एक वक्त सात्विक आहार किया करती थीं। त्याग सूचक सुफेद कपड़े पहनती थीं और अपने समय को धार्मिक पुस्तक पढ़ने तथा धर्मविचारों में ही बिताती थीं। मदालसा, मदनासुन्दरी, प्रियंगुमंजरी और सीता आदि प्रसिद्ध सतियों ने अपने जीवित पतिके वियोग में भी पूर्वोक्त प्रकार से ही

पवित्र जीवन बिताया था। इस प्रकारकी नियंत्रणाओं से अपनी इंद्रियों एवं मन पर संयम रख कर वे सदैव धर्मध्यान द्वारा अपने जीवन को पवित्रतया व्यतीत करती थीं। त्यागकी मूर्तिके समान उन देविओं का घरमें पूर्ण सन्मान होता था। उनके माता पिता सासु ससुरे आदि सगे सम्बन्धी उन्हें अपशकुन की नहीं किन्तु पवित्रता की मूर्तिकी दृष्टिसे देखते थे और उन्हें विना ही कहे आवश्यक वस्तुओं का सुभीता कर दिया जाता था।

देशकाल की परिस्थिति बदलने बदलते बहिराचार बढ़ता गया और आन्तर जीवन का लोप होता गया। परिणाम यह हुआ कि जो पवित्र वैधव्य मरजीयात था वह फरजीयात बन गया। जो वैराग्य वृत्ति विधवायें अपनी इच्छासे अपने आन्तरीयभाव से अंगीकार करती थीं उस वैराग्य वृत्तिको अनिच्छा होने पर भी बाहर से पालन करने की फर्ज उनके सिर पर डाल दी गई। नैतिक और धार्मिक शिक्षण कम होता चला गया। देश में पाश्चात्य देशीय फैशन ने प्रवेश किया। अज्ञानता के कारण पुरुषों ने भी उस महत्वपूर्ण लग्नग्रंथि को भुला दिया। विवाह के वास्तविक उद्देश को भूल कर पुरुषों ने अपने सामाजिक जीवन को विषम-उलझन भरा बना लिया। वे विवाह का उद्देश मात्र शारीरिक सुखकी पूर्ति ही समझने लगे। विवाह को उन्होंने सिर्फ वासना की तृप्तिका एक मात्र साधन समझ लिया। इस भावना से पुरुषोंने एक पत्नी मर जाने पर दूसरी, दूसरी मर जाने पर तीसरी तीसरी मर जाने पर चौथी और चौथीकी मृत्युके बाद पांचवी दफा तक अपना विवाह करना प्रारम्भ कर दिया। मनोविकार के गुलाम बन कर बहुत मनुष्य तो अपने घरमें पुत्र पौत्रादि या पौत्र वधुओं तक के होने पर भी और यमराज के दूत समान बुढापा आ जाने पर भी तुच्छ वासना की पूर्तिके लिये विवाह करने लग गये। विवाह के पवित्र उद्देशज्ञान से वंचित रह कर माता पिता अपनी सन्तान का बाल्यवय में ही गुड्डा गुढियों के समान विवाह करने लगे। कच्ची वयमें विवाह शुरू हो जानेके कारण देशमें विधवाओं एवं बालविधवाओं की संख्या बढ़ती गई और उससे फरजीयात

वैधव्य पलानेवाले उच्च समाजों में गुप्तागुप्त गर्भपातादि अत्याचार तथा व्यभिचार की वृद्धि होती गई। अन्तमें वर्तमान सोचनीय परिस्थिति उपस्थित हुई और तंग हुई विधवाओं के द्वारा होते हुये अत्याचारों के रोकने के लिये उनके जीवन सुधार का सवाल पैदा हुआ।

सवाल का जवाब दो पक्षोंकी ओरसे इस तरह दिया गया। समाज सुधारक पक्ष कहता है कि विधवाओं की दशा सुधारने के लिये उनका पुनर्विवाह करना चाहिये। अपने आपको धर्मीष्ठ माननेवाला पक्ष कहता है कि नहीं विधवाओं का पुनर्विवाह करने में तो बड़ा भारी पाप लगता है, उनसे फरजीयात वैधव्य ही पलाना चाहिये, पुरुष चाहे जितने विवाह कर लेवे परन्तु स्त्रियाँ दूसरी दफा विवाह कर ही नहीं सकतीं। परन्तु विचार किया जाय तो सवाल वैसा का वैसा ही रहता है। पूर्वोक्त दोनों जवावों से सवाल हल ही नहीं होता। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिये पूर्वोक्त सवाल के दोनों जवाब त्रुटिपूर्ण हैं। इस लिये उसमें भी कुछ सुधार या किसी अन्य ही मध्यम मार्ग की आवश्यकता देख पड़ती है।

स्त्रियोंमें शिक्षण की खामी होने पर भी स्वार्थत्याग की भावना बड़ी जबरदस्त होती है। बहुतसे उच्च समाजों में पत्नीकी मृत्यु हो जाने पर दश दिन भी नहीं बीतने देते, तुरन्त ही पुरुष अपनी सगाई कर बैठते हैं, परन्तु किसी भी उच्च समाज में आज तक यह नहीं देख पड़ा कि पतिकी मृत्यु होने पर वर्षों तक भी किसी विधवा ने अपनी सगाई या पुनर्विवाह के विचार तक भी प्रगट किये हों। इससे उनका भारी स्वार्थ त्याग सिद्ध होता है। स्त्रियों में ऐसी आत्मनिष्ठा और धार्मिक दृढ भावना होती है कि वे अपने व्यभिचारी पतिको भी देव समान समझती हैं। बिलकुल गरीब दशामें भी वे सेर अन्न मिलने पर स्वयं भूखी रह कर अपने पतिको जिमायेंगी। यदि सच पूछा जाय तो भारत वर्षकी महत्ता अपनी पवित्रता के द्वारा भारत की स्त्रियोंने ही बढ़ाई है। आज भी भारत में सुशिक्षित और नूतन विचारवाले कुटुम्बों में यदि कुछ धार्मिक भावना टिकी हुई है तो वह मात्र गृहदेवियों का ही प्रताप है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियोंमें सदाचरण और धार्मिक भावना को कायम रखने के लिये कितना स्वार्थत्याग होता है इस बातको सिद्ध करने के वास्ते आज भी भारत में लाखों ऐसी पवित्र हृदय वाली बालविधवायें पड़ी हैं कि जिनके सामने पुनर्विवाह सम्बन्धी बातें करने तक का भी पुरुषों का साहस नहीं होता। वे अनेक प्रकार के दुःसह कष्टोंको सह कर भी अपने धर्मको पालन करना अपना परम कर्तव्य समझती हैं। परन्तु अपने शील व्रतका पालन करने में उन्हें पद पदमें किस प्रकारकी अनिवार्य मुसीबतें पड़ती हैं सो तो वही जान सकती हैं। इसके सामने जब पुरुषों के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो उनका जीवन बड़ा ही पतित देख पड़ता है। शास्त्रोंमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियोंमें आठ गुना विकार बतलाया है, परन्तु प्रत्यक्ष में तो इससे विपरीत ही देख पड़ता है। आज इस विषय में पुरुष ही स्त्रियोंके समक्ष नीची गर्दन झुकायँगे। उनके अन्तःकरण में से धार्मिक भावना नष्ट होती जा रही है, और उसके बदले विकार वासना घुसती जाती है। पुरुषों के दूषित हृदय में यहाँ तक विकार वासना का प्रबल जोर आ गया है कि वे अवसर पाकर बिचारी पवित्र अबलाओं पर बलात्कार करने तकके अधम कृत्यको करते हुये भी नहीं डरते। जब पुरुषों की ऐसी दशा है तो फिर पुरुष समाज के साथ जीवन वितानेवाली स्त्रियोंके जीवन पर पुरुषों के वासनामय पतित जीवन की असर क्यों न पड़े? वास्तव में विधवाओं का जीवन सुधारने के लिये पुरुषों को प्रथम अपना जीवन सुधारने की अत्यावश्यकता है। परन्तु वे स्वयं तो वासना की दलदल में गले तक डूबे रहें और विधवाओं के जीवन सुधार की डींग मारें तो यह सिर्फ व्यर्थका ही बड़बड़ाट है। जो कार्य हमारे लिये अशक्य है उस कार्यको करने के लिये हम अपने से भी कमजोर मनुष्य को उपदेश करें तो वह उपदेश और उस प्रकार का उपदेशक हास्यास्पद गिने जाते हैं। जो स्वयं अपनी कामवासना को जीत नहीं सकते बल्कि खुद पचास पंचावन वर्षकी उमरवाले बुढापे में बारह या तेरह वर्षकी कन्या के साथ शादी करके समाज में उलटा विकार वासना की वृद्धि

करते हैं और विधवाओं को उनकी विकार वासना पर संयम रखने का उपदेश करते हैं, ऐसे स्वार्थी और लपोड़शंख मनुष्यों से कदापि विधवाओं की स्थिति सुधर ही नहीं सकती। विधवाओं की सोचनीय दशा सुधारने की डींग मारनेवाले सुधारकों को स्वयं विधुर हुये बाद (अपनी पत्नी मर जाने पर) फिरसे अपनी शादी न कराकर समाज में अपने पवित्र जीवन की छाप डालनी चाहिये। उन्हें प्रथम अपना स्वार्थत्याग करना चाहिये । विना स्वार्थ-त्याग के कोई भी बड़ा कार्य कदापि नहीं हो सकता। आजकल के बहुत से सुधारक और विशेषतः पुनर्विवाह के हिमायती अपने स्वार्थको सामने रख कर समाज सुधार की बातें करते हैं। अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर फिर वे उस सुधार के विषय में दत्तचित्त होकर परवाह ही नहीं करते। यदि सच पूछो तो वे ऐसे मनुष्यों का सच्चे अन्तःकरण की भावना से विचार पूर्वक घड़ा हुआ कोई अटल सिद्धान्त ही नहीं होता। विना पैंदीके लोटेके समान होते हैं।

बाल्यावस्था में पति मर जाने पर विधवाओं की पुनः शादी करना या न करना यह एक सामाजिक सवाल था परन्तु आज कल तो मनुष्यों ने इसे धार्मिक स्वरूप दे दिया। पुरुष समझते हैं कि इस विषय में पुरुष जातिके लिये कुदरत की ओरसे कुछ मर्यादा ही नहीं। पुरुष अपनी मृत्यु पर्यन्त चाहे उतनी शादी करके स्त्रियोंके जीवनको नष्ट किया करे, अपनी मृत्युके बाद एक छोटी उमरकी निर्दोष बालिका को अपने घरमें विधवा करके बैठा जाय तो भी वह पापी नहीं गिना जाता। परन्तु वह बालविधवा अपने जीवन को पवित्र तया निभाने में सर्वथा असमर्थ होने पर भी दूसरा विवाह नहीं करा सकती। वह अपने आन्तर जीवन में अयोग्य पुरुषों के साथ व्यभिचार सेवन करके भले ही प्रतिवर्ष गर्भपात करती रहे परन्तु पुराने सामाजिक कायदे के विरुद्ध वह अपने समाज में किसी एक योग्य पुरुष के साथ दुबारा विवाह करा कर प्रमाणिकता पूर्वक गृहस्थ जीवन जीनेसे पापिनी समझी जाती है।

ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित होने से आज भारत के तमाम उच्च समाजों में (जिनमें विधवा विवाह पाप समझा जाता है)

प्रतिवर्ष हजारों बाल हत्यायें होती हैं। इस बातको कौनसा समाज नेता नहीं जानता कि उनके समाज में से बहुतसी विधवा बहिनें प्रतिवर्ष यात्राके बहाने पंडरपुर या अहमदाबाद के आश्रम में बच्चे जन जाती हैं। इन आश्रमों में तो दयापूर्ण हृदयवाली ही विधवायें आती हैं, बाकी सैंकड़ों तो अपने घर पर ही दवायें खा कर गर्भपात कर डालती हैं। यह भयंकर पाप समाज के नेताओं के सिर पर ही पड़ रहा है। खेद तो इस बातका है कि समाज के आगेवान जानते हुये भी पूर्वोक्त भयंकर पाप अपने ऊपर ले रहे हैं, परन्तु उन विधवाओं के विषम जीवन मार्गको सरल करनेके लिये कुछ भी विचार नहीं करते।

संसार में हरएक मनुष्य के लिये प्रवृत्ति के मुख्य मार्ग दो हैं। जिसमें एक प्रेयस् और दूसरा श्रेयस्। जिस मार्गमें चलने से इंद्रियों के विषय सम्बन्धी सुखकी प्राप्ति होती है परन्तु आत्मीय सुखका अभाव होता है, उस प्रथम मार्गको प्रेयस् (शारीरिक प्रिय) कहते हैं। जिस मार्गमें चलने से आत्मस्वरूप का भान होता है, आत्मानन्द की प्राप्ति होती है और इंद्रियों तथा मन पर जिससे संयम प्राप्त होता है उसे श्रेयस् मार्ग कहते हैं।

विधवाओं की स्थितिका विचार करते हुए उनके हित चिन्तकों को पूर्वोक्त दोनों रास्तों का गहरा विचार करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार पुरुषों को अपने दुख सुखका अनुभव होता है उसी प्रकार उन्हें भी दुख सुखका अनुभव अवश्य ही होता है, क्यों कि उनकी देहमें भी पुरुषों के समान सुख इच्छनेवाला जीवात्मा है। पुरुषों के समान उनके लिये भी आत्मकल्याण की आवश्यकता है, अतः उन्हें भी उनकी इच्छा मुजब आत्म विकास के मार्गमें गमन करने का अवकाश अवश्य मिलना चाहिये। कई एक विचार शील विद्वानों का मन्तव्य है कि विधवाओं के आत्मसुधार के लिये पूर्वोक्त दोनों मार्ग बस हैं। पूर्वोक्त दोनों मार्ग जीवन सुधारने के लिये अपने अपने स्वरूप के ज्ञान पर आधार रखते हैं। क्योंकि जिस प्रकार फरजीयात वैधव्य पलाने में विधवाओं का कल्याण

नहीं है उसी प्रकार उनका फरजीयात पुनर्विवाह करा देनेमें भी कल्याण नहीं है। यह तो आप भी जानते ही होंगे कि जहाँ पर इच्छा न होने पर भी कोई कार्य फरजीयात तौर पर सिर पर आ पड़ता है वहाँ पर उस कार्यका महत्व बिलकुल कम हो जाता है और महत्व कम हो जानेसे उस कार्यके करने में उत्साह या प्रेम नहीं रहता। इस प्रकार मानसिक शिथिलता के कारण वह कार्य सर्वांग संगीन कदापि नहीं हो सकता। मात्र फर्ज या कर्तव्यता के भार नीचे दब जाने से मनुष्य के कर्तव्य सम्बन्धी प्रेम या श्रद्धा किंवा उसके फल सम्बन्धी विश्वास एवं प्रोत्साहन (जो उस कार्य को करने में मनुष्य को प्रेरित करते हैं) आदिका भंग हो जाता है। इस लिये उस कार्यका महत्व समझाये विना ही उसे कर्तव्य और किसीके सिर डालना यह प्रथम से ही उस कार्य पर उपेक्षा करना है।

स्वकर्तव्य का ज्ञान और उसका महत्त्व संपादन कराने के लिये हर एक शहर में तमाम उच्च बिरादरियों में श्रेष्ठ विधवाश्रमों की आवश्यकता है। उन आश्रमों में विधवायें जाकर शिक्षण का लाभ उठा सकें इस प्रकार प्रबन्ध तमाम उच्च जातियों की ओरसे होना चाहिये। उन आश्रमों के शिक्षक या शिक्षिकायें यदि विवाहित न हों तो उच्च चारित्रपात्र अवश्य होने चाहिये। विधवाओं के शिक्षण सम्बन्धी उनके योग्य नवीन ही अभ्यासक्रम नियुक्त करना चाहिये। उन आश्रमों में कमसे कम पांच वर्षका अभ्यासक्रम नियुक्त होना चाहिये। उनके अभ्यास क्रमके लिये जो नवीन साहित्य तैयार किया जाय उसमें आरोग्य, नीति, धर्म, उद्योग, सीनापिरोना, कसीदा वगैरह दस्तकारी, घरसम्बन्धी कृत्य, बाल, वृद्ध, बीमारों की सेवा, दाईपन का कार्य, प्राथमिक पाठशालाओं में और कन्याशालाओं में शिक्षिका का कार्य कर सकें उस प्रकार का भाषाज्ञान, विशेषतः ब्रह्मचर्य किस प्रकार सुगमता से पाला जा सकता है और उसका कितना महत्त्व है, उसके पालन से सौन्दर्य और आयु की वृद्धिका ज्ञान, उच्च विचार रखने की आदत डालने का ज्ञान तथा अन्य तमाम प्रवृत्तिओं की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण सेवा मार्ग और

ज्ञानसहित भक्तिमार्ग की प्रवृत्ति में प्रवृत्त रहने से महान् लाभकी प्राप्ति होती है इत्यादि इत्यादिका विस्तारपूर्वक विवेचन होना चाहिये। साथ ही श्रेयस् एवं प्रेयस् के मार्गमें कितना अन्तर है इस विषय का शिक्षण भी दिया जाना चाहिये। क्योंकि इस शिक्षण पर ही उन विधवाओं के जीवन की नीव चिनी जायगी। मुख्यतः उन विधवाश्रमों की नियमाली श्रेयस की दृष्टिसे घड़ी जानी चाहिये। इस पद्धति के अनुसार अभ्यास क्रमवाले विधवाश्रमों में बाल-विधवायें जब तक उमर लायक हों और अपने जीवन के लिये कौनसा मार्ग कल्याणकारी है इत्यादि का पुक्त विचार करने की समझशक्ति उनमें आ जाय तब तक उन्हें वहाँ रक्खा जाय। युवती विधवाओं को जब तक उनका अभ्यास क्रम पूरा हो तब तक ही रक्खा जाय। अन्तमें हरएक विधवा बहिन को पूर्वोक्त श्रेयस् और प्रेयस् मार्गका स्वरूप समझाना चाहिये और कहना चाहिये कि बहिन! ब्रह्मचर्य पालन करते हुये समाज की सेवा करने से तुम्हारे जीवनका विकास अच्छी तरहसे हो सकेगा। परन्तु यदि आपमें उस प्रकार की हिम्मत न आई हो, आप अपने शरीर पर संयम रखने के लिये अभी असमर्थ हों तो आपके लिये हितमार्ग प्रेयस् है। आपको अपनी वृत्तिवाले किसी एक योग्य पुरुषके साथ विवाह करके आदर्श गृहस्थजीवन बिताना और उसमें भी महीने में अमुक निर्धारित दिनोंमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुये मनोनिग्रह द्वारा आत्मबल प्राप्त करना चाहिये।

यदि इस प्रकारकी व्यवस्थित योजना की जाय तो उच्च बिरादरिओं में से हजारों विधवा बहिनें तो पुनर्विवाह बिलकुल पसंद ही न करें। क्यों कि पूर्वोक्त संस्कारी शिक्षण द्वारा उनमें स्वयं अपने हिताहित समझने की योग्यता आ जाय। इस लिये वे स्वयं ही विचार पूर्वक अपने जीवन मार्गकी गवेषणा कर लें। यह तो हमें पूर्ण विश्वास है कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान अपने जीवन को अमर्यादित कदापि नहीं कर सकतीं। पुरुषों के समान विचार शक्ति न होने पर भी स्त्रियों में धार्मिक जीवन बिताने की महत्वाकांक्षा पुरुषोंकी अपेक्षा अत्यधिक होती है।

विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिये समाजनेताओं को बाल-विवाह सर्वथा बन्द करना चाहिये। तमाम उच्च बिरादरियों में पंद्रह वर्षकी उमर से कम उमर में कन्याओंका विवाह ही न किया जाय। ऐसा होनेसे विशेषतः बाल विधवाओं की संख्या बिलकुल कम हो जायगी। यदि स्त्री पुरुष युक्त उमर तक ब्रह्मचर्य पालन करके फिर विवाह किया करें और विवाहित अवस्था में भी अमुक मर्यादित दिनों में ब्रह्मचर्य पालन किया करें तो पति पत्नी की शारीरिक संपत्ति अच्छी रहने के कारण मृत्युसंख्या कम हो जाय और उससे विधवा तथा विधुरों की संख्या भी बहुत ही कम हो जाय। अर्थात् युवा वयवाले विधवा विधुरों की बढ़ती हुई अत्य-धिक संख्या एकदम कम हो जाय।

विधवा बहिनों को उनके सुधार के लिये मात्र पुनर्विवाह की ही प्रेरणा करते रहना किंवा मौन धारण कर के उनका दुःख सहन करते हुये भी उन्हें फरजीयात वैधव्य पालन करने के लिये विवश करते रहना इसकी अपेक्षा यदि हमारे सुधारक बन्धु और प्राचीन रूढीको धर्मतया पकड़ रखनेवाले समाज के नेता विधवा बहिनों की स्थिति पर आत्मीय दृष्टिसे गहरा विचार करें और पूर्वोक्त व्यवस्थावाले विधवाश्रम जगह जगह स्थापन करके उन्हें उनके कर्तव्य ज्ञानका भान करावें तो हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारी विदुषी विधवा बहिनें जिसमें उनका कल्याण समाया है स्वयं ही उस मार्ग में आरूढ हो जाँय। वे अपने हिताहित के प्रश्नका स्वयमेव निराकरण कर सकें। उनके लिये फिर स्त्री हित चिन्तकों को कुछ चिन्ता करनी ही न पड़े। विधवाओं को पुनर्विवाह करना चाहिये या उन्हें फरजीयात वैधव्य ही पालन करना चाहिये यह प्रश्न पुरुषों में उपस्थित ही न हो सके। अपने जीवन की बाग डोर विधवायें अपने ही हाथमें रख सकें। उस परिस्थिति में संपादन किये हुये अपने ज्ञानबल से भी जो विधवा बहिनें अपने मनोवि-कार पर संयम रखने में सर्वथा असमर्थ होंगी वे ही कदाचित् अपने समान वृत्तिवाले पुरुष के साथ पुनर्विवाह करेंगी और वैधव्यव्रत पालन करते हुये समाज की सेवामें जीवन अर्पण

करनेवाली अन्य विधवा बहिनोंको वे पूज्यभाव से देखेंगी। इस प्रकार की स्थिति प्राप्त होने पर जो आज पवित्र भारत के तमाम उच्च समाजों में प्रतिवर्ष सेकड़ों गर्भपात हो रहे हैं सो अटकेंगे और उनके भयंकर पापसे समाज के अगुवा बच सकेंगे। क्या यह बात किसी भी उच्च समाज के नेताओं की नजर से बाहर है कि आज देशके अनेक समाजों में, अनेक जाति बिरादरियों में अच्छे से अच्छे उच्च खानदानी घरानों में रहनेवाली तथा पवित्र और सरल हृदयवाली हमारी बालविधवा बहिनों का अमूल्य जीवनरत्न नीच वृत्तिवाले दुष्ट मनुष्यों के पैरोंतले कुचला जा रहा है?।

गाय आदि पशुओं के समान जीवन बितानेवाली विधवाओं की दुःखमय दशा सुधारने का यदि कोई उपाय या मार्ग है तो वह मात्र एक पूर्वोक्त ही ऐसा मार्ग है कि जिसके द्वारा देश उनकी स्थिति सुधार कर विधवाओं की हायसे बच कर सुखी और पवित्र बन सकता है।

इस विषय सम्बन्धी अर्थात् विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिये अपने नवजीवन अखबार में प्रगट किये हुये पूज्य महात्मा गांधीजी के विचारों को हम यहाँ पर उधृत करते हैं। विचारशील मनुष्य देशके दुःख से दुःखित होनेवाले उस महान पुरुष के वचनों पर अवश्य ही गहरा विचार करेंगे। वे लिखते हैं कि—

१ विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिये देश में बाल विवाह बन्द होने चाहिये।

२ वर कन्या को साथ में रहनेका समय न आवे तब तक हरगिज उनका विवाह न किया जाना चाहिये।

३ जो स्त्री अपने पतिके साथ न रही हो (पतिका सर्वथा संसर्ग न कर सकी हो) वैसी बाल विधवाओं को पुनर्विवाह करनेके लिये अनुमति देनी चाहिये इतना ही नहीं किन्तु उन्हें (पुनर्विवाह) विवाह करने के लिये उत्तेजन देना चाहिये। ऐसी स्त्रियों को विधवा गिनना ही न चाहिये।

४ जो पंद्रह वर्षकी उमर के दरम्यान विधवा हो गई हैं और जिन की अभी युवान वय है ऐसी विधवाओं को पुनर्विवाह करने की रजा मिलनी चाहिये।

५ वैधव्य को अपशुकन की चिन्ह समझ कर जो विधवाओं को हलकी नजरसे देखा जाता है उस के बदले में पवित्र समझ कर उन्हें सन्मान मिलना चाहिये।

६ विधवा बहिनों के लिये शिक्षण और धन्दे उद्योग का सुन्दर प्रबन्ध होना चाहिये।

ये पूर्वोक्त तमाम सूचनायें सादी और बिलकुल व्यावहारिक हैं। भारत के सब ही उच्च जातिके नेताओं को ये सूचनायें विचार एवं मनन करने लायक हैं। यदि समाज के नेता इस बात पर सर्वथा उपेक्षा करके विचार पूर्वक इस विषय का कुछ निराकरण न करेंगे तो समय नजीक ही आ रहा है कि जमाना खुद ही इस बातका फैसला कर डालेगा। परन्तु उससे समाज के अगुवों का मान न रहेगा।

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि भारत के उच्च समाजों में-जातियों में कन्या विक्रय की बुरी प्रथा प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ती ही जा रही है। इस प्रथाने निर्दोष बालिकाओं के पवित्र जीवन पर कुठाराघात का काम किया है। कन्याविक्रय द्वारा होनेवाली बहुतसी विधवाओं को वैधव्य दशामें अपना पेट पालन करना भी अति दुस्कर हो जाता है। क्यों कि पतिकी तमाम पूंजी तो विवाह के समय ससुरेजी को भेट कर दी जाती है। अब तो जिन्दगी भर कमा खाने पर ही जीवन का आधार रहता है। अतः पतिकी मृत्युबाद उस विधवा को भिखारिन बनना पड़ता है। यदि एक आध बालक भी साथ हो तो उससे और भी अधिक भार उस अबला के सिर पर आ पड़ता है।

अपने रक्तसे पैदा होनेवाली कन्याको बेच खानेवाले कसाइयों से भी बुरा घृणित काम करते हैं। कसाई एकदम गाय के प्राण लेता है और फिर उसके मृतक मांसको बेचता है। इस से गायको थोड़ी ही देर तक संकट भोगना पड़ता है, परन्तु कन्याविक्रय करनेवाले तो अपनी जीवित कन्या के मांसको बेच कर जिन्दगी पर्यन्त कराह कराह कर प्राण लेनेके कारण अतिघोर पाप

के भागी बनते हैं। एक यह भी बात है कि कसाई तो मात्र पशु-ओंका ही मांस बेचता है किन्तु अपनी प्रियसन्तान को बेचनेवाला मनुष्य तो मनुष्य का मांस बेचता है इससे वह कसाई से भी दुष्ट और नीच गिना जाता है। संसार में प्यारीमें प्यारी वस्तु सन्तान ही गिनी जाती है, सन्तानोत्पत्ति के लिये मनुष्य हजारों रुपया खर्च कर शादी कराते हैं, सन्तानोत्पत्ति के लिये मनुष्य अपने धर्मका उलंघन करके नीचाचरण भी सेवन करते हैं और सन्तान के प्रेम में मनुष्य अपने तमाम दुःखोंको भूल जाते हैं। जो मनुष्य ऐसी दुर्लभ और प्रियवस्तु के सामने तुच्छ धनकी कीमत अधिक समझते हैं और धनकी लालच से अपनी प्रियसन्तान-कन्याको एक दुर्गुणी वरके साथ या अधेड़ उमर के वरके साथ किंवा अधिक धनकी लालसा से किसी बूढ़े खुर्राटके साथ ब्याह देते हैं वे मनुष्य संसार में कौन से नीच कृत्यको नहीं कर सकते? जो मनुष्य अपनी कन्याको बेच सकता है वह धनके लोभसे किसी समय प्रसंग आने पर अपनी पत्नीको भी बेचते हुये विचार न करेगा।

कन्याविक्रय करनेवाले प्रिय महाशयो! जरा विचार करो कि जिस प्रकार आप किसी धनवान अधेड़ उमरवाले या किसी धनीराम बूढेके साथ धनके लोभ से अपनी कन्याको ब्याह देते हैं यदि उसी प्रकार किसी एक धनवती बुढिया के साथ आपके कुँवर साहब की शादी करा दें तो वह अपने जीवन में कदापि सुख प्राप्त कर सकेगा? यदि यौवन वयके सन्मुख आप का लड़का किसी धनवाली बुढिया के साथ बिवाह करके सुख प्राप्त कर सकता हो तो बेशक आप की बालिका उस अपने धनवान बेजोड़ पतिको प्रेमदृष्टि से देख कर सुख प्राप्त कर सकती होगी। इस बात पर गहरा विचार करने पर यदि आपके दिलमें अपनी कन्या पर कुछ तरस आता हो तो आप प्रतिज्ञा कर लीजिये कि गरीब से गरीब दशामें रह कर कन्या का मांस न बेचेंगे और चाहे किसी गरीब के घर ही क्यों न उसे ब्याहनी पड़े परन्तु उस के गुणरूप स्वभाव तथा वयकी समानता का मिलान करके ही कन्या का ब्याह करेंगे।

हमें खेद पूर्वक लिखना पड़ता है कि वर्तमान कालमें कितने एक पत्थर के समान कठिन हृदयवाले क्रूर माता पिता अपनी कन्या को दो तीन जगह बेच कर (कन्या को दिखला कर दो तीन ठिकाने से उस पर रकम लेकर) अन्त में जहाँ से अधिक धन मिले वहाँ पर ब्याह देते हैं। इस प्रकार की नीच प्रवृत्ति काठियावाड़ और गुजरात देशकी कितनी एक बिरादरियों में देख पड़ती है । काठियावाड़ देश तो इस बात के लिये प्रसिद्ध ही है कि यदि किसी भी देशवाले को उसमें कुछ दूषण होने के कारण अपने देश में अपनी बिरादरी में कन्या न मिलती हो तो वह मनुष्य चार पाँच थैलियें झुका कर काठियावाड़ से दुलहिन ला सकता है।

कन्याविक्रय, बालविवाह और वृद्धविवाह के कारण आज देश में लाखों निर्दोष अबलायें अपने अमूल्य जीवन को बुरी तरह से नष्ट कर रही हैं। बहुतसी विधवा बहिनें तो दुःखसे त्रासित होकर आतमहत्या द्वारा अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर डालती हैं। प्रभो ! इन अबलाओं पर दया करो और समाज नेताओं को इनके उद्धारार्थ सन्मति दो।



संयमता

—••:••—

बाल्यवय में पड़ी हुई खराब आदतों और बुरे संस्कारों के कारण यदि मनुष्य दुःख भोगता हो और उन्हें मिटा कर वह सुखी बनना चाहता हो तो वह संयमके द्वारा अवश्य ही वैसा बन सकता है। संयमता का अभ्यास ऐसी चीज है कि वह दुःखी मनुष्य को सुखी और पतित को पावन बना देता है, क्रोधी को शान्त और अभिमानी को नम्र बना देता है, कपटी को सरल और लोभीको संतोषी बना देता है, क्रूरको दयार्द्र और रूखे स्वभाववाले को प्रेमी बना देता है। इस लिये उसे संयमता का अभ्यास करना चाहिये। संयमता के अभ्यास से ही मनुष्य नीचेसे ऊपर चढ़ता है, संयमता के अभ्यास द्वारा ही मनुष्य अदना से आला बनता है, संयमता के अभ्यास से ही पापी मनुष्य धर्मीष्ट बनता है, संयमता के अभ्यास ही से अप्रसिद्ध मनुष्य प्रसिद्ध होता है, संयमता से ही सुख और पवित्रता प्राप्त होती है, और संयमता से ही सामान्य—साधारण मनुष्य असाधारण कार्य कर जगत का पूज्य नेता बन सकता है। इस लिये बाल्यवय सम्बन्धी खराब आदतों के कारण दुखी होनेवाले मनुष्य को सुखी होने के लिये संयमता का आश्रय लेना चाहिये।

बाल्यवय में माता पिताके द्वारा या घरके उस प्रकारके वातावरण द्वारा पड़े हुये कुसंस्कारों या खराब आदतों से मनुष्य का जीवन इस प्रकारके अधम मार्गमें फिसल पड़ता है कि उसकी कल्पना करना भी अशक्य है। खराब आदतों के कारण मनुष्य में रही हुई कुदरती शक्तियाँ प्रतिदिन मंद पड़ती चली जाती हैं। उसमें सहज रहे हुये सद्‌गुणों की शक्ति प्रतिदिन क्रमशः लुप्त होती जाती है।

दीर्घ कालीन खराब आदतों से मुक्त हो नवीन श्रेष्ठ आदतें किस प्रकार डालना इस विषय में एक प्रोफेसर जेम्स नामक विद्वान कहता है कि " मनुष्य जितनी प्रबलता एवं दृढता से अपनी पुरानी आदतों को छोड़ कर नवीन आदतें धारण कर सकता हो उसे उतनी प्रबलता और दृढ-

ता से अपनी पुरानी खराब आदतों का परित्याग कर नूतन श्रेष्ठ आदतें धारण करने का प्रयत्न करना चाहिये।

सत्कार्य में सहायता करने के जितने प्रसंग प्राप्त हो सकें उतने प्राप्त करना, अपने आपको नवीन श्रेष्ठ आदतों को उत्तेजन करनेवाली परिस्थिति में लानेका भरसक प्रयत्न करना, अपने जीवन की समुन्नति में हरकतें पहुँचानेवाली पुरानी आदतों के प्रतिकूल कार्य करना और अपने ज्ञानमें वृद्धि हो सके उस प्रकारके सहायभूत साधनों से अपने निश्चयको दृढ बनाना चाहिये। ऐसा करने से अपनी नवीन श्रेष्ठ आदतों को इतना बल मिलेगा कि वे अपने जीवन में पड़ी हुई खराब आदतोंको निकाल कर उनका स्थान स्वयं ग्रहण कर लेंगी और उससे फिर आपके जीवन में पवित्रता एवं माधूर्य का संचार होने लगेगा। पुरानी आदतों के परित्याग के प्रसंगोंपर ज्यों ज्यों उपेक्षा की जाती है त्यों त्यों वे आदतें मनुष्य के जीवन में घर करती जाती हैं और उन्हें इतना बल मिलता जाता है कि वे नवीन अच्छी आदतों को मनुष्यके नजीक तक नहीं फटकने देतीं। इस लिये जब तक आपके जीवन में नवीन श्रेष्ठ आदतें बराबर घर न कर बैठें तब तक निरन्तर ही अपनी खराब पुरानी आदतों को अपना कट्टर शत्रु समझ कर उन्हें दूर करने में कटिबद्ध रहो। प्रत्येक प्रसंग में उन पर लक्ष रक्खो। उन्हें भूलना ही उनकी पुष्टि करना है।

संयमन यह एक निकलती हुई नदीके श्रोतके समान है। नदीकी शुरुआत बिलकुल एक छोटे से श्रोतसे होती है। उसमें बहुत से अन्य श्रोत और नाले मिल कर ही वह प्रचंड नदीका रूप धारण करती है। आगे बढ़ते हुये इस प्रकारका स्वरूप प्राप्त करने पर उसका कद तथा गतिमें वृद्धि होती जाती है।

यदि आप किसी एक पहाड़ी के ऊपर से नीचे पत्थर फेंको तो प्रथम सेकन्ड में उसकी सोलह फिटकी गति रहेगी, दूसरी सेकन्ड में उसकी गति अड़तालीस फिटकी हो जायगी, तीसरी सेकन्ड में उसकी गति अस्सी फिटकी हो जायगी। इस प्रकार उत्तरोत्तर

उसकी गतिका वेग बढ़ता ही जायगा। यदि वह पत्थर दशवीं सेकन्ड तक कहीं भी न अटके और नीचे गमन करता ही रहे तो दशवीं सेकन्ड में उसकी गतिका वेग तीनसौ और चार फिटका हो जायगा। यह गुरुत्वाकर्षण का नियम है।

बस इसी प्रकार आदतों का नियम भी गुरुत्वाकर्षण के समान ही है। उनका बल भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। हरएक कार्यके साथ ही मनुष्य के जीवन में परिवर्तन होता रहता है। यदि वह अच्छे कार्य करता हो तो उसमें प्रति दिन उच्च परिवर्तन होता रहता है और यदि वह बुरे काम करता हो तो उसमें नीच परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार मनुष्य के हरएक कार्य से उसमें सदैव उच्च या नीच वृत्तिओं की वृद्धि होती रहती है।

एक विद्वान का कथन है कि प्रत्येक मानसिक कार्य से मनुष्य की शारीरिक रचना में परिवर्तन होता है। यह बात जाननेवाले दुनिया में बहुत ही कम मनुष्य हैं कि मनुष्य जिस प्रकार के विचार या कार्य करता है उसी प्रकार की वृत्ति उसके जीवन में घर कर बैठती है। वह फिर त्यागने से भी बड़ी मुस्किल से ही निकलती है। बहुत से मनुष्यों का जीवन तो उन चिरकालीन विचारों या संस्कारों द्वारा पड़ी हुई आदतों का गुलाम ही बन जाता है। कितने एक मनुष्य दूसरों की देखा देखी मात्र शौक के लिये बीड़ी-सिगरेट पीना सीखते हैं। जब वे उसे पीना सीखते हैं तब उसे एक शौकीनी की निशानी समझते हैं। वे जानते हैं कि यह कोई हमारे जीवन में व्यसनरूप नहीं है, हम जब चाहें तब इसे छोड़ सकते हैं। परन्तु प्रतिदिन दो चार दश पंद्रह करते करते वह छोटीसी भी बिड़ी पीने की आदत बिलकुल अमर्यादित हो जाती है। अब उससे बीड़ी पीये बगैर रहा ही नहीं जाता। यदि वह मनुष्य अब इस आदत का बुरा परिणाम समझ कर इसे त्यागना चाहे तो यह उसे उसकी शक्तिसे बाहर का काम मालूम होता है इतना ही नहीं किन्तु वह खराब आदत यहाँ तक भयंकर स्वरूप पकड़ लेती है कि अब उस मनुष्य के मुँहमें पायखाने तक में टट्टी जाते समय भी

बीडी या सिगरेट देख पड़ेगी । धर्मकर्म से भ्रष्ट करनेवाले इस भयंकर परिणाम का जन्म मात्र एक शौकीनी की छोटीसी आदतमें से हुआ था। मनुष्य को अपने हृदयरूप बगीचे में ऊगते हुये विषवृक्ष के अंकूर को ही काट डालना चाहिये, अन्यथा वह बड़ा होने पर अवश्य ही अपना विषमय फल चखाता है। ऊगते हुये छोटे विषवृक्षांकूर को नष्ट करने के लिये किसी पैने शस्त्र या बलकी जरूरत नहीं पड़ती, किन्तु जब वह जड़ पकड़ जाता है तब उसे काटने के लिये बड़े बड़े कुहाड़ों की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् जीवन में घर कर लेने पर बुरी आदत को छोड़ने के लिये उसके साथ बलपूर्वक युद्ध करना पड़ता है।

दृष्टान्त के तौर पर देखिये कि एक मनुष्य ऐसा धंधा करता है कि जिसमें उसे क्षण क्षणमें असत्य बोलना पड़ता हो। अब वह मनुष्य अच्छे संयोगों में आकर उस अपने जीवन में पड़ी हुई असत्य बोलने की बुरी आदत को छोड़ना चाहता है तथापि वह आदत एकदम नहीं छूट सकती। क्यों कि असत्य बोलना उसके लिये एक सहज बात बन गई। अब तो इच्छा विना ही उससे स्वार्थ वगैरके कामों में भी असत्य बोला जाता है। जिस प्रकार एक दफा किया हुआ कोई भी कार्य फिर बारंवार करना जितना सुकर और सहज है उतना ही उसका प्रतिकार करना भी दुष्कर और विकट है।

मनुष्य के अन्दर बाल्यवय से किंवा बुरी संगतसे बड़ी उमर में भी पड़ी हुई आदतें उसकी इच्छाके विरुद्ध भी उसके समस्त जीवन को अधम मार्ग में घसीट ले जाती हैं। इस लिये मनुष्य को प्रथम से ही अपने जीवन में पड़ने वाली शुरुआत में छोटी देख पड़ती किन्तु परिणाम में भयंकर रूप धारण करने वाली आदतों पर निरन्तर लक्ष रखना चाहिये। उत्तम आदतों का समूह ही मनुष्य जीवन है। और विचारशून्यता के कारण बुरी आदतों के समूह को पशुजीवन समझना चाहिये। जिस मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ आदतों का समूह है उसे सज्जन महात्मा महापुरुष कहते हैं और जिस मनुष्य का जीवन इससे विपरीत खराब आदतों का समूह है

उसे ही लोग दुर्जन, पापी, पशु, अधम पुरुष कहते हैं। अच्छी या बुरी आदतों से ही मनुष्यों में सद्गुण या दुर्गुण प्रगट होते हैं।

जिस किसी अच्छे या बुरे काम करने की मनुष्य के जीवन में निरन्तर आदत पड़ जाती है फिर वह प्रबल आदत उस मनुष्य की इच्छा शक्तिके अभाव में भी उससे उस कार्यको कराया करती है। अर्थात् निरन्तर की आदतके कारण मनुष्यकी इच्छा विना भी उससे वह काम हुआ करता है। क्योंकि फिर मन नहीं किन्तु आदत ही उस क्रियाका ड्रायवर बन जाती है। इस बातकी पुष्टिके लिये स्वामी रामतीर्थ के दूसरे ग्रंथमें एक दृष्टान्त दिया है।

यूरोप में एक मनुष्य व्यायाम का अधिक शौक होने के कारण हमेशह कसरत करता था, उसके जीवन में कसरत करने की आदत इतनी दृढ़ीभूत बन गई थी कि Attention एटेनसन शब्द सुनते ही वह अपने दोनों हाथ एकदम नीचे कर लेता। एक दिन वह मनुष्य अपने कंधे पर बाजार से घीका घडा लिये आ रहा था। उसे सामने आते हुये किसी एक अन्य मनुष्य ने देखा। वह उसकी आदत से भली प्रकार परिचित था अतः उसने दिल्लगी के लिये रास्ते में छिप कर जब वह मनुष्य नजीक आया तब जोरसे एटेनसन शब्द उच्चारण किया। वह मनुष्य उस अपनी कसरती आदत के अनुसार एटेनसन शब्द सुनते ही एकदम नीचे हाथ कर खड़ा हो गया। उस बिचारे के घड़ेका सारा घी खिंड जाने से वह मस्खरा मनुष्य हँसने लग गया।

बस इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में पड़ी हुई श्रेष्ठ आदतें भी मनुष्य से अनायास ही श्रेष्ठ कार्य कराया करती हैं। मनुष्य को अपना जीवन उच्च बनाने के लिये अपनी पहली अवस्था में श्रेष्ठ आदतों को दृढीभूत बनाने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। उस के जीवन में कोई बुरी आदत न घुस जाय इस तरफ भी उसे सदैव लक्ष रखना चाहिये। मनुष्य यदि अपनी उमरके पहिले पच्चीस वर्षों पर निरन्तर ध्यान रक्खे, जन्मसे लेकर पच्चीस वर्ष पर्यन्त अपनी जिन्दगी में किसी भी प्रकार की हानिकारक आदत न

घुसने दे तो उसकी उमर में रहे हुये बाकीके शेष वर्ष स्वयं उस के जीवन का रक्षण करते हैं । उसका जीवन अनायास ही आत्मोन्नतिके क्रम में आगे बढता जाता है ।

कुदरत ने सृष्टिमें जितने रोग निर्माण किये हैं उतनी ही उन्हें मिटाने की दवायें भी निर्माण की हैं। कुदरत के राज्य में ऐसा कोई रोग नहीं कि जिसकी दुनिया में कोई दवा ही न हो । हाँ उस दवाको जानने और सेवन करनेवाले मनुष्यों का अभाव भले ही हो रोग परकी औषध का अभाव नहीं हैं । जिस प्रकार पथ्य सहित औषध सेवन करने से रोगी मनुष्य आरोग्यता प्राप्त करता है उसी प्रकार खराब आदतों से पीड़ित हुआ मनुष्य भी संयम के प्रयत्न द्वारा उनसे मुक्त हो सकता है । इस लिये मनुष्य को निराश होने की जरूरत नहीं। बड़ेमें बड़ी भूल सुधारने के लिये मनुष्य को तीन साधनों की आवश्यकता होती हैं। एक तो भूल मालूम होने पर उसे सुधारने की इच्छा, दूसरी सुधारने की नियत पद्धति और तीसरा सुधार के लिये प्रतिदिन कमसे कम दश पंद्रह मिनिट का प्रयास ।

मनुष्य के जीवन में अच्छी या बुरी आदतों की सृष्टिरचना उसके मनमें ही होती है । मन ही में उनका जन्म होता है, मन ही में उनकी स्थिति होती है और मन ही में उनका विलय होता है। यदि किसी एक मनुष्य को असत्य बकवाद करने की आदत हो तो उसकी उस बुरी आदत का जवाबदार उसकी जीभ नहीं है। यदि किसी एक मनुष्य को चोरी करने की खराब आदत पड़ गई हो तो उसके उस चोरी कर्मके लिये उसके हाथ जवाबदार नहीं हैं, यदि किसी मनुष्य को व्यभिचार सेवन करने की आदत पड़ गई हो तो उसकी उस बुरी आदत का जवाबदार उसका शरीर नहीं परन्तु यदि उन कृत्यों का कोई जवाबदार है तो मात्र मनुष्य का चंचल मन ही है। यह बात सर्वथा अनुभव सिद्ध है, इसमें बनावटी भावकी गन्ध तक भी नहीं ।

खराब आदत मनुष्य को हरएक प्रकार से दुःखित करती है । परन्तु यदि खराब आदतवाले मनुष्य को वह अपनी भूल मालूम

होती हो और वह उस का परित्याग कर सुखी बनने की इच्छा रखता हो तो उसके लिये सुखी होनेका मार्ग अवश्य मौजूद है। यदि उसे यह मालूम देता हो कि इस खराब आदत के बोजसे मैं दबा जाता हूँ, मैं रातको भी तीन चार घंटेसे अधिक निद्रा नहीं ले सकता, इस खराब आदत के कारण मेरा दीमाग भी खराब हो गया, इस बुरी आदत के कारण ही सुख की सर्व सामग्री होते हुये भी मैं दुःख ही भोगता हूँ, कब वह दिन आयगा कि जब मैं इस खराब आदत से मुक्त होऊंगा? यदि सचे अन्तःकरण से मनुष्य के दिल में पूर्वोक्त विचार पैदा होते हों तो वह अवश्य ही उस बुरी आदत से मुक्त हो कर सुखी होगा। इन विचारों के द्वारा उसे सुधरने के मार्ग में आया समझना चाहिये। क्यों कि कुदरत का ऐसा नियम है कि परस्पर विरोधी कोई भी दो वस्तु एक ही समय में एक स्थान में कदापि नहीं रह सकतीं। इस नियम के अनुसार ही खराब और श्रेष्ठ विचार भी एक समय में एक दीमाग में नहीं रह सकते।

सुधरने की भावना प्रगट हुये बाद सुधारने का नियम जान कर मनुष्य को प्रतिदिन दश मिनिट मानसिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता है। यह प्रतिदिन दश मिनिटवाला टाइम मनुष्य के उत्तम में उत्तम समय सम्बन्धी होना चाहिये। जिस वक्त उसका मस्तिष्क शुद्धतम और दृढतम हो उस वक्त ही मानसिक परिश्रम करना चाहिये। यदि प्रातःकाल उठ कर सुबहकी दिनचर्या करने से पहिले यह मानसिक परिश्रम किया जाय तो विशेष लाभप्रद हो। इस बातका महत्व पूर्ण रहस्य न समझने के कारण बहुत से इस उत्तम कार्य के लिये उत्तम में उत्तम टाइम के बदले खराब में खराब टाइम पसंद करते हैं। रातदिन संसार की प्रपंची धमाचौकड़ी में ही जीवन वितानेवाला मनुष्य यदि श्रेष्ठ कार्य के लिये मध्यरात्रि के समय अर्ध हृदय से अर्धदग्ध मानसिक प्रयत्न करे तो उस से लाभ के बदले हानि ही होनेका विशेष संभव है।

जब यह मनुष्य घिसे हुये टाइपराइटर द्वारा पत्र प्रीन्टींग तक नहीं कराता, जब वह चित्त की अस्वस्थता में अपना कोई भी

महत्व का कार्य नहीं करता तो फिर उसे अपने जीवन में घर कर बैठी सुरापान द्यूतादि की बुरी आदतों को निकालने के लिये मानसिक परिश्रम करने का अयोग्य समय क्यों पसंद करना चाहिये ? खराब आदत के उपस्थित होने पर मनुष्य उसके वश हो जाय और पीछे से तदर्थ पश्चात्ताप प्रगट करे तो यह उसकी दुर्बलता है। अपनी खराब आदतों को सुधारने की इच्छावाले मनुष्य को मानसिक परिश्रम करने के लिये सारे दिनरात में शान्त में शान्त, पवित्र में पवित्र और चित्त की प्रसन्नता रखनेवाला उत्तमोत्तम प्रथम दश मिनिट का समय पसंद करना चाहिये । जिस स्त्रीको गृहसम्बन्धी कामकाज से उत्पन्न होनेवाली उत्कान को दूर करने की इच्छा हो उसे दिनभर का कामकाज पूरा किये बाद नहीं किन्तु गृहसम्बन्धी दैनिक कामकाज शुरू करने से पहिले ही मानसिक प्रयत्न करना चाहिये। उसे एकान्त स्थान में जहाँ पर सांसारिक अन्य वातावरण की गन्ध तक भी न हो ऐसे स्थान में चित्त की प्रसन्नता के समय मानसिक प्रयत्न करना चाहिये।

यदि प्रतिदिन दश मिनिट तक ही एकान्त स्थानमें बैठ कर चित्तकी समाधिपूर्वक सहेतुक मानसिक परिश्रम किया जाय तो अवश्य ही मनुष्यकी गंभीर में गंभीर रूप धारण करनेवाली आदत भी सुधर जाय। इस कार्यके लिये कितना समय चाहिये यह बात उस व्यक्तिकी इच्छाकी तीव्रता, आतुरता, समय की पसंदगी और निर्विघ्नता पर आधार रखती है। यदि उसकी इच्छाशक्ति तीव्र न हो तो उसे यह क्रम अपनी जिन्दगीके अन्तिम समय तक भी जारी रखना चाहिये। यदि उसकी इच्छाशक्ति तीव्र हो, यदि उसे उस कार्य को करने में बड़ी आतुरता हो और वह कार्य करते समय उसमें उसे कुछ थोड़ा घना आनन्द आता हो तो उस का वह कार्य थोड़े ही दिनों में सिद्ध हो सकता है। परन्तु इस कार्यके प्रारम्भ से पहिले उसे अपना निश्चय दृढ कर लेना चाहिये । कोई एक महान् पराक्रमी सेनापति या सम्राट प्रथम युद्ध करनेका निश्चय दृढ किये बाद फिर वह जानबूझ कर युद्धको अधिक समय तक लंबाता नहीं है। समय

चाहे जितना जाय किन्तु अपने जीवन में घुसी हुई खराब आदतों से मुक्त होनेके लिये मनुष्यसे जितना प्रयत्न किया जाय उतना ही कम है। जीवनका बहीखाता साफ बनाने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहने की जरूरत है।

दृष्टान्तके तौर पर मान लो कि एक स्त्रीको उसके जीवन में किसी कारण असंतुष्ट–उदासीन भावसे रहनेकी आदत पड़ गई है और उसी कारण वह अर्ध बीमारकी दशा भोगती है, उसे कुछ भी नहीं रुचता, उसे अपने आप पर ही घृणा आती है। ऐसी अवस्थामें उसे किसी अच्छे मनुष्यने संतुष्ट–प्रसन्न चित्तसे रहनेकी सलाह दी और तदनुसार उस स्त्रीने भी अपनी मनोवृत्ति बदलनेका निश्चय किया। अब वह अनुकूल समय में घरके एकान्त स्थानमें जाकर बैठती है और मानसिक परिश्रमके लिये वह आग्रह पूर्वक अपने मनसे यह सवाल करती है कि "मुझमें एक ही समयमें दो प्रकारकी मनोवृत्ति नहीं रह सकती। मेरी मनोवृत्ति अच्छी है"। परन्तु इस प्रकारका विचार करते समय उसका पहला स्वभाव उफनता है, इस से वह विचारती है कि "यह गाँव बड़ा खराब है, इस घरके मनुष्य अच्छे नहीं, यहाँके लोग किसी कामके ही नहीं, घरके मनुष्यों की बेपरवाही से मुझे कितनी चिन्ता रखनी पड़ती है? घरमें सभी सुखी हैं, मेरी ही जिन्दगी दुःखमें जाती है। यदि मैं इस झंझट से मुक्त हो जाऊं तो ठीक हो, अब तो मुझसे यह दुःखभरी कदर्थना सही नहीं जाती। अब क्षण भरके लिये भी मुझे यह परिस्थिति पसंद नहीं, बस अब तो परमात्मा शीघ्र ही मुझे इस दुःखसे छुड़ावें तो अच्छा हो।"

बहुत समय से अन्तःकरणमें घर करके बैठी हुई उस पुरानी आदत के कारण उसके हृदय में सदसद्विचारों की हारजीत अवश्य हुआ करती है परन्तु इससे उसका अभ्युदय जरूर होता है।

रातदिन उस स्त्रीके मनमें पूर्वोक्त विचार घुला करते हैं। वह सदैव अपनी स्थिति सुधारने के विचारों में ही मग्न रहती है और दत्तचित्त होकर अपने सुधार के नित्य प्रयत्न करती है। अन्त में उसके सद्विचारों को ही विजय प्राप्त होती है।

अब वह विचार करती है कि क्या मैं सुखी नहीं हूँ ? क्यों नहीं ? मैं अवश्य सुखी हूँ। देखो हमारे घरके मनुष्य कैसे भले मानस हैं, मेरे लड़की लड़के मेरा कितना विनय करते हैं। लड़कों की बहुवें घरमें मुझसे कितना अधिक कामकाज करती हैं। मुझ पर कुछ भी काम का भार नहीं है, मुझे घर सम्बन्धी जरा भी चिन्ता नहीं रखनी पड़ती। जिस पर प्रभुकी कृपा हो उसे चिन्ता ही किस बातकी ? इस लिये मुझ पर परमात्मा की पूर्ण कृपादृष्टि है, मैं सर्व प्रकार से सुखी हूँ। परमात्मा सबको ऐसा सुखी बनाय।

इस प्रकार वह स्त्री अपनी मनोवृत्ति के हैंडलको बदलने मात्र से अपने जीवन को सुखी बनाती है। निरन्तर के सद्विचारों से उसकी शुद्ध वृत्तियाँ उसके जीवन में रही हुई नीच वृत्तियों को कुचल डालती हैं। मनुष्य अपनी मनोवृत्ति को जैसी बनाना चाहे वह वैसी ही बन सकती है। यदि वह मानसिक कमजोरी के अधीन हो जाय तो वह दुर्बल बनती है और यदि वह हिम्मतवान बने तो वही मनोवृत्ति सुदृढ बनती है और सुखी या दुःखी होना यह बात उसकी मनोवृत्ति से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। इस लिये बलवान, विजयी और सुखी बनना यह मनुष्यके अपने हाथकी ही बात है। इससे यह बात साबित हुई कि यदि मनुष्य अपने जीवन को निरस तथा कटु बनानेवाली अपनी बुरी आदतों को अपना कट्टर शत्रु समझ कर उन पर विजय प्राप्त करनेका पक्का इरादा कर ले और इरादे को पूरा करने के लिये प्रतिदिन प्रातः-काल उठ कर सबसे पहिले मानसिक परिश्रम किया करे तो अवश्य ही वह थोड़े से समय में उन बुरी आदतों से दुःखमय बने हुये अपने जीवन को सुखी और मधुर अवश्य बना सकता है।

* * * *

मनुष्य में मिलन सारता भी एक महान सद्गुण है। मनुष्य चाहे जितना विद्वान हो, चाहे जैसा धनवान हो, चाहे जैसा रूप-वान हो और चाहे जैसा सद्गुणसंपन्न हो परन्तु यदि उसमें पूर्वोक्त गुण न हो—उसके स्वभाव में मिलन सारता न हो, वह अपने ही गुणगर्व में मस्त रहता हो, याने दूसरे सद्गुणों के समान

यदि उसमें प्रेम गुण का विकास न हुआ हो तो वह मनुष्य अपनी शक्तिके प्रमाण में शतांश भी अन्य मनुष्यों को लाभ नहीं पहुँचा सकता। वह मनुष्य दूसरों के चित्तको आकर्षित नहीं कर सकता, मिलनसारता ही प्रेमका लक्षण है और प्रेम ही मनुष्य के अन्य समस्त सद्‌गुणों को सुगन्धित करता है।

जिस प्रकार आवाज रहित सूर्यकिरणें और गुप्त रसायनिक क्रियायें कि जो भावी महान् घटनाओं का बजिरोपण करती हैं, परिणाम में विद्युतपातकी शक्तिसे भी अधिक शक्तिमान् और लाभप्रद निकलती हैं, उसी प्रकार मनुष्य जातिके अन्तःकरण में रहा हुआ प्रेमका गुप्त प्रभाव भी मनुष्य की महान में महान शक्ति है। मधुर और शान्त स्वभाववाली और प्रेमालू स्त्री पुरुष पर जितनी सत्ता रख सकती है उससे शतांश भी चिड़ेचिड़े स्वभाववाली, क्रोधी प्रकृतिवाली रूपवती युवती भी नहीं रख सकती। क्योंकि प्रेम ही प्रेमको पैदा करता है और क्लेश क्लेशको पैदा करता है।

यदि मुहल्ले में एक लड़के स्वभावकी स्त्री हो तो वह सारे मुहल्ले का नाकों दम करती है, वह अपने खराब स्वभाव के कारण सारे मुहल्ले की शान्ति भंग कर डालती है। जिस मनुष्य का वैसी स्त्री के साथ पल्ला पड़ता है—याने जिसके घरमें क्रोधी स्वभाव की स्त्री है उस मनुष्य का सारा जीवन बेकार हो जाता है। उसे अपनी जिन्दगी में सुखका जरा भी अनुभव नहीं होता। इस लिये संसार में यदि कोई विशेष दयापात्र मनुष्य है तो वह क्रोधी स्वभाववाला ही है।

शान्त, मधुर—प्रसन्नवदना और संयमी स्त्री देखने में चाहे जैसी सादी हो तथापि वह चतुरा और सौन्दर्यवती पूर्वोक्त क्रोधी स्वभाव वाली स्त्रीकी अपेक्षा हजार दरजे अच्छी है। मिलनसार सद्‌गुणवाले स्त्री या पुरुष घरमें तथा बाहर शान्ति पैदा करता है। शान्तिमें ही मनुष्यका आरोग्य कायम रह सकता है और शान्तिमें ही वह दीर्घायु भोगता हुआ सुखानुभव कर सकता है। हरएक वैद्य इस

बातको भली प्रकार जानता और समझता है कि क्रोधी तथा निरंकुश स्वभाव से मनुष्य अल्पायुषी बनता है इतना ही नहीं किन्तु उसका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जाता है।

एक स्त्रीके मुख पर शान्तता, प्रसन्नता, सुन्दरता एवं दिव्यता देख पड़ने के बदले जब क्रोध और ईर्षाके चिन्ह देख पड़ें उस वक्त उसके समान दूसरा कोई दुर्भाग्य नहीं समझना चाहिये। क्रोधके कारण मनुष्य के सौन्दर्य का नाश होता है, क्रोधके कारण उसमें रहे हुये बलवीर्य का नाश होता है, क्रोधी स्वभाव से मनुष्य के दीमाग में रहे हुये ज्ञानतन्तुओं पर आघात पहुँचता है, बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाता है। क्रोधी स्वभाव के कारण ही मनुष्य थोड़ी ही उमरमें वृद्ध बन जाता है। क्रोधसे मनुष्य के चेहरे पर कालिमा छा जाती है, वह देखने में भी किसीको अच्छा नहीं लगता। इस लिये हरएक स्त्री पुरुषको अपने जीवन को बेकार बनाने वाले और सद्गुणों को भस्म कर डालनेवाले अपने स्वभाव में रहे हुये इस महान् दुर्गुण क्रोधको निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्रोधका बहिष्कार किये बिना मनुष्यका जीवन कदापि मधुर-मिठासवाला नहीं बन सकता।

वैद्यक शास्त्रवेत्ता एक वैद्यराज लिखते हैं कि क्रोध इस प्रकारका हानिकारक है कि एक दफा क्षणभर का किया हुआ क्रोध स्त्रीके आयुमें से एक वर्षको हजम कर जाता है, अर्थात् एक दफा के क्रोधसे उसकी उमर में से एक वर्ष कमती हो जाता है। क्रोध के विषय में मनुष्यमात्र के लिये समान ही नियम समझ लेना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता अवश्य है कि क्रोधकी कालिमा स्त्रीके मुख पर जल्दी असर करती है, क्योंकि स्त्री कुदरती ही सौन्दर्य की मूर्ति है, अतः उसके चेहरे पर हरवक्त ही सौन्दर्य का चिन्ह प्रसन्नता झलकनी चाहिये और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सौन्दर्य प्रियता भी अधिक होती है। पुरुषों की अपेक्षा वे सौन्दर्य को अधिक कीमती चीज समझती हैं। उन्हें दूसरी सब वस्तुओं से सुन्दरता अधिक प्यारी होती है, इस लिये पुरुषों से उनके चेहरे पर विशेष प्रसन्नता, विशेष सुन्दरता होती है और होनी ही चाहिये। यदि उस

जन्मसिद्ध सुन्दरता एवं प्रसन्नतावाले स्त्रीमुख पर जरासे भी क्रोधकी असर हो जाय तो उस मुखड़े पर झलकती हुई नैसर्गिक सुन्दरता या प्रसन्नता एकदम विच्छायमान हो जाती है, उस सौन्दर्य की लालिमा के बदले सहसा कालिमा छा जाती है और मुखसौन्दर्य की नष्टता के साथ ही आँखोंका तेज भी बदल जाता है। मनुष्य के हृदय में पैदा होनेवाले भावकी उसके सारे शरीर में असर पहुँचती है। जरासे क्रोधके कारण मनुष्य की आँखों में एकदम विकृति भाव पैदा हो जाता है, उसके तमाम स्नायुओं में बहनेवाला रक्त उष्ण हो कर तीव्र गति धारण कर लेता है। क्रोधके कारण शरीर में तपा हुआ लहू विकारित हो कर शरीरको हरएक प्रकारसे हानि पहुँचाता है। मगजमें रहे हुये ज्ञानतन्तुओं में विकार पैदा करता है अतः उस मनुष्य की तन्दुरुस्ती खराब हुये विना नहीं रहती।

यदि मनुष्य किसी वस्तुको जास्ती में जास्ती कीमती गिनता हो तो वह उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य है। जिस कुटुम्ब में सदा सर्वदा शान्ति निवास करती है, जहाँ पर कलह क्लेष नहीं होता और कुटुम्ब के सब मनुष्यों में परस्पर प्रेम रहता है वही आदर्श कुटुम्ब कहलाता है और सदैव वहाँ पर लक्ष्मीदेवीका निवास रहता है। जिस कुटुम्ब में स्त्रियों या पुरुषोंका तुच्छ स्वभाव होनेके कारण जरा जरासी बातोंमें लड़ाई झगड़ा या कलह के कारण सदैव वाग्युद्ध होता रहता है वह कुटुम्ब शान्ति-सुखसे सर्वदा वंचित रहता है इतना ही नहीं किन्तु थोड़े ही दिनोंमें उस कुटुम्ब की लक्ष्मी भी नष्ट हो जाती है।

आरोग्य, दीर्घायु, शान्ति और सुखकी प्राप्तिमें मिलन सारता गुण महान् उपयोगी है यह बात यदि स्कूलों–पाठशालाओं में ही बालकों को पढ़ाते समय सिखाने में आवे तो भावी कुटुम्बों में अवश्यमेव कलह क्लेषोंका स्थान शान्तिको प्राप्त हो सकता है। कितने एक मनुष्यों का ऐसा मिलनसार–स्वभाव होता है कि वे जहाँ जायँ वहाँ ही आनन्द की नदी बहाते हैं। वे अपने आनन्दी और मिलनसार स्वभाव के कारण हजारों मनुष्योंको आनन्द पहुँ-

चाते हैं इतना ही नहीं बल्कि अपने प्रेमी स्वभाव से हजारों मनुष्यों की मनोवृत्ति अपनी ओर खींच लेते हैं। सभी मनुष्य वैसे आनन्दी तथा मिलनसार स्वभावी मनुष्यका सहवास इच्छते रहते हैं। वैसे मनुष्यका सहवास आरोग्य बलवर्धक औषधी का काम करता है। उस मनुष्यके दर्शन मात्रसे देखनेवालों के हृदयमें उत्साह और जीवन भारको वहन करनेका बल पैदा होता है। रात्रिके बाद सूर्योदय से जितना आनन्द प्राप्त होता है उतना ही आनन्द विनोदी स्वभाववाले मनुष्यके दर्शनसे सज्जन मनुष्यों को होता है। कहा भी है कि—आनन्दीको देखके होत अति आनन्द, देख चकोरी चंद्र ज्यों हर्षित होत अमन्द। वह सूर्यके समान ही आनन्द और स्वास्थ्य की किरणें अपने चारों तरफ फेंकता है, वे आनन्दकी किरणें उसके इर्द गिर्दके मनुष्यों में रही हुई निरुत्साह वृत्ति, निराशा और उदासीनता रूप अन्धकार को नष्ट करती हैं और उत्साह, आशा, प्रसन्नता रूप प्रकाशका संचार करती हैं। इससे मनुष्यकी अन्तःकरण भूमिका-उच्चतर बनती जाती है।

इससे विपरीत स्वभाववाले मनुष्य जनताके हृदयमें कुछ विचित्र ही असर करते हैं। निरानन्दी और उदासीन स्वभाव वाले मनुष्यके सहवास में आनेवाले भी उत्साह रहित उदासीन बन जाते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य कभी भी वैसे मनुष्यका सहवास नहीं इच्छते, उसका कोई भी मित्र बनना नहीं चाहता, क्यों कि जिसकी मित्रता या सहवास से नवीन तो दूर रहा परन्तु अपने भीतर रहा हुआ भी यत् किंचित् उत्साह, आनन्द नष्ट हो जाता हो, जिसके सत्संग से अपनी भी शान्ति भंग होती हो, अपने भीतर उदासीन भाव पैदा होता हो, जिसके मुँहचढे स्वभाव की असर अपने दीमाग पर खराब प्रभाव डालती हो उस निरानन्दी, निरुत्साही और चिड़चिड़े स्वभाववाले मनुष्यकी किसे चाह हो सकती है?। वैसे मनुष्य से तो सब ही दूर भागते हैं।

एक गाँवमें एक स्त्री बिलकुल कुरूपा थी, उसके तमाम अंग बेडौल थे, उसकी नाक बैठी हुई आँखें काँहरी थीं और मुख जरा अधिक चौड़ा था। एक हिसाबसे वह स्त्री अत्यन्त कदरूपा थी।

इसी कारण घरका कोई मनुष्य उसकी ओर सहानुभूति से नहीं देखता था। परन्तु उससे अपनी कदरूपता छिपी हुई न थी, इस लिये उस स्त्रीने अपनी उस कदरूपता को भुला कर दूसरों के दिलमें प्रेम पैदा करनेवाले और अपने प्रति दूसरोंका सद्भाव पैदा करनेवाले अपने चारित्रको विशुद्ध बनानेका निश्चय कर प्रतिदिन कुछ मानसिक प्रयत्न और बाह्य प्रेमाचरण करना शुरू किया। उसने अत्यल्प ही दिनोंमें अपने चारित्रको, अपने स्वभावको एवं अपने आचार विचारको इस प्रकारका उच्च संस्कारी और मधुर बना लिया कि लोग उसके कदरूप को भूल कर उसे प्रेमकी दृष्टिसे देखने लगे। उस स्त्रीमें कुछ विचार शीलता थी अतएव वह अपने जीवन में-अपने स्वभाव में रही हुई कटुताको दूर कर लोगोंकी अपने प्रति सन्मान भरी दृष्टि प्राप्त करके अन्तमें सुखी जीवन बिताने लगी। परन्तु उसकी जगह यदि कोई विचार शक्ति रहित स्त्री होती तो वह अपने दुर्गुणको न देख कर उसे सुधारने का कदापि प्रयत्न न करती और उससे विपरीत अपने सहवास में रहनेवाले मनुष्यों के साथ लड़भिड़ कर अपने स्वभावको चिड़चिड़ा करके और भी अधिक दुःखको प्राप्त होती। मनुष्य यदि लोक प्रिय बनना चाहता हो तो उसे अपने स्वभावमें से कटुता सर्वथा निकाल कर उसमें मधुरता भर देनी चाहिये। अपने जीवनमें से सर्व प्रकारकी खराब आदतें दूर कर उसे सच्चरित्र बनना चाहिये। मधुरता विना सुन्दरता की कुछ कीमत ही नहीं। सौन्दर्य को सुशोभित करनेवाला स्वभाव-माधुर्य ही है। माधुर्य क्या चीज है? माधुर्य यह अन्तर में विकास भावको प्राप्त हुये प्रेमकी प्रतिध्वनि है।

मनुष्यके देहमें रही हुई सुन्दरता कुछ दिनोंबाद नष्ट हो जाती है, परन्तु उसके स्वभावमें रही हुई मधुरता कदापि नष्ट नहीं होती। अर्थात् शारीरिक सौन्दर्य अल्पायुषी होता है किन्तु हृदयका सौन्दर्य अमर होता है। हार्दिक सौन्दर्यमें अजब आकर्षण शक्ति होती है और वह शक्ति प्रतिदिन विकासको प्राप्त होती जाती है। वह हार्दिक सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य के समान वृद्धावस्था में नष्ट नहीं होता।

उसे बुढापा आता ही नहीं। उस सौन्दर्य को चाहे जैसी काली कुबड़ी कुरूपा स्त्री भी प्राप्त कर सकती है। यदि स्त्रीमें हार्दिक सौन्दर्य नहीं तो वह चाहे उतने अत्यधिक शारीरिक सौन्दर्य को धारण करती हो तथापि वह सौन्दर्य हलदीरंग के समान व्यर्थ ही है। हार्दिक सुन्दरता यह आत्मीय नूर है। इसमें अचिंत्य प्रभाव भरा है, इस लिये अत्यन्त शारीरिक सुन्दरता प्राप्त करनेवाली स्त्रीको भी इस हृदय सम्बन्धि-सुन्दरता को प्राप्त करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। एक हार्दिक सुन्दरता ही मनुष्यमें ऐसा सद्गुण है कि जो अपने संसर्ग में आनेवाले हरएक मनुष्यको आनन्द, उत्साह, बल, शान्ति और सुख प्रदान कर सकता है।

सच्चारित्र में जो वास्तविक धन समाया हुआ है उसकी कीमत कौन कर सकता है ? जो मनुष्य अपने सद्गुणों द्वारा अपने इर्द-गिर्द स्वर्गीय वातावरण फैला देता है, अपने संसर्ग में आनेवाले प्रत्येक मनुष्यको आनन्दी और उत्साही बना देता है, जिस घरमें प्रवेश करे उस घरमें रहनेवाले मनुष्यों की उदासीन वृत्तिको अपने आनन्दी स्वभाव जन्य सद्गुण द्वारा दूर कर उन्हें प्रसन्न हृदयी बना देता है, जो मनुष्य अपना महान् कार्य बिगड़ जाने पर भी या अपने ऊपर कोई महान् संकट आ पड़ने पर भी, या किसी प्रिय जन या प्रिय वस्तुका वियोग हो जाने पर भी, अथवा किसी अप्रिय वस्तुका संयोग हो जाने पर भी अपने हृदय मंदिरमें उदासीनता राक्षसी को प्रवेश नहीं करने देता और वैसे विषम प्रसंगोंमें भी अपने प्रसन्न स्वभावकी नैसर्गिकता को कायम रख सकता है बस वही सच्चा ज्ञानी है। उसके जीवन की कीमत साधारण मनुष्य कदापि नहीं कर सकते। यह तो हम प्रथम ही कह चुके हैं कि उदासीनता, निरुत्साहता रूप अन्धकार को नष्ट करनेमें उस प्रकारके चारित्रवान मनुष्यका अस्तित्व सूर्यकी किरणों का काम करता है। उसके आस पास निराशा, निरुत्साह और उदासीनता ठहर ही नहीं सकते। मनुष्य में निरुत्साहता, निराशता, उदासीनता एवं भय, कायरता आदि पाशविक वृत्तियाँ मात्र अज्ञानता के कारण ही पैदा होती हैं और हार्दिक सुन्दरता,

स्वभावकी प्रसन्नता, वचनकी मधुरता, विषम से विषम प्रसंगों में सहनशीलता और अपन माधुर्य गुण द्वारा दूसरों के जीवनको मधुर बना देनेकी शक्ति ये दिव्य गुण सद् ज्ञानयुक्त सच्चारित्रता से प्राप्त होते हैं।

\+ + + +

जो मनुष्य अपने पूर्वकृत सुकृतके उदयसे प्राप्त की हुई सद्गुणता रूप लक्ष्मीका दान नहीं करता उसके समान दूसरा कोई कंजूस ही नहीं। बोनेके समय घरमें बीज होने पर भी जो मनुष्य भावी दुष्काल की आशंकासे खेतमें बीज नहीं बोता या उसके परिणाम को न समझ कर बीजके लोभसे ही जो समय पर खेतमें उस बीजका वपन नहीं करता उसके समान अन्य कोई मूर्ख ही नहीं। वृष्टि न पड़ने पर खेती सूख जायगी और अपना बीज तथा मेहनत व्यर्थ ही जायगी इस प्रकारकी भ्रमित मान्यता से जो मनुष्य समय पर अपनी योग्य शक्तिका व्यय न करके हाथ पर हाथ धर कर बैठ रहता है उसे अन्तमें पश्चात्ताप करनेका समय आता है। परन्तु जो मनुष्य समय पर खेतोंमें अपने बीजका वपन दिल खोल कर करता है और उसके योग्य अपनी शक्तिका व्यय करता है वह अवश्य ही समय आनेपर अनाजकी गाड़ियें भरके घरमें लाता है। परन्तु किंचित् प्रयत्न और बीज व्यय करने के लोभसे अपनी वस्तुको अपने ही पास संभाल रखनेवाला पूर्वोक्त कंजूस मनुष्य इस महान् लाभसे वंचित रहता है। इस लिये सुज्ञ मनुष्य को समय पर अपनी श्रेष्ठ शक्तिका सद्व्यय अवश्य करना चाहिये।

एक महान् परोपकारी मनुष्य कहा करता था कि मैंने दूसरों को दिया है मात्र उतना ही मैं बचा सका हूँ, बाकी की मेरी सर्व मिलकत गँवाई गई। मनुष्य अपने सद्ज्ञानादि गुणका जितना व्यय करता है, अपनी वर्तमान शक्ति द्वारा जितना वह दूसरों को फायदा पहुँचाता है उतने प्रमाणमें उसकी शक्तिका अधिकाधिक विकास होता है। वह शक्ति खेतमें डाले हुये बीजके समान सौगुनी प्राप्त होती है। अपनी

सद्‌गुण शक्तिरूप लक्ष्मीको बढ़ाने के लिये उसका दूसरों को दान करना यह अद्वितीय उपाय है। संसार में दान करना यह बड़ेमें बड़ा धर्म बतलाया गया है इतना ही नहीं किन्तु दान ही मनुष्य की महान्‌में महान् गुप्तपूंजी है। दान की हुई वस्तु हजार गुना वृद्धिगत हो पुनः दाताको ही प्राप्त होती है।

जिस प्रकार किसी एक मनुष्य के धनसे भरे हुये घरमें आग लग गई हो और वह उस वक्त घरमें भरी हुई चीजोंको निकालकर बाहर फेंकता है, जितनी वस्तुओं को वह बाहर फेंकता है उतनी ही बचा सकता है। इसी तरह बलते हुये घरके समान प्रतिक्षण क्षीण होते हुये शरीरमें रही हुई शक्तियों का सद्व्यय करना उन्हें हमेशह के लिये बचा लेनेके समान है। इस लिये अपने सद्‌गुणों से, अपने मधुर स्वभाव से दूसरों को फायदा पहुँचाना चाहिये। बाह्योपकार करने में असमर्थ मनुष्य भी दूसरों की भलाई चिन्तन करने से लाभ उठा सकता है। अपने मीठे वचनों और मिलनसार स्वभाव से भी मनुष्य दूसरों पर महान् उपकार कर सकता है। दूसरों के कार्य कर शरीर द्वारा भी परोपकार कर सकता है। यदि उसके पास धनसम्पत्ति हो तो वह धनव्यय से भी परोपकार कर सकता है और यदि उसे कुछ सत्ता प्राप्त हुई हो तो वह उस सत्ताका सदुपयोग करके भी अपने हितार्थ दूसरों को फायदा पहुँचा सकता है। निदान मनुष्य को जिस प्रकार की शक्ति प्राप्त हुई हो वह उसी प्रकारकी शक्तिका सदुपयोग—सद् व्यय करके भविष्य में उसे असंख्य गुनी प्राप्त कर सकता है।

अपने असाधारण गुणों द्वारा दूसरों पर मानसिक, वाचिक और शारीरिक वृत्ति प्रवृत्तिसे उपकार करनेवाले जगत के महान् पुरुष स्थूल देह नष्ट हो जाने पर भी सदैव जीवित रहते हैं। उनके स्थूल देहकी अपेक्षा उनकी मृत्युकी असंख्य गुनी अधिक कीमत होती है। उनके सद्‌गुणों की सुगन्धी संसार में संख्यातीत काल पर्यन्त ताजी ही महकती रहती है। महान् पुरुषों के जीवनकी कीमत जितनी उनके स्थूल देहके अस्तित्व में होती है उससे अनन्त गुनी कद्र उनकी स्थूल देहकी मृत्युबाद होती है। वे स्थूल देहकी हयाती में

आधा जीवन जीते हैं। उनके पूर्ण जीवन की शुरूआत उनकी मृत्यु से ही होती है। संसार में जितने अवतारी, जितने महान् पुरुष हुये हैं उन सबका जीवन इसी प्रकार समझ लेना चाहिये। जिस प्रकार दुनिया में जीवित हाथीकी कीमत उसकी मृत्युके बाद कई गुनी बढ़ जाती है उसी प्रकार महापुरुषों के जीवन की कीमत भी उनकी मृत्युके बाद ही अधिक बढ़ती है। महात्मा बुद्धकी हयाती में उनके जीवन की उतनी कीमत न थी कि जितनी उनकी स्थूल मृत्युके बाद हुई। महात्मा क्राइष्ट को उनकी हयाती में लोगोंने नहीं पहचाना। उनके जीवन की शुरुआत उनकी स्थूल मृत्युसे ही हुई। परम त्यागकी मूर्ति और महा तपस्वी महापुरुष महावीर को पूजनेवाला या उनके परम पवित्र सिद्धान्त को माननेवाला उतना जनसमाज उनके अस्तित्व में न था जितना कि उनके निर्वाण बाद हुआ। महात्मा आनन्दघन के अस्तित्व में उनके जीवनकी कद्र करनेवाला कौन था? जो आज उनके अक्षर देहकी पूजा करते हैं उन्हीके पूर्वजों ने उन महात्माओं के स्थूल जीवनकी कदर्थना करने में कुछ बाकी न रक्खा था। स्वामी रामकृष्ण परम हंस, स्वामी रामतीर्थ आदि महात्माओं के गुणोंकी सुगन्ध जब तक दुनियामें महकती रहेगी तब तक उन्हें मृत कौन कह सकता है?

इस प्रकारका जीवन जीनेके लिये मनुष्यको प्रथम आत्म संतोष और उस प्रकारकी शक्ति संग्रह करनेकी आवश्यकता है। आत्मीय गुणोंमें संतोषित रहना और बाह्य लालचोंका परित्याग करना इसे ही आत्मसंतोष कहते हैं। अपनी बाह्य लालचों को पोषण करना यह दूसरों को लूटनेके समान है। अपने मौज शौकके लिये दूसरों के सुख पर धावा करना यह एक प्रकारकी क्रूरता है। अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाना यह भी दूसरों की सुखसम्पत्ति को लूटने के समान है। जो पैसा हम अनावश्यक वस्तुओं के लिये खर्चते हैं यदि वह न खर्चा जाय तो अवश्य ही दूसरे किसीके आवश्यकीय कार्यमें काम आवे। आज दो रुपये जो आपने नाटक देखने में खराब किये यदि वे किसी दुःखी जनका दुःख दूर करने में काम आते तो उनका सदुपयोग होता। एक मनुष्य

अपने जीवन में हमेशह इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा द्रव्य व्यर्थके अनावश्यक कामों में खर्चता रहता है, यदि उसका वार्षिक टोटल लगाया जाय तो वह अनुपयोगी-अनावश्यक कार्यों में खर्ची हुई रकम बड़े प्रमाण में नजर आती है। इस प्रकार की दशामें वह मनुष्य भावना भाता है कि सत्कार्यों में खर्चने के लिये तो बहुत ही मन होता है पर करें क्या हमारे पास सामग्री ही नहीं, यदि हमारे पास इतना धन होता तो हम खूब खर्चते। ये सब चैतन्य रहित देहके समान व्यर्थ भावनायें हैं। क्योंकि मनुष्यमात्र के पास उसके पूर्वकृत सुकृत के अनुसार न्यूनाधिक सर्व प्रकारकी सामग्री होती ही है। वह चाहे तो अल्पसे अल्प भी प्राप्त हुई शक्तिका सदुपयोग-सद्व्यय कर अपनी उस अल्प शक्तिको विस्तृत कर सकता है। हाँ यदि त्रुटि है तो मात्र परमार्थ वृत्तिकी ही है। मनुष्य जब अपनी अनावश्यक वस्तुओं का निरोध करेगा, जिन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं उनमें व्यर्थका खर्च होते हुये धनका बचाव करेगा और अपनी उन अनावश्यक वस्तुओं का परित्याग करेगा तब ही वह दूसरों की आवश्यक वस्तुवें उन्हें प्राप्त करनेका श्रेय प्राप्त कर सकेगा। इसमें कुछ संदेह नहीं कि सादा जीवन और सद्विचार जन्य परमार्थवृत्ति यह मार्ग हिमालय के पहाड़ पर चढ़ने के मार्ग से भी अति कठिन है, तथापि यदि मनुष्य चाहे तो वह सुगमता पूर्वक सादा जीवन बिता दूसरोंको लाभ पहुँचा सकता है।

संसारमें सबसे बड़ा यज्ञ कर्तव्यता है। उसमें स्वार्थकी आहुति देनी चाहिए, उसका फल कर्तव्य पालन करने से पैदा होनेवाला संतोष है। कर्तव्य पालन में मनुष्यको किसी प्रकारकी आकांक्षा न रखनी चाहिये। कर्तव्य पालन में किसी प्रकारके फलकी इच्छा रखना यह उस कर्तव्य को दूषित करना है। यदि कर्तव्य पालन करते समय मनुष्य को कुछ आनन्द या संतोष प्राप्त नहीं हुआ तो वह कर्तव्य पालनकी क्रिया चैतन्य रहित एक मशीनकी क्रियाके समान समझनी चाहिये। मनुष्य जब तक कर्तव्यता के यज्ञमें अपने स्वार्थकी आहुति के बदले दूसरों के स्वार्थकी आहुति देता है तब तक वह कदापि वास्तविक सुख नहीं प्राप्त कर सकता। जिस दिनसे

संसार के मनुष्य कर्तव्यता के यज्ञमें अपने निजी स्वार्थों की आहुति देना शुरू करेंगे उसी दिनसे इस पवित्र यज्ञके फल-स्वरूप में पृथवी पर स्वर्गकी रचना शुरू होगी। संसार में स्वार्थ त्याग विना स्वर्गीय जीवन प्राप्त नहीं हो सकता।

यह तो सब ही जानते हैं कि वस्तुको सदैव बरतते रहने से-उपयोग में लेते रहनेसे उस पर जर नहीं चढता। उसकी चमक कायम रहती है। संसार की बाह्य वस्तुयें सदैव उपयोग में ली जानेसे यद्यपि साफ रहती हैं सही तथापि वे घिसती अवश्य हैं। परन्तु मनुष्य को कुदरत की ओरसे मिली हुई शक्तियें रूप वस्तुयें सदैव उपयोग में लेनेसे घिसने के बदले मजबूत और वृद्धिको प्राप्त होती हैं। मनुष्य अपनी विद्याशक्ति का जितना व्यय करे, उसे जितना अधिक उपयोग में लावे उतने ही अंशमें वह अधिकाधिक बढ़ती जाती है। अपने जीवन में कुदरती प्राप्त हुई शक्तियों का संग्रह कर रखना, उन्हें दूसरों के हितार्थ सर्वथा उपयोग में ही न लेना यह बड़ेमें बड़ी स्वार्थपरायणता है।

स्वार्थ यह संसारमें आत्मघातका राजमार्ग है। जो मनुष्य कभी भी दूसरों को कुछ सहाय नहीं करता, जो मनुष्य शक्ति संपन्न होने पर भी दूसरोंके दुःखमें काम नहीं आता, जो दूसरों के संकट समय कंजूस के समान अपनी शक्तिका सदुपयोग नहीं करता, जो मात्र अपने ही स्वार्थकी सिद्धि पर लक्षबिन्दु रखता है, जो अपनी सर्व शक्तिओं का उपयोग सिर्फ अपने ही जीवनके लिये करता है, जो शक्तिवान होने पर भी दूसरों को कुछ देनेके बदले उनसे छीन लेनेकी ही इच्छा रखता है उस शुष्क हृदयी मनुष्यका जीवन दूसरोंके लिये घृणास्पद बन जाता है और उसकी जिन्दगी चींटी एवं मकौड़ों से बढ़ कर नहीं गिनी जाती।

एक दुबला पतला मनुष्य प्रतिदिन व्यायाम शालामें जाकर कसरत किया करता था। एक दिन एक पहलवान ने उसका कमजोर शरीर देख कर कहा कि भाई! तेरे शरीरमें कसरत करने जितनी ताकात नहीं है। तू डंबलों और मूगरियोंके साथ नाहक में क्यों

हाथा पाई करता है ? तेरे पास जितनी शक्ति है उसे भी तू क्यों नाहक ही व्यय करता है ? यह सुन वह विचारशील पतला दुबला मनुष्य बोला—भाई ! आप इस व्यायाम का रहस्य नहीं समझते इसी लिये ऐसा बोलते हैं । संसार में कुदरती नियम ही ऐसा है कि जो अपने पास हो प्रथम उसका व्यय कर देनेसे ही वह वस्तु वृद्धिगत होती है । मेरे पास जो शक्ति है उसका व्यय करने से ही वह बढ़ सकेगी । इन डंबलों और मुगरियों को मैं अपना बल देता हूँ परन्तु ये मुझे व्याज सहित मेरी शक्ति वापिस देते हैं । व्यायाम में शक्तिका व्यय करनेसे स्नायु मजबूत—कठिन बनते हैं ।

प्राप्त हुई शक्तिका व्यय न करनेसे, कम हो जानेके भयसे उस का संरक्षण कर रखनेसे वह क्षीण हो जाती है, निरुपयोगी बन जाती है और अन्तमें नष्ट भी हो जाती है । नदीका पानी गतिशील होने से ही दूसरों को जीवन प्रद होता है । यदि किसी एक कुवेका पानी व्यय न किया जाय तो वह मधुर होने पर भी संग्रहित रहनेके कारण सड़ जाता है, रोग पैदा करनेवाला बन जाता है इतना ही नहीं किन्तु व्यय न होनेसे अन्तमें उसके आगमन का मार्ग रुक कर वह नष्ट हो जाता है ।

जिस प्रकार एक गुलावका पुष्प अपनी सुगन्ध से अपने आस पास के प्रदेशको सुगन्धमय बना देता है उसी प्रकार सत्ता, वैभव, धन संपत्ति, ज्ञानशक्ति, आनन्दित स्वभाव, प्रेम, सत्य, धैर्य, माधुर्य मिलनसारता आदि गुणशक्ति को प्राप्त करनेवाला चारित्रपात्र मनुष्य भी अपने आस पासके मनुष्यों और अपने सहवास में आने वाले मनुष्योंमें अपनी स्वभाव सिद्ध शक्तिका सद् व्यय करके उन्हें सुवासित करता है । अर्थात् अपनी नैसर्गिक शक्तिसे सत्कृत्य करनेकी, किसी न किसी निःसहाय मनुष्यको सहाय करने की, किसी न किसी निरुत्साही मनुष्यको उसके हितार्थ प्रोत्साहित करनेकी, यदि दूसरा मनुष्य किसी प्रकारके आघातसे उदासीन-वृत्ति,-चिन्ता, या शोकमें ही अपने अमूल्य जीवनको नष्ट करता हो तो अपने धैर्य द्वारा-अपने आनन्दित स्वभाव द्वारा उसके शोक और उदासीन वृत्तिको दूर कर उसे उसके कर्तव्यमें दृढ़ करने की आद-

तसे मनुष्य अपने जीवन और चारित्र को उन्नत एवं सुगन्धमय बनाता है। दीन दुःखित मनुष्यों को आश्वासन देना यह भी एक उच्चमें उच्च प्रकारका दान है। इस दानसे दूसरे दानोंके फलकी अपेक्षा कुछ अधिक फल प्राप्त होता है। गरीबमें गरीब मनुष्य भी इस प्रकारका महादान धैर्यधन रहित बड़े बड़े साहूकारों को भी दे सकता है। मनुष्य जहाँ पर जाय वहाँ पर ही उसे इस प्रकारका दान करनेका सुप्रसंग प्राप्त हो सकता है। मात्र उसे यह दान देनेकी वृत्ति रखनी चाहिये। किसी जगह किसी मनुष्यको प्रोत्साहन देनेकी आवश्यकता होती है। किसी जगह किसी मनुष्यको धैर्य देनेकी जरूरत पड़ती है। किसी शुभकार्यमें प्रवृत्ति करते हुये खिन्न चित्त हुये मनुष्यको उत्तेजन देनेकी जरूरत होती है तो किसीको मात्र सहानुभूति देनेकी जरूरत पड़ती है।

जिस समय मनुष्य किसी अपने प्रियजन के वियोगसे, या किसी बीमारीके कारण धैर्य टूट जानेसे, किसी इष्ट वस्तुके वियोग से, किसी महान नुकसान के हो जाने से, किसी अनिष्टके संयोग से, गृहसंसार सम्बन्धी झगड़े टंटोंसे या और भी किसी प्रकारके आघातसे दुःखभरी उलझन में पड़ा हो, रात दिन चिन्ता शोकमें ही अपने बुद्धिबल को नष्ट करता हो उस समय उसे आश्वासन देनेसे, उसे धैर्य देनेसे, उस के चित्तको स्थिर करने से जो महान् लाभ प्राप्त होता है वह लाखों रुपयोंका दान करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता।

एक अपरिचित मनुष्य के भी प्रेमीस्वभाव से हजारों मनुष्यों को फायदा पहुँचता है। मात्र सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिसे, सिर्फ सहाय करने की इच्छा प्रगट करने से, केवल दूसरेके दुःख से दुःखित होनेसे और दुःखी मनुष्यके सामने मात्र मीठे वचन बोलनेसे हजारों मनुष्यों को दिलासा मिला है और मिल सकता है। एक प्रेम और प्रोत्साहक शब्दोंसे भरे आश्वासन पत्र मात्र से सैकड़ों ही निराशा और हताश जीवात्माओं के जीवन बदल गये हैं। अतः मनुष्य को प्रेमी स्वभाव रख कर हरएक परिस्थितिमें दूस-

रोंको योग्य सहायता देनेके लिये सानन्द तत्पर रह कर अपनी आत्मीय शक्तियोंका विकास करना चाहिये।

संसार में कितनीएक ऐसी महा कीमती वस्तुयें हैं कि जिन्हें धनवान मनुष्य लाखों रुपये खर्चने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते। यद्यपि वे कीमती वस्तुयें सब मनुष्यों के लिये प्राप्त करना शक्य हैं तथापि हमेशह के उपयोग और उस प्रकारकी आदत बिना वे प्राप्त हो नहीं सकतीं। इस प्रकारकी वस्तुयें प्रेम, दया, धैर्य, सहानुभूति, सहाय करनेकी सदिच्छा वगैरह हैं। इन वस्तुओं में से जो वस्तु आपके पास हो उसको उसके योग्य मनुष्यों में वितीर्ण करो। हार्दिक प्रेमपूर्वक उसे जगत के प्रति प्रदान करो। जगत सच्चे प्रेमकी याचना करता है, उसे उस वस्तुका दान दो। आप जिस मार्गसे गमन करो उस मार्गको अपने सत्कार्यों से सुगन्धमय बनाते जाओ। उस मार्गमें मिलनेवाले निराश्रयी को आश्रय देते जाओ, उस मार्गमें मिलनेवाले दुःखी स्त्री पुरुषों के आँसु पोंछते जाओ। कुटुम्बके दुःखदायी कलहसे दुःखित हुये मनुष्यको आश्वासन देते जाओ, उसे सहिष्णुता का पाठ पढ़ाते जाओ। जब आप दूसरों के सहवास में आओ, जब आप दूसरों के पास जाओ उस समय इस बात पर बराबर ध्यान रक्खो कि आपके चेहरे पर उदासीनता तो नहीं है? आपका चेहरा गमगीनता एवं अनाकर्षकता-भावसे म्लान तो नहीं हुआ है? वह किसी प्रकार की आकांक्षा से दूषित तो नहीं है? वह निरानन्द और निरुत्साह से उतरा हुआ तो नहीं है? आपके समागम से दूसरे मनुष्यों में सदिच्छा और आशाका प्रकाश पड़ता है या निरुत्साह, निराशा का अन्धकार पसरता है? आपके सहवास से दूसरे मनुष्यों को सुखानुभव होता है या दुःखानुभव? दूसरों के सहवास में आते समय पूर्वोक्त बातों पर सदैव लक्ष रक्खो।

एक मनुष्य के चेहरे पर सदाकाल स्मित—मधुर हास्य रहता था, उसके मुख पर निरन्तर प्रसन्नता झलका करती थी। उसे कदाचित् किसी प्रतिकूल संयोग के कारण अन्तर में क्रोध भी आगया हो तथापि वह प्रसन्नमुख देख पड़ता था, उसका क्रोध कदापि

दूसरों पर प्रगट नहीं होता था। इससे उस मनुष्यको उसके हरएक कार्यमें सफलता प्राप्त होती थी। सभी लोग उसकी प्रशंसा करते, उसकी शक्तिके उपरान्त उसकी कार्यसफलता देख मनुष्य आश्चर्य चकित होते थे। विचार करनेसे मालूम होता था कि उस की शक्तिके उपरान्त उसके सर्व कार्यों में सफलता का कारण मात्र उसकी मिलनसारता और स्वभाव की मिठास ही थी। उस की मिलनसारता के कारण, उसके आनन्दी स्वभाव के कारण वह जिसके पास जाता उस मनुष्यका दिल उसकी ओर झुके बिना न रहता था। यह अनुभव सिद्ध बात है कि आनन्दी स्वभाव मनुष्यों के चित्तको आकर्षित कर लेता है, उसमें आकर्षण करनेकी—दूसरों के मनको अपनी ओर खींच लेनेकी अपूर्व शक्ति होती है। इस लिये मनुष्य को आनन्दी स्वभाववाला और मिलनसार बनने की आवश्यकता है। मिलनसार मनुष्य से दोस्ती करनेके लिये सबका जी ललचाता है। उसके आनन्दी स्वभाव की जगह जगह प्रशंसा होती है। मनुष्यको चाहे जैसा संकट पड़े परन्तु आनन्दी, प्रेमी और नम्र बननेका प्रयत्न करनेसे उसका बहुतसा दुःख टल जाता है इतना ही नहीं किन्तु उसकी जिन्दगी ही बदल जाती है।

एक स्त्रीको ऐसी आदत थी कि घरमें यदि किसीसे अपराध भी हो जाय तथापि वह अपने अपराधीके समक्ष कदापि मुँह न चढाती, उसके साथ पूर्ववत् ही प्रसन्नता से बोलती। यदि घरमें किसी लड़की, लड़कों या बहुको कभी किसी कारण वशात् शिक्षा देनेका प्रसंग आता तो बड़ी नम्रतासे—प्रेमपूर्ण शब्दोंसे प्रसन्न मुख होकर उनकी भूलें बतलाती। उस समय लड़की लड़कों या बहु आदि घरके मनुष्योंको अपनी भूलके लिये बड़ाभारी पश्चात्ताप होता और उनके हृदयमें उस बाईके प्रति सन्मान पैदा होता। उसके आनन्दी स्वभावके कारण पड़ौसकी स्त्रियाँ उसके पास शिक्षण लेनेको आती। उस स्त्रीने मात्र अपने दिव्य स्वभावसे अपने पड़ौसके कुटुम्बों में भी शान्तिका पसारा किया।

दूसरों के साथ स्मित पूर्वक बोलने में, दूसरों को वाचिक सन्मान देनेमें, उनके साथ नम्रतासे पेश आनेमें मनुष्यका कुछ भी खर्च नहीं होता, कुछ जोर नहीं पड़ता। यदि इस प्रकार बिना खर्च किये, बिना ही किसी प्रकार का कष्ट सहन किये मात्र प्रसन्न मुख रहने और सिर्फ मीठे वचन बोलने से अपने आपको और दूसरोंको महान् लाभ होता है तो इस प्रकार के आचरण से वंचित रहनेवाले मनुष्य को अकलमन्द कौन कह सकता है? उसके समान कृपण और विचारशुन्य दूसरा कौन गिना जा सकता है?।



चारित्र

—••:••—

अति खराब संस्कारोंके कारण जिस मनुष्यके भीतर ज्ञानशक्ति सर्वथा दबी ही पड़ी है, जिसमें अपने हिताहितका विचार तक पैदा नहीं होता और जो सदैव सांसारिक वासनाओं में ही मस्त रहता है उस मनुष्यका जीवन शास्त्रकारों ने पशुजीवन के समान फरमाया है। मनुष्यमें पूर्वोक्त शक्तिका विकास कितने प्रमाण में हुआ है यह बात किस प्रकार जानी जा सकती है? इस स्थूल देहकी मृत्यु बाद परभव में चाहे जो परिणाम हो इस बातका यहाँ पर निराकरण करनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु इस स्थूल सृष्टिमें अमुक मनुष्यमें वह ज्ञानशक्ति कहाँ तक विकसित हुई है यह जानने के लिये मात्र एक ही साधन मनुष्यका चारित्र है।

ज्ञानशक्ति का विकास और उसके विकाससे पैदा होनेवाला चारित्र ही मनुष्यका मनुष्यत्व है। नीच वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर अपने जीवन में सद्वृत्ति का विकास होना इसे ही सच्चारित्र कहते हैं। यह चारित्र एक ऐसी वस्तु है कि विद्वान और मूर्ख, श्रीमन्त और गरीब, स्त्री और पुरुष, राजा और रंक सब ही इसे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इसकी प्राप्ति में मनुष्यको न तो किसी की मदद लेनी पड़ती है, न किसीसे याचना करनी पड़ती है और न ही किसी प्रकार का नुकसान उठाना पड़ता है। धन, सत्ता, वैभव संपत्ति आदि बाह्य उपाधिजन्य जगत के विनश्वर व्यवहार में ही असमानता है परन्तु कुदरती बक्सीस में सबको समान अधिकार है। जिस प्रकार राजाके महल और गरीब के झोपड़े में सूर्य या चंद्रमा समान ही प्रकाश करते हैं उसी प्रकार सच्चारित्र भी उसे प्राप्त करनेवाले राजा या रंक, पंडित या अपंडित, स्त्री या पुरुष सब मनुष्योंके हृदयमंदिर में समान ही प्रकाश डालता है। दुनिया में धन संपत्ति या सत्ता प्राप्त करने में दूसरों की खुशामद करनी पड़ती है, नौकरी द्वारा सत्ता प्राप्त करना यह भी अधम ही कृत्य कहा जाता है, क्योंकि

चाहे जैसी सत्तावाला नौकर हो तथापि उसे अपने ऊपरी अफसर की खुशामद–उसकी चापलूसी अवश्य करनी पड़ती है। व्यापार-द्वारा वैभव या संपत्ति प्राप्त करने में अनेक प्रकारके प्रपंच, अनेक प्रकारकी दगाबाजी एवं अनेक प्रकारके मायामृषावाद आदि दोष सेवन करने पड़ते हैं। यदि खेती द्वारा धनसंपत्ति प्राप्त की जाय तो उसमें भी परावलम्बीपन अवश्य है। क्योंकि वह भी सुभिक्ष या सुवृष्टि पर आधार रखती है। इस लिये यह सिद्ध हुआ कि एक सच्चारित्र धन संपत्ति ही ऐसी है कि जिसे मनुष्यमात्र अन्य किसी पर भी आधार रक्खे बिना ही स्वयं अपने प्रयत्न द्वारा प्राप्त कर सकता है। धनसंपत्ति या सत्ता यह कोई सच्चारित्र का साधन या भूषण नहीं किन्तु सच्चारित्र ही धनसंपत्ति या सत्ताका साधन एवं भूषण है। सच्चारित्र से ही धनवानों के धनकी और सत्ताधीशों की सत्ताकी शोभा बढती है। सच्चरित्र बिनाकी लक्ष्मी या सत्ता मात्र अज्ञान बालक के हाथमें रहे हुये शस्त्रके समान अपने आपकी हानि करनेका साधन है। चारित्र हीन मनुष्यको प्राप्त हुई धनलक्ष्मी या सत्ताका सदाकाल दुरुपयोग ही हुआ करता है। धनसंपत्ति और सत्ता परोपकार के लिये ही प्राप्त की जाती हैं, परन्तु चारित्र रहित मनुष्यसे परोपकार करनेवाली शक्तियों द्वारा भी दूसरोंका अपकार ही हुआ करता है।

सत्ता या समृद्धि ही नहीं किन्तु विद्या भी सच्चारित्र से ही शोभती है। मणिसे अलंकृत सर्पके समान विद्याविभूषित चारित्र हीन मनुष्यकी संगति भी त्याज्य है। शास्त्र कथन करनेवाला धर्म-गुरु, या साधु संन्यासी यदि स्वयं चारित्रपात्र हो तो ही उसका बोधवचन दूसरों पर असर करता है। थोड़ी देरके लिये धनवान या सत्ताधीश की सत्तासे डर कर कुछ समयके लिये मनुष्य धनवान या सत्ताधीश को सन्मान देंगे, एक किसी पंडितकी वाचालता से साश्चर्य खुश होकर कुछ देरके लिये मनुष्य उस पंडितजी महाशय को मान देंगे, परन्तु वह मान सन्मान क्षणिक है। जब तक उनकी पूर्वोक्त शक्तिओं की असर है तब तक ही दुनियाके मतलबी लोग उन्हें मान सन्मान देते हैं। परन्तु संसार भरके सच्चे अन्तःकरण तो सच्चारित्र पात्रके ही

चरणों में सदाके लिये झुकते हैं। किसी विद्वानके बुद्धिचातुर्य से मनुष्योंको आश्चर्य पैदा होगा, इससे घड़ीभर उसकी प्रशंसा भी की जायगी, किन्तु सच्चा विश्वास, सच्चे अन्तःकरणका पवित्र भक्ति भाव तो चारित्रवान पर ही आयगा। विद्या, चातुर्यादि गुण मस्तिष्कके हैं और शुद्ध चारित्र हृदयका गुण है। मस्तिष्क आश्चर्य पैदा करता है, एकदम चकित करता है, परन्तु हृदय मनुष्योंका नेता बनता है। वह विश्वास उत्पन्न करता है, श्रद्धा पैदा करता है और हजारों, लाखों धनवान, गरीब, पंडित, मूर्ख, स्त्री पुरुष, बाल, वृद्ध, एवं बड़े बड़े सत्ताधीश मनुष्योंको अपना अनुचर बनाता है। उनकी हयातीमें ही नहीं किन्तु उनकी मृत्यु बाद भी मनुष्य सच्चारित्रवाले महान् पुरुषोंका नाम स्मरण करते हैं।

अमुक मनुष्य बड़ा धनवान था या अमुक मनुष्य बड़ा सत्ता भोगनेवाला था यों कह कर मनुष्यकी मृत्युके बाद उसे कोई भी याद नहीं करता, परन्तु वह कैसा दयालु था ! वह कैसा प्रेमी था ! वह कैसा शान्त स्वभावी था ! वह कैसा सहनशील था ! कैसा परोपकारी था ! कैसा त्यागी, निःस्वार्थी, तथा सच्चरित्र था ? इत्यादि उसके सद्गुणों-सच्चारित्र को ही याद करके मनुष्य उसकी मृत्यु-बाद दिलगीर होते हैं। गुणवान या सदाचारी मनुष्यकी मृत्युसे सब लोग अन्तःकरण पूर्वक शोक प्रगट करते हैं। उसके लिये सबके अन्तःकरणों में हार्दिक सहानुभूति होती है। परन्तु सदाचार–चारित्र हीन मात्र धनवान या सत्तावान मनुष्यकी मृत्युके बाद सदय और विचारशील मनुष्योंके तो क्या बल्कि कठिनसे कठिन अन्तःकरणवालों के अन्तःकरण में भी खेद प्रगट होनेके बदले उल्टी विपरीत ही भावना प्रगट होती है। निदान चारित्रवान मनुष्य इस भवमें सबकी तरफसे मान सन्मान, विश्वास, भक्ति, लोकप्रियता, पूजा सत्कार आदि प्राप्त कर जाता है इतना ही नहीं किन्तु उसके परलोक सिधारे बाद भी हजारों मनुष्य उसके सद्गुणों का स्मरण करते हैं। हजारों ही वर्ष व्यतीत हो गये तथापि हरिश्चंद्र का नाम सबको मालूम है इतना ही नहीं बल्कि अच्छे श्रेष्ठ प्रसंगों में दृष्टान्तके तौर पर उनका नाम लिया जाता है। इस बातका कारण क्या

उनका राज्य था ? या उनकी सत्ता ? यदि उनकी प्रख्यातिका कारण उनका राज्य या सत्ता मानली जाय तो उनसे भी अधिक राज्य लक्ष्मी और सत्ता भोगनेवाले पृथवी पर हजारों लाखों ही चक्रवर्ती जैसे हो गये हैं, जिनका नामोनिशान तक भी दुनियामें नहीं रहा । राजा हरिश्चंद्रका नाम स्मरण करानेवाले उनमें सत्य, दया, धैर्य, प्रेम, धर्मदृढता आदि महान गुण थे । राज्यलक्ष्मी नष्ट होने पर भी, प्राणाधिक इकलौता पुत्र बिक जाने पर भी, अपनी अर्धांगना धर्मपत्नी के बिक जाने पर भी, और अन्तमें अपना स्वतःका देह बिक जाने पर भी सत्य धर्मसे चलायमान न होना, सर्वस्व नाश होने पर भी उनमें जो धर्म दृढता रही थी बस आज तक वही उनका स्मरण कराती है । संसार में जितने महान धर्म प्रवर्तक हो गये हैं वे कोई चक्रवर्ती की समृद्धि प्राप्त करके आगे नहीं बढ़े किन्तु पवित्र विमल सद्गुणों द्वारा ही संसार के इतिहास में चढ़े हैं । महात्मा क्राइष्ट, महात्मा बुद्ध, महात्मा महावीर वर्धमान, श्रीरामचंद्र आदि महापुरुष अपनी धनसंपत्ति या सत्तासे नहीं परन्तु अपने अतुल निर्मल चारित्र से ही संसार में जनसमूह के पूज्य धर्मनेता बने हैं । वीर नेपोलियन बोनापार्ट, देशभक्त शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि वीरपुरुष अपनी वीरता के ही कारण या अपनी राज्यसत्ता के ही कारण नहीं किन्तु उनमें रहे हुये महान् चारित्रगुण के कारण ही वे इतिहासप्रसिद्ध हुये हैं । सुनते हैं एक दफा जब कि शिवाजी के सैन्यने गुजरात के किसी एक शहर में लूट मचाई थी उस वक्त एक सैनिक किसी एक अच्छे खानदान की अतिरूपवती युवती कन्याको पकड़ कर शिवाजी के पास लाया और बोला— महाराज ! यह सुन्दरी आपकी पटरानी बनने के योग्य है । उस वक्त सदाचारी वीर शिवाजीने उत्तर दिया कि नहीं यह बात सर्वथा असत्य है, परन्तु हाँ यदि मैं इसकी कुक्षीसे पैदा होता तो मैं भी इसी के समान रूपवान होता । आहा ! किस प्रकारका महान सद्‌गुण ! किस प्रकार का चारित्र ! कैसा महान् संयमन ! धन्य हैं ऐसे महान् पुरुषोंको कि जिनके सद्‌गुणों की सुगन्ध आज तक भी ताजी की ताजी ही महक रही है । वर्तमान कालमें भी मात्र अपने

अपूर्व चारित्र बलसे करोड़ों मनुष्यों के हृदय पर विजय प्राप्त करने वाले महान् पुरुष महात्मा मोहन हमारे समक्ष ही हैं।

संसार में सदाकाल सच्चारित्र की ही पूजा होती है। चारित्ररहित ज्ञान, विद्या, धनसंपत्ति वैभव, राजसत्ता आदिकी कुछ कीमत ही नहीं, सच्चारित्र के सामने तमाम गुण पानी भरते हैं। सुना जाता है कि रावण चारों वेद और अठारह पुराण पढ़ा हुआ था। उसकी लंका राजधानी सुवर्ण की कही जाती है। रावण महान् सत्तावाला था, वह अनेक प्रकार की विद्याओं में भी बड़ा निपुण था, तथापि मात्र सच्चारित्र न होने के कारण उसके तमाम सद्गुणों ने दुर्गुण का रूप धारण कर लिया। अतः संसार में सम्यग्ज्ञान संयुक्त सच्चारित्र गुण ही सर्वगुण शिरोमणि है।

हिन्दुस्तान के मुगल राजाओं पर यदि दृष्टिपात करें तो इतिहास प्रसिद्ध सम्राट् अकबरकी अपेक्षा औरंगजेब अधिक विद्वान था तथापि इतिहास में अकबर का ही नाम विशेष मानप्रद गिना जाता है।

मनुष्यको सच्चा मनुष्य बननेके लिये चारित्र संपादन करने की आवश्यकता है। मनुष्यके जीवन में एक सुचारित्र ही ऐसी चीज है कि जो उसे दिव्य गुणोंसे विभूषित कर जनसमाज का पूज्य नेता बनाती है। सुचारित्र क्या वस्तु है यह बतलाने की जरूरत नहीं, दुनियाके तमाम धर्म प्रवर्तकों, सर्व शास्त्रकारों एवं समस्त धर्मोपदेशकों ने मुक्तकंठ से सुचारित्र की महिमा गाई है और उसका स्वरूप कथन किया है। संसार में कोई भी धर्म ऐसा न होगा जो सच्चारित्र को महत्वकी वस्तु समझ कर उसे सन्मान न देता हो।

बचपन से ही मनुष्य के चारित्रकी नींव चिनी जाती है। उसके अच्छे या बुरे आचार विचार पर ही उसका चारित्र निर्माण होता है। वास्तवमें तो चारित्रका अंकूर प्रथम अन्तःकरण में ऊगता है, फिर वह कार्य रूपमें बाहर प्रगट होता है। किसी भी कार्यको करनेका प्रथम हृदयमें सूक्ष्म विचार पैदा होता है, यद्यपि उस पैदा होते हुये सूक्ष्म विचार पर उस समय मनुष्यका लक्ष्य नहीं जाता

तथापि वह अपना कार्य अवश्य करता है। वह सूक्ष्म विचार जिसका जन्म अन्तःकरण में होता है दीमागके सर्व तन्तुओं पर अपनी असर डालता है। यदि मनुष्य किसी अन्य प्रसंगमें आकर उस विचार से मुक्त हो जाय, उस विचारका परित्याग कर दे तो फिर उसका बल नष्ट हो जाता है, वह मगजके तन्तुओं पर की हुई सूक्ष्म असर निष्फल चली जाती है। परन्तु यदि मनुष्य अधिकाधिक उसी विचार-श्रेणी में आरूढ हो उसी दिशामें अपनी मनोवृत्ति के घोड़े दौड़ाया करे, अर्थात् अधिक समय तक रात दिन उसी एक विचारका चिन्तन किया करे तो वह विचार दीमागमें रहे हुये कार्यकी प्रेरणा करनेवाले सर्व तन्तुओं में इस प्रकारकी अत्यधिक असर कर डालता है कि फिर वही विचार कार्यका रूप धारण कर अन्तःकरण से बाहर प्रगट होता है। मनुष्यके तमाम कार्य उसके अन्तःकरण के शुभाशुभ विचारोंका ही बाह्य स्वरूप है। उसके तमाम कार्य पहिले सूक्ष्म रीतिसे मनुष्यकी मानसिक सृष्टिमें जन्म लेते हैं। फिर अमुक समय तक परिपक्व होकर बाह्य सृष्टिमें स्थूल जन्म धारण करते हैं। यदि मानसिक सृष्टिमें अशुभ विचारका जन्म हुआ और चिर समय तक उसी विचारका पालन पोषण होता रहा तो अवश्य ही कुछ दिन बाद वह अशुभ विचार अशुभ कार्यका स्वरूप धारण करेगा। मनुष्य चाहे जैसा उच्च जीवन बिताता हो परन्तु जिस दिन उसके अन्तःकरण में नीचवृत्तिओं ने प्रवेश किया उसी दिन यह समझ लेना चाहिये कि उसका अधःपतन अब निकट ही आगया है। इसी प्रकार शुभ विचारोंके लिये भी समझ लेना चाहिये। मनुष्य यदि बाह्य संयोगोंके कारण अधम जीवन बिताता हो और उसके अन्तःकरणमें निरन्तर उच्चतर विचार रमते हों तो अवश्य ही उसका उन्नतिक्रम निकट आया समझना चाहिये।

रसायन शास्त्रकी यह एक प्रयोग सिद्ध बात है कि मिसरी या फटकड़ी किंवा इसी प्रकारकी पानीमें पिगल सके ऐसी कोई अन्य वस्तु लेकर उसे थोड़ेसे पानीमें डालो तो घुल सके उतनी घुल कर वह बाकी रही हुई पानीमें नीचे बैठ जायगी। विशेष घुलती हुई वस्तु

हुये बाद यदि उसी पानीमें आप उस वस्तुका एक भी कण किसी युक्ति से घोलनेका प्रयत्न करेंगे तो अवश्य ही वह पानी प्रवाहीपन को त्याग कर जम जायगा। बस इसी प्रकार विचारके लिये भी समझ लेना चाहिये। विचार अमुक समय तक ही हृदयमें विचार रूपसे स्थित रहते हैं, समय परिपक्व हो जाने पर वे गर्भके समान स्थूल रूप धारण कर कार्यस्वरूप में जन्म लेते हैं। किस कार्यके लिये कितने समय तक विचार करना पड़ेगा इस विषयमें निश्चित नहीं कहा जा सकता। परन्तु कार्यकी महत्ता और विचारकी दृढता इन दोनों पर उसका आधार है। पासमें पड़ी हुई कोई वस्तु उठानी हो, दूसरी तरफ दृष्टि घुमानी हो, किसीको कुछ स्वाभाविक बात कहनी हो इत्यादि कार्य विचार पैदा होते ही वे दूसरे क्षणमें कार्य रूपमें परिणत हो जाते हैं। परन्तु यदि घरसे बाहर जाना हो तो उस प्रकारके विचारको कुछ अधिक समय देना पड़ता है। यदि गांवसे दूसरे गाँव जाना हो तो उससे भी कुछ अधिक समय विचार करना पड़ता है। यदि कोई विशेष महत्वका कार्य करना होता है तो तब उस कार्यके महत्वके अनुसार विचार भी एक दो मास छः मास किंवा वर्ष दो वर्ष पर्यन्त करना पड़ता है। मानलो कि एक कार्य १०० दफा विचारमनन द्वारा होनेवाला है तो ९९ दफाका किया हुआ विचार—मनन विचाररूप में ही रहेगा परन्तु १०० दफा का वही विचार—मनन, कार्य रूपमें अवश्य प्रगट होगा। इस लिये मनुष्यको यदि अशुभ कार्य अपने से न होने देनेकी इच्छा हो तो उसे अपने अन्तःकरण में अशुभ विचारोंको जन्म ही न लेने देना चाहिये। अन्तःकरण में अशुभ विचारोंका जन्म हो उस प्रकारका प्रसंग ही न उपस्थित होने देना चाहिये। यदि वह स्वभावसे ही वैसे प्रसंग में आ पड़ा हो तो उसे स्वयं वहाँसे दूर हो जाना चाहिये।

मनुष्यको किस प्रकारके विचार करने और किस प्रकारके न करने चाहियें यह बात निश्चित करना उसीके हाथमें है। यदि उसने अमुक शुभ कार्य करनेके लिये अमुक शुभ विचार करनेका निश्चय किया हो तो उसे उस प्रकार वर्तनेके लिये मानसिक वृत्ति पर सत्ता रख-

नेकी आवश्यकता है। यदि मानसिक वृत्ति पर उसकी सत्ता न जम सकती हो और वह उस कार्यको करनेमें अति आतुर हो तो उसे घबराने की जरूरत नहीं, क्योंकि उसे भी प्राप्त करनेका मार्ग है। इस विषयमें जरा गहरा उतरनेकी आवश्यकता है, क्योंकि जब विचार ही मनुष्यके आचार—स्वभाव, चारित्र जीवनका मुख्य मंत्र है तो उसे किस प्रकार अपने वशमें रखना चाहिये यह पूर्णतया जान लेना अत्यावश्यक है।

शारीरिक नाडियों में जो प्रत्याघात का नियम है वही मानसिक वृत्तिके लिये चरितार्थ होता है। मनुष्य जिस कार्यको पहिली वार करता है वह कार्य उसे कठिन जरूर मालूम देता है, किन्तु यदि वही कार्य फिर दूसरी दफा किया जाय तो वह पहिले जितना कठिन मालूम न देगा। उसी कामको पुनः तीसरी दफा करनेसे वह और भी सरल बन जाता है। यह भी एक नियम ही है कि यदि मनुष्य कठिन से कठिन कार्यको भी हिम्मत रख कर पुनः पुनः किया करे तो उस कार्यमें से सर्वथा कठिनाई निकल जाती है। वारंवार के करनेसे वह कार्य विलकुल सुकर और सरल बन जाता है। यदि सूक्ष्म रीतिसे विचार किया जाय तो मालूम होगा कि वह कठिन कार्य वास्तव में तो कठिन ही है, उस कार्यके दूसरी या तीसरी दफाके करने में कुछ भी फर्क नहीं पड़ता, परन्तु उस कार्यको मनुष्य जितनी दफा करता है उतनी ही दफा उस कार्यको करनेका मनुष्यका वल ही बढ़ता जाता है। जिस कार्यको करने से पहिले मनुष्यको भय लगता है कल उसी कामको करते वह जरा भी नहीं हिचकिचाता। वारंवारके अभ्याससे चाहे वह कार्य मानसिक हो वा कायिक मनुष्यमें उस कार्यको करनेका बल बढ़ता जायगा। अन्तमें वह बल मनुष्यमें इतने प्रमाणमें बढ़ जाता है कि दुष्करमें दुष्कर भी कार्य उसके किसी हिसाबमें ही नहीं गिना जाता। जिस प्रकार कमताकत मनुष्यके शरीरमें प्रतिदिन की बढ़ती हुई कसरत से शक्तिका संचार होता जाता है उसी प्रकार प्रति-दिनके बढ़ते हुये मानसिक परिश्रम से मनुष्यकी मानसिक कमजोरी नष्ट होकर मनःशक्तिमें वृद्धि होती है। जिस प्रकार एक दफा किये

हुये कार्यको फिरसे करनेकी शक्ति शरीरके स्नायु धारण कर रखते हैं उसी प्रकार एक दफा किये हुये विचारको फिरसे करनेकी शक्तिको मन भी धारण कर रखता है, इसी कारण यदि मनुष्य उस कार्यकी शुरुआत में एक दो वार फेल भी हो जाय तथापि हिम्मत के साथ सोत्साह उस कार्यको करने में प्रयत्नशील रहे तो अवश्य ही वह मनोवृत्ति पर अपनी सत्ता जमा लेता है।

मनोवृत्ति पर सत्ता जमाना, उस पर संयम प्राप्त करना यह कोई सहज बात नहीं है तथापि यदि पूर्वोक्त प्रकारसे मनुष्य दृढ निश्चय कर निरन्तर प्रयत्न करने में तत्पर रहे तो कुछ दुष्कर भी नहीं है। दुर्जय मन पर सत्ता प्राप्त करनेका पूर्वोक्त रीतिके सिवाय हमें अन्य कोई मार्ग मालूम नहीं देता। गीताजी में भी श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुन को कहा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे महापराक्रमी कौन्तेय—अर्जुन ! संशयरहित यह दुष्करता से निग्रह होनेवाला चपल मन मात्र अभ्यास और वैराग्य द्वारा ही वश किया जा सकता है। पहिले एक दो प्रयत्न भले ही निष्फल जायँ परन्तु उत्साह पूर्वक प्रयत्न जारी रखने से अन्तमें अवश्य ही विजय होगा। हरएक दफाके प्रयत्न के साथ ही शक्ति बढ़ती जायगी, उससे प्रयत्न करना सुलभ और सरल होता जायगा। इस प्रकार करनेसे ही अन्तमें आपके मन पर आपकी सत्ता प्राप्त होगी।

यह बात हम प्रथम ही कह चुके हैं कि—अन्तःकरण में जो विचार पैदा होते हैं वे ज्यों ज्यों अधिक समय तक मनमें रहते हैं त्यों त्यों उनका जोर बढता जाता है और अन्तमें वे विचार कार्य का स्वरूप धारण करते हैं। इस लिये किसी भी बुरे विचार को पैदा होते ही निकाल डालना सुगम है, परन्तु धीरे धीरे उसका बल बढ जाने पर फिर उसे अपने हृदयमंदिर में से निकालना प्रायः दुःशक्य हो जाता है। इस बातको सुलभता से समझने के लिये एक दृष्टान्त देते हैं—

एक भले मानस साहुकार के वहाँ एक मुनीम रहता था, बहुत वर्षोंसे रहने के कारण मुनीम पर साहुकार का अच्छा विश्वास जम गया था, इस लिये उसके पास साहुकार की कुछ रकम भी रहती थी। एक दिन अखबार पढते हुये मुनीमजी की दृष्टि अनायास ही एक दिन में धनवान होनेवाले एक मनुष्यकी हकीकत तर्फ गई। वह समाचार पढ़नेसे मालूम हुआ कि वह मनुष्य बिलकुल साधारण स्थितिमें से सट्टेके द्वारा एक दिनमें ही लखपति बन गया। उस एक दिनमें लखपति हो जानेवाले समाचार ने मुनीमजीके दिल पर अपना अपूर्व प्रभाव डाला। मुनीमजी के दिलमें भी अब यही कुलकुली उठने लगी कि हम भी यदि थोड़े पैसेसे श्रीमन्त बन जायँ तो कैसा अच्छा हो? उस दिन दिनभर मुनीमजी के दिलमें यही विचार रमता रहा। इसी विचारने कुछ देर बाद दूसरे विचारको जन्म दिया। मुनीमजी ने सोचा भला मैं भी सट्टेमें थोड़ासा धन व्यय करके अपने नसीबको अजमा देखूँ। अब तो मुनीमजी के अन्तःकरण में लक्ष्मी—वैभव सम्बन्धी अनेक प्रकारके विचार जन्म धारण करने लगे। अब वह धनवान बननेके ही सपने देखने लगा। दूसरे दिन उस विचार-मननका इतना जोर बढ़ गया कि मुनीमजी ने सट्टा करनेका निश्चय कर लिया। इस समय मुनीमजीको इस विचारकी गन्ध तक भी नहीं आई कि सट्टेमें सौमें अठानवें मनुष्य निष्फलता प्राप्त करते हैं। यह विचार आवे कहाँसे मुनीमजी के मनो उद्यानमें तो लखपति बननेकी भावनाके घोड़े दौड़ रहे थे। मुनीमजी ने एक दिन कुछ थोड़ासा द्रव्य सट्टेमें लगाया। साधारण नियमानुसार वह द्रव्य उड़ गया। हारा हुआ जुवारी ज्यादह खेले। इस कहावत के अनुसार मुनीमजी ने दूसरी बार कुछ अधिक द्रव्य सट्टेमें लगाया। दैवयोग वह भी गया। इसी प्रकार मुनीमजी महाशय ने अपनी तमाम पूंजी सट्टेमें ही हार दी। अपना तमाम धन सट्टेमें हार कर भी उसकी तृष्णा तृप्त न हुई। मुनीमजी ने सोचा यदि थोड़ासा धन हो तो सट्टे द्वारा गया हुआ अपना धन तो पीछे निकल आवे। अपना गया हुआ धन पीछे आ जाय तो बस इतनेसे ही अपने आपको भाग्यशाली समझ लेंगे। परन्तु वह

लालसा पूर्ण करनेके लिये अपने पास तो अब पाई भी नहीं रही। सट्टेमें लगानेको धन लायँ कहाँसे ? इस विचार श्रेणीमें चढ़े हुये मुनीमजी की नजर अपनी स्वाधीनता में रहे हुये साहुकार के धन पर पड़ी। पाठक महाशय ! ध्यान रखिये एक छोटासा विचार कहाँ तक कार्य करता है । मुनीमजी ने विचार किया कि अभी तो सेठजीकी रकममें से जो मेरे पास है कुछ रकम सट्टेमें लगादूं, रुपये आये बाद फिर मैं उतनी रकम पीछे रखदूँगा। यह सोच कर अब मुनीमजी महाशय ने उस पर विश्वास रख रकम सौंपनेवाले साहुकार के रुपयों से सट्टा खेलना निश्चित किया। इसके बादकी उत्तरोत्तर परिस्थिति पाठक महाशय को स्वयं ही मालूम हो सकती है। इस प्रकारके विचारोंसे बहुत से समय तक नमक हलाली से भी की हुई नौकरी पर अन्तमें पानी फिर जाता है इतना ही नहीं किन्तु मनुष्य नामोशी और फिटकार का पात्र बनता है।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरसस्तत् क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥

अर्थात् जिस प्रकार गंगानदी स्वर्गसे शिवजीके सिर पर पड़ती है, सिरसे पर्वत पर पड़ती है, पर्वतसे पृथ्वीपर पड़ती है और पृथ्वीसे भी नीचे समुद्रमें जाकर पड़ती है उसी क्रमसे विवेक रहित मनुष्य जब पड़ने लगते हैं, तब वे अपने दरजे से सौगुना नीचे गिरते हैं। कहाँ तो वह शुरुआत का विचार और कहाँ उसका यह भयंकर परिणाम ! यदि सट्टेमें लखपति होनेवाले समाचार के पढ़ते ही यह विचार भी साथमें ही किया जाता कि इस सट्टेने हजारों मनुष्योंको भिखारी भी बना दिया है। जिस सट्टेमें हमेशाह सैकड़ों मनुष्य पायमाल होते हैं यदि उससे एक मनुष्य श्रीमन्त भी बन गया तो क्या कोई यह सट्टेका व्यापार राजमार्ग थोड़े ही कहला सकता है ? जिन्हें कुछ हाथ पैर हिलाने नहीं आते, जिनमें अन्य श्रेष्ठ प्रामाणिक व्यापार करनेकी बुद्धि नहीं उन्ही कायर

मनुष्योंके लिये यह सट्टेका व्यापार है। इसमें हजारों मनुष्योंको नुकसान होता है तब कहीं एक दोको कुछ फायदा होता है, तो इस विचारसे उसका लालचु मन आगे न बढ़ता। वह जन्म लेनेवाला सूक्ष्म लालचु विचार क्षणभर में ही नष्ट हो जाता। परन्तु उस मुनीमजी महाशयने तो दूसरी ओर दृष्टिपात ही नहीं किया। इससे वह विचार अपना जोर धारण करता गया और अन्तमें उसने मुनीमजी के सर्वस्व को नष्ट कराकर साहुकार के धनको भी उसी मार्गमें लगानेके नूतन विचार को जन्म दे दिया। यदि पैदा होते हुये अशुभ विचारको दबाया न जाय तो वह अपनेसे भी प्रबल नीच विचारोंको स्वयं ही अपनी तरफ खींच लेता है। इस लिये मनुष्यको अपने अन्तःकरण में पैदा होते हुये विचारोंके समय सावधान रहना चाहिये। असद्विचारों को नष्ट कर सद्विचारों को पुष्ट करके उनके द्वारा अपना चरित्र पवित्र बनाना चाहिये।



आध्यात्मिक जीवन ।



गृहस्थाश्रम में अनेक प्रकारके सांसारिक सुखोंको भोगता हुआ भी मनुष्य ज्ञानदृष्टि द्वारा अपने हरएक कार्यको आध्यात्मिक बना सकता है और उस प्रकारकी पवित्र भावनासे संसारमें रह कर भी त्यागी पुरुषोंके जीवन फलको प्राप्त कर सकता है। ऐसे मनुष्य यद्यपि प्रसंगवशात् बाह्य दृष्टिसे देश कालकी परिस्थितिको विचार करके ही अपने बाह्य जीवनमें प्रवृत्ति करते हैं तथापि उस प्रवृत्तिकी असर उनके आन्तरीय जीवन पर बिलकुल नहीं पड़ती। क्योंकि उन मनुष्योंके हृदयमें आत्माभिरुचि जागृत रहती है।

इस विषयमें किसी महान् पुरुषने क्या ही अच्छा कहा है—

सहज शील गुण सुजनका, खलमति करे न भंग,
दीपक रत्न बुझे नहीं पाकर पवन प्रसंग ॥ १ ॥

वैरागीको विश्वमें नहीं शत्रुका त्राम,
वृष्टिमें भीजे नहीं जो हो छतरी पास ॥ २ ॥

उदय भावमें आये हुये व्यवहार दृष्टिसे गर्हित मालूम होते हुये कार्यको भी करते हुये विवेकी एवं तत्वदर्शी मनुष्य अपने आन्तरीय लक्षबिन्दुसे पतित नहीं होते। उनका हृदयगत ज्ञान दीपक सदैव प्रज्वलित रहता है। वे अज्ञानी मनुष्योंकी टीका या निन्दा चुगलीसे आघात पाकर स्वयं अज्ञानियों के समान भावना धारण नहीं करते, परन्तु अपने प्रति अपकार करनेवाले अपराधियों को भी वे तिरस्कार के बदले दयाकी दृष्टिसे देखते हैं। यद्यपि संसारमें रह कर और समाजके साथ सम्बन्ध रख कर समाज और लोकमत से विरुद्ध अपनी आत्मध्वनिके अनुसार वर्तना यह बड़ा बिकट कार्य है। "लोकमत से विरुद्ध अपनी आत्मध्वनि के अनुसार चलनेवाले मनुष्यको प्रथम अपनी निन्दा सुननेके लिए अपने कानोंको तैयार कर लेना चाहिये"। एक पाश्चात्य विद्वानका कथन है कि—दुनियामें रह कर दुनियाके अभि-

प्रायके अनुसार चलना बड़ा सुगम है और दुनियासे विरक्त होकर अपने अभिप्रायके अनुसार वर्तना यह भी सुगम है, परन्तु दुनियामें रहना और अपनी आत्मध्वनि के अनुसार चलना यह सबसे दुष्कर कार्य है। परन्तु विचार दृष्टिसे देखा जाय तो महान् पुरुषोंकी महत्ता लोकमत विरुद्ध अपनी आत्मध्वनि के अनुसार वर्तनरूप इस दुष्कार कार्यमें ही समाई हुई है और ऐसे बिकट कार्योंसे ही महान् पुरुषोंके विकासका अन्दाज लगाया जा सकता है। लोगोंसे मान बड़ाई प्राप्त करनेके लिए उनकी हांमें हां मिला देना या उनके अभिप्रायके अनुसार जीवन व्यवहार करना यह तो स्वार्थ आसक्त और कायरमें कायर मनुष्य ही कर सकता है, किन्तु अनेक प्रकारकी मान बड़ाई आदि लालचोंको लात मार कर लोकमत विरुद्ध अपनी आत्मीय आवाजके अनुसार सत्यके मार्गमें प्रसन्न चित्त होकर दृढता पूर्वक प्रयाण करते रहना यह परम स्वार्थ त्यागी और तत्वदर्शी महान् पुरुषोंका ही कर्तव्य है।

बहुतसे मनुष्योंको सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन परस्पर विरोधी मालूम होते हैं। परन्तु ज्ञानदृष्टि से देखा जाय तो सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवनमें बाहरसे कुछ भी भिन्नता देख नहीं पड़ती। मात्र मानसिक भावना द्वारा सांसारिक जीवन ही आध्यात्मिक जीवन बन सकता है। यदि मनुष्य अपने हरएक कार्यको करते हुए अपने मनोमन्दिर में आध्यात्मिक भावनाको स्थान दे तो उसका किया हुआ हरएक कार्य आध्यात्मिक कार्यका रूप धारण कर सकता है। किसी भी कार्यके बाह्य स्वरूप या छोटे बड़ेपनको देखनेकी आवश्यकता नहीं है परन्तु वह काम किस भावनासे, किस अभिप्राय से किंवा किस वृत्तिसे किया गया है इतना ही देखना बस है। सड़क पर झाडु देनेवाला एक भंगी भी यदि इस भावनासे मार्ग साफ करता हो कि मेरे समान ही सुख इच्छनेवाले इस मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको मार्गकी मलीनता से पैदा होनेवाले रोगके जन्तु किसी प्रकारकी तकलीफ न पहुँचावें, तो वह भी उस प्रकारकी परहित चिन्ताके द्वारा अपना आध्यात्मिक जीवन बिता सकता है।

मनुष्य अपने जिस कार्यमें किसी प्रकारकी स्वार्थमय भावना नहीं रखता और उसे परोपकारकी बुद्धिसे सोत्साह करता है वह कार्य अवश्यमेव आध्यात्मिक रससे तरबतर होता है और उस कार्यका कर्त्ता भी आध्यात्मिक पुरुष होता है। विचार करनेसे मालूम हो सकता है कि सांसारिक और आध्यात्मिक कार्योंमें बाहर तो जरा भी भिन्नता नहीं देख पड़ती, यदि कुछ भिन्नता है तो सिर्फ आन्तरीय वृत्तिकी ही है। ज्ञानी और अज्ञानी मनुष्योंके कार्य बाहरसे तो समान ही देख पड़ते हैं, परन्तु उन कार्योंके परिणाम में जमीन और आशमान जितना अन्तर होता है। कारण सिर्फ यही है कि अज्ञानी मनुष्य उसी कार्यको अहंभाव द्वारा आसक्तिसे करता है और ज्ञानी-समझदार मनुष्य उसी कामको निस्पृह भावद्वारा अनासक्तिसे करता है। इसी कारण अज्ञानी-मूर्ख मनुष्य जिस कार्य द्वारा कर्मबन्धन से जकड़ा जाता है उसी कार्यमें समझदार मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रवृत्ति करनेके कारण कर्मबन्धन से मुक्त होता है। कहा है कि—"अहं ममेत्ययं बन्धो नाहं ममेति मुक्तता" जहाँ पर अज्ञानता के कारण अहंभाव है, जहाँ पर स्वार्थ है और जहाँ पर अपनी कीर्तिका लोभ है वहाँ पर ही संसार और सांसारिक जीवन है। जहाँ पर स्वार्थत्याग और परमार्थके कार्यमें अनुराग है वहाँ पर ही पवित्र आध्यात्मिकता है।

जिस कार्यसे अन्तरात्मा और परमात्मा प्रसन्न हो वह कार्य सदा ही शुभ समझना चाहिये। अतः आत्मविकास के मार्गमें गमन करनेवाले महानुभावों को अन्तरात्मा की आवाजके अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिये। यद्यपि आत्मविकास के मार्गमें आगे बढ़नेवालों के लिये शास्त्रकारों ने एकान्तवास श्रेष्ठ बतलाया है, तथापि आत्मलक्षी महाशयों के लिये वह अरण्यवास का सिद्धान्त एकान्त नहीं है। आत्मलक्षी मनुष्यको आत्मविकास करनेके लिये जंगलोंमें या पर्वतकी गुफाओंमें अथवा हिमालय के शिखरों पर जानेकी आवश्यकता नहीं। उसके लिये सब जगह आत्मविकास के साधन पड़े हैं। उन साधनोंको साधन तया ग्रहण करनेके लिए उसमें ज्ञानदृष्टि, दया, प्रेम, कोमलता—नम्रता, सहिष्णुता, मानसिक उदारता, स्वार्थत्याग

और परोपकार वृत्ति आदि सद्गुणों द्वारा योग्यता आनी चाहिए। पूर्वोक्त योग्यता प्राप्त करनेवाले महाशय के लिये अखिल विश्व हिमालयका रूप धारण कर लेता है, उसके लिए घर ही हिमालय की गुफा बन जाता है। उसकी दृष्टि जहाँ पर पड़ती है वहाँ पर ही उसे आत्मविकास भरा दीखता है। उसकी दृष्टिके अनुसार ही उसे सृष्टि देख पड़ती है। संसारके समस्त दृश्य पदार्थ एक ही रूपमें स्थित नहीं रहते। मनुष्योंकी दृष्टिके अनुसार ही वे अपना स्वरूप धारण कर लेते हैं। यथा भूत प्रेतकी शंकावाले मनुष्यको रात्रिके समय वृक्ष भी भूत प्रेततया ही देख पड़ते हैं, वैसे ही पत्थरकी मूर्तिमें देवत्व की अटल श्रद्धासे देवपूजा करनेवाले श्रद्धाशाली मनुष्यको देवके प्रति अनन्य भक्तिभावना होनेके कारण देव-दर्शन होते हैं। संसारमें कोई भी प्रवृत्ति सर्व मनुष्योंके लिए एक समान आनन्द दायक या फल दायक नहीं होती। क्योंकि वह स्वयं आनन्द जनक नहीं होती, परन्तु उसमें प्रवृत्त होनेवाले मनुष्यकी भावनामें से ही उसमें रस पड़ता है। यदि उस प्रवृत्तिमें प्रवृत्त होते समय मनुष्यकी भावना ही निरस हो तो उस प्रवृत्तिमें उसे कदापि रस या आनन्द नहीं आ सकता। किसी भी प्रवृत्तिको सरस या निरस बनाना अथवा किसी भी दृश्य पदार्थसे सार या असार ग्रहण करना यह मनुष्यकी भावनाके ही अधीन है। अतः अपनी पवित्र भावना द्वारा मनुष्य संसारके बन्धन जनक देख पड़ते संयोगों में रह कर भी आत्मविकास के मार्गमें आगे बढ़ सकता है और अपनी हरएक प्रवृत्तिको आध्यात्मिक बना सकता है।

